कानपुर विश्वविद्यालय की पीएच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

" झांसी के मराठा राज्य का इतिहास "

(१७३१ - १८५७ ई०)

प्रस्तुतकर्त्री

कुमारी [illegible] ए०

निर्देशक

डा० भगवानदास गुप्त एम० ए० पीएच० डी० एल० एल० बी०

इतिहास विभाग

बुन्देलखण्ड कालेज, झांसी

उत्तर प्रदेश

१९७५

विषय - सूची   पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

-------o-------

संकेत परिचय

इलियट डासन - हिस्ट्री आंफ इंडिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन
हिस्टौरियन्स ।

इर्विन० - विलियम इर्विनकृत ` लेटर मुगल्स ` ।

एचिसन० - ट्रीटीज, एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्स ।

एडवर्ड्स० - माइकेल एडवर्ड्स ` बैटिल्स आंफ दी इंडियन म्यूटिनी ` ।

ऐति पत्रै० - ऐतिहासिक पत्रै, यादी वगैरा लेख (सर देसाई, काले)

औरंग० - सर यदुनाथ सरकार कृत ` हिस्ट्री आंफ औरंगजेब ।`

कुरड़ा० - हरिमोहनलाल द्वारा सम्पादित कल्यानसिंह कुरड़ा कृत `फांसी
का रासौ ` ।

के० - हिस्ट्री आंफ दी सिपाय वार इन इंडिया (जांन विलियम के)

गजे० - गजेटियर ।

गिब्स० - ` इब्नबतूता ` एच० ए० आर० गिब्स कृत इब्नबतूता की
यात्राओं का अंग्रेजी अनुवाद ।

गौरे० - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (गोरेलाल तिवारी)

गोड्से० - विष्णु भट्ट गोड्से कृत ` मांफा प्रवास ` (हिन्दी अनुवाद)

चिपलूकर० - घ० ब० चिपलूकर कृत,`महाराणी लक्ष्मीबाई फांसी ` ।

छत्रसाल० - डा० भगवानदास गुप्त, कृत ` महाराजा छत्रसाल बुन्देला ` ।

जहांगीर ० - डा० वेणीप्रसाद कृत ` हिस्ट्री आंफ जहांगीर ` ।

डब्लू० मैलसन० - ` दी रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया ` ।

ताहमन्कर० - डी० वी० ताहमन्कर कृत ` दी रानी आंफ फांसी` ।

दिघे० - ` पेशवा बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंशन ` (वी० जी० दिघे)

पारसनीस० -`मराठ्यांचे पराक्रम, बुन्देलखण्ड प्रकरण` (दत्तात्रय बलवन्त -
पारसनीस)

पांग्सन० -`हिस्ट्री आफ दी बुन्देलाज ` ।

पे० द० - सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर ।

पे० द० न० स० - सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर न्यू सीरिज़ ।

फा० पौलि० कन्स० - फारेन पौलिटिकल कन्सलटेशन्स ।

फा० सी० कन्स० - फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स ।

फारेस्ट ० - फारेस्ट द्वारा सम्पादित सिलेक्शन्स फ्राम दी लेटर्स, डिस्पैचिज़ एण्ड अदर स्टेट पेपर्स ।

बंगाल० - जर्नल आंफ एशियाटिक सोसायटी आंफ बंगाल ।

बेल० - 'दी अम्पायर इन इंडिया' ।

भिड़े० - रामकृष्ण गोपाल भिड़े कृत फांसी ची स्वातंत्र्य लक्ष्मी ।

मदनेश० - डा० भगवानदास माहौर द्वारा सम्पादित मदनेश कृत 'लक्ष्मीबाई - रासौ' ।

महादाजी० - सर देसाई द्वारा सम्पादित 'हिस्टौरिकल पेपर्स रिलेटिंग टु महादाजी सिंधिया' ।

मा० उ० - मासिर - उल-उमरा (हिन्दी) ।

मैलसन० - इंडियन म्यूटिनी आंफ एटीन फिफ्टी सेवन' ।

रघुवीर० - डा० रघुवीरसिंह कृत 'मालवा इन ट्रान्जीशन' ।

रहीम० - एम० ए० रहीम कृत 'लार्ड डलहौजीज़ एडमिनिस्ट्रेशन आफ दी कान्कर्ड एण्ड एनेक्स्ड स्टेटस' ।

रजवाड़े० - 'मराठ्यांचा इतिहासाची साधनें' (विश्वनाथ काशीनाथ रजवाड़े) ।

लौ० - थामस लौ कृत 'दी इंडियन रिबेलियन आंफ एटीन फिफ्टी सेविन फिफ्टी एट' ।

लक्ष्मीबाई० - पारसनीस कृत 'फांसी की रानी लक्ष्मीबाई' ।

वर्मा० - बाबू वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'फांसी की रानी लक्ष्मीबाई' ।

वाड० - गणेश चिमाजी वाड कृत 'सिलेक्शन्स फ्राम दी सतारा राजाज़ एण्ड पेशवा डायरीज़' ।

वाटर्स० - वाटर्स कृत 'युवान च्वांग्स ट्रेव्हल्स इन इंडिया' ।

शुजा० - 'शुजाउद्दौला' (डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव) ।

शिवाजी० - शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स (सरकार) ।

शेजवलकर० - इंडियन हिस्टौरिकल रिकर्ड कमीशन, प्रोसीडिंग्स जिल्द २७ भाग २, १६५०, नागपुर अधिवेशन ।

स्मिथ० - दी रिबेलियस रानी (सर जॉन स्मिथ)

सरकार० - फाल आफ दी मुगल अम्पायर ।

सर देसाई० - 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़' । गोविन्द सखाराम सरदेसाई

साचौं० - डा० एडवर्ड साचौ द्वारा सम्पादित 'अल्बरूनीज़ इंडिया ।

सावरकर० - ' १८५७ का स्वातंत्र्य समर ' ।

सेन० - ' अठारह सौ सत्तावन ' (हिन्दी संस्करण)

सी०पी०सी० - ' कैलेन्डर आफ परशियन करसपौन्डेंस '।

हिंगणे० - जी० एच० खरे द्वारा सम्पादित ' हिंगणे दफ्तर ' ।

होम्स० - राइस होम्स कृत ' दी हिस्ट्री आफ दी इंडियन रिबेलियन ' ।

होलकोम्ब० - जे० एफ० होलकोम्ब कृत ' झांसी हिस्ट्री आर दी रानी आफ झांसी ।

Jhansi History
of
The

---------0---------

अध्याय - १

पूर्वेतिहास

१ - भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

झांसी बुन्देलखण्ड जनपद का ही एक भाग रहा है और इसलिए इसका इतिहास अविभाज्य रूप से बुन्देलखण्ड के इतिहास से जुड़ा हुआ है। बुन्देलखण्ड भारतीय उपमहाद्वीप के लगभग मध्य में स्थित है। इसकी प्राकृतिक सीमायें उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, जबलपुर और सागर के मध्यप्रदेश के जिले, पश्चिम में सिन्ध नदी और पूर्व में टौंस नदी तथा मिर्जापुर की विन्ध्य पर्वत श्रेणियां निर्धारित करती हैं। इस प्रकार यमुना, नर्मदा चंबल और टौंस नदियों से घिरे इस प्रदेश को प्रकृति ने ही जैसे एक अलग इकाई बना दिया है। थोड़े से सामान्य हेर फेर के बाद बुन्देलखण्ड की यही सीमायें सर्वमान्य हैं। इसकी पश्चिमी सीमाओं को लेकर थोड़ा सा अधिक मतभेद है। कनिंघम बेतवा नदी को बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा मानते हैं, जबकि दीवान मजबूतसिंह इस सीमा को बेतवा से परे काली सिंध (मालवा) तक ले जाते हैं।[१] पर सही यह प्रतीत होता है कि इसकी पश्चिमी सीमायें सिंध नदी निश्चित करती थी क्योंकि पश्चिमी बुन्देले राज्य दतिया की सीमायें इसी नदी तक थीं और आज भी यह नदी मध्य प्रदेश के दतिया जिले को ग्वालियर से अलग करती है। भाषा बोली, सामाजिक आचार विचार, लोकगीतों, लोक कथाओं और ऐतिहासिक क्रमबद्धता तथा परम्परागत आपसी सम्बन्धों से यह पूरा का पूरा प्रदेश आज मध्य भारत और उत्तर प्रदेश में बट जाने पर भी अपनी सांस्कृतिक एकता जैसे अक्षुण्य रखे हुए है। अभी भी उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्डीय सम्भागों में यह लोकोक्ति बड़ी ही जनप्रिय है कि -

---

१ - ऐंशियन्ट ज्याग्रफी (कनिंघम), पृ० ४८२ , बंगाल०१६०२, पृ० १००, इर्विन० २ पृ० २१६ , बुन्देलखण्ड गज़े० पृ० १ , गौरे० पृ० १

इत जमुना, उत नर्मदा, इत चंबल उत टौंस ।
छत्रसाल सौं लरन की, रही न काहू हौंस ।।

बुन्देलखण्ड का अधिकांश सूबा मुगल ~~कालीन~~ काल में इलाहाबाद के अन्तर्गत् आता था और उसके कुछ भाग जैसे कालपी, एरच, आगरा सूबे में तथा चन्देरी माल्वा सूबे में शामिल थे[२]। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत यह प्रदेश बुन्देलखण्ड की देशी रियासतों जैसे ओरछा, दतिया, पन्ना, छतरपुर, अजयगढ़, बिजावर, चरखारी, सरीला, अलीपुर, गुरसराय, समथर आदि में बटा हुआ था और दूसरा भाग कालान्तर में सीधे अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत आगया था । इस भाग में संयुक्त प्रान्त के फांसी, जालौन, हमीरपुर और बांदा के जिले थे । अब ये देशी राज्य मध्य प्रान्त के सागर, दमोह जिलों सहित मध्य प्रदेश में शामिल कर दिये गये हैं और संयुक्त प्रान्त के पांच निम्न जिले फांसी, बांदा, हमीरपुर, जालौन और ललितपुर[३] उत्तर प्रदेश के जिले बन गये हैं ।

इस प्रकार आधुनिक फांसी जिला जो प्राय: फांसी के ही मराठा राज्य का प्रति रूप है, उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला बन गया है । इसकी आकृति पिस्तौल अथवा शेर के अगले पैर जैसी है । यह उत्तर प्रदेश के दक्षिण पश्चिमी कौने में है । यह २४°११, २५°५० उत्तरी अक्षांस और ७८°१० व ७६°२५ पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है । यह इलाहाबाद प्रखण्ड का एक बड़ा और महत्वपूर्ण जिला है । उत्तर में इसकी सीमा मध्य प्रदेश (दतिया) जिला जालौन (उत्तर प्रदेश) तथा दक्षिण में विन्ध्याचल श्रेणी तथा मध्य प्रदेश के सागर जिले द्वारा निर्धारित होती है । पूर्व की ओर जामनेर तथा धसान नदियां प्राकृतिक सीमा बनाती हैं तथा उस पार जिला हमीरपुर व मध्य प्रदेश (टीकमगढ़) हैं । इसके पश्चिम में बेतवा नदी और सिन्ध के पार ग्वालियर के प्रदेश हैं[४]। फांसी का दक्षिणी इलाका पहाड़ी और उत्तरी भाग

---

२ - आइने अकबरी (अंग्रेजी) २, पृ० १७७, १६५, १६८, १६६, २१०-१४ ।
३ - ललितपुर अभी अभी तक फांसी जिले का ही एक भाग था ।
४ - फांसी गज़े० पृ० १, २ ।

मध्यवर्ती मैंदानी है । इसका ढाल उत्तर व पूर्व को है इससे नदियां दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर बहती हैं ।

२ - चन्देलों का उत्कर्ष और पतन

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि झांसी का मराठा संस्थान या झांसी जिला भौगोलिक रूप से बुन्देलखण्ड से जुड़ा हुआ है, उसी प्रकार इसका इतिहास भी अभिभाज्य रूप से बुन्देलखण्ड के इतिहास का ही एक अंश है । अतएव झांसी के मराठा राज्य की स्थापना (सन् १७३१ ई०) के पूर्व झांसी के इतिहास का बुन्देलखण्ड के इतिहास से संबद्ध संक्षिप्त विवरण देना उचित ही होगा । बुन्देलखण्ड से जिस प्रदेश का ज्ञान होता है उसका नाम बुन्देलखण्ड बुन्देलों के आगमन के बाद ही पड़ा । इसके पूर्व यह प्रदेश चन्देलों के काल में जुझौति या जेजाक भुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था । वैसे चन्देलों द्वारा इस सम्भाग को राजनैतिक एकता प्राप्त होने के पूर्व इसके विभिन्न देशों को दशार्ण, चेदि, वज्र आदि भी कहा जाता था । किन्तु जब चन्देलों ने गुर्जर प्रतिहारों की अधीनता त्यागकर इस प्रदेश में अपने राज्य की स्थापना और उसका विस्तार किया तब उनके शासनकाल में इस पूरे सम्भाग को न केवल एक राजनैतिक एकता ही मिली बल्कि जुझौति या जेजाकभुक्ति के नाम के अन्तर्गत एक रूपता भी मिली । चन्देल शासकों के अभिलेखों में इस प्रदेश को जुझौति या जेजाकभुक्ति ही कहे जाने से इसकी पुष्टि होती है । चन्देलों के अभिलेखों में उल्लिखित इस जेजाकभुक्ति नाम की पुष्टि उन विदेशी यात्रियों के विवरणों से होती है जो बुन्देलों के उत्कर्ष के पूर्व इस प्रदेश में आये । उदाहरण के लिये मदनपुर के सन् ११८२ ई० के एक अभिलेख में इसका उल्लेख इस प्रकार आया है कि -

अर्णो राजस्य पौत्रेन श्री सोमेश्वर सूनुना

जेजाभुक्ति देशोयं पृथ्वि राजेन लुण्टित: सं० १२३६ ।

---

५ - गौर० पृ० २ - ५

६ - आरकेलाजीकल सर्वे आफ इंडिया भाग १० पृ० ९८, भाग २१ पृ०१७३-७४, इंडियन ऐंटिक्वेरी मई १९०८ ई० में डा० स्मिथ का `हिस्ट्री एण्ड क्वायनेज आफ चंदेल डायनेस्टी आफ बुन्देलखण्ड` शीर्षक का लेख पृ० ११४ - ४८, दिल्ली के तोमर (द्विवेदी) पृ० ४१ पाद टिप्पणी १ ।

(2)

उपरोक्त अभिलेख के बहुत पहले हर्ष के काल (६०६-४६) में चीनी यात्री ह्नसांग अपने भारत भ्रमण में इस प्रदेश से ही गुजरा था । वह इस प्रदेश को चिन्चिटो नाम से सम्बोधित करता है, जो सम्भवत: जुझौति का ही बिगड़ा रूप है । 27 एक दूसरा उल्लेख अलबरुनी का है जोकि महमूद गजनवी के आक्रमणों के दौरान (१०००-१०२६) इस प्रदेश में आया था । वह इसका जाजाहोती के नाम से उल्लेख करता है । 28 एक अन्य महत्वपूर्ण उल्लेख इब्नबतूता का है । यह मूर यात्री मुहम्मद तुगलक के काल में सन् १३३३ ई० में भारत आया था । उसने भी इस सम्भाग की यात्रा की थी और वह चन्देलों की प्रसिद्ध राजधानी खजुराहो का कजरा नाम से उल्लेख करता है । 29

ऐसा कहा जाता है कि इस प्रदेश का नाम जेजाकभुक्ति एक चन्देल शासक जयशक्ति अथवा जेजक के नाम पर पड़ा जोकि चन्देल राज्यवंश के स्थापक चन्द्रवर्मन का पौत्र कहा जाता था । जयशक्ति के पश्चात् (८५०) इस प्रदेश पर चन्देलों का वास्तविक प्रभावशाली शासन यशोवर्म्मन ने १० वीं सदी के प्रथम अर्धांश में स्थापित किया । यशोवर्म्मन के बाद के काल में मैं धंग (९५०-१००२ ई०) गंड (१००२ - ३ - १०१८), विद्याधर (१०१८-१०२२), कीर्तिवर्म्मन (१०७० - १०९८) और मदनवर्म्मन (११२९-११६३), यशोवर्म्मन द्वितीय (११६५ ई०) आदि विशेष प्रसिद्ध चन्देल शासक हुए थे । 30 यशोवर्म्मन के उत्तराधिकारी परमार्दिदेव या परमाल (११६६-१२०२ ई०) के काल में चन्देलों का

---

७ - वाटर्स० का अंग्रेजी अनुवाद २, पृ० २५१

८ - साचौ० का अंग्रेजी अनुवाद १, पृ० २०२, इलियट डासन० १ पृ०५७,५८,३८३-८४

९ - गिब्स० का अंग्रेजी अनुवाद पृ० २२६, इब्नबतूता के रेहला का मेहदीहसन कृत अंग्रेजी अनुवाद पृ० १९९ ।

१० - विशद् विवरण के लिये देखें :-

हिस्ट्री आफ दी चंदेलाज (बोस) पृ० १८-११५, १९७, अर्ली रूलर्स आफ खजुराहो (मित्रा) पृ० ५०-११७ ।

(3)

पतन प्रारम्भ हो गया । परमाल को १२ वीं सदी में पहले पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण और बाद में कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमणों का सामना करना पड़ा । वह वैसे ही निर्बल शासक था । इन आक्रमणों ने उसकी शक्ति को और जर्जर कर दिया, जिससे चन्देली राज्य विघटित होने लगा और उनकी शक्ति में जैसे घुन लग गया । परमाल के उत्तराधिकारियों त्रैलोक्यवर्म्मन (१२०५-१२४०-४१), वीरवर्म्मन (१२४७ - ८६), भोजवर्म्मन (१२८६ - ८६) आदि ने बार बार होने वाले मुस्लिम आक्रमणों का सामना तो किया पर उनकी शक्ति बराबर क्षीण होती गई और अन्त में सन् १३०६ ई० में जब अलाउद्दीन ने इस प्रदेश पर आक्रमण कर दिया तब तो चन्देलों की भाग्य लक्ष्मी ही उनसे रूठ गई और जैसा कि डा० स्मिथ का कथन है " प्रदेश में उनका कोई महत्व नहीं रह गया और अब वे केवल छोटे मोटे रजवाड़ों की तरह शासन करते रहे ।[11] 31

चन्देलों के पतन और बुन्देलों के उत्कर्ष के बीच इस प्रदेश में छोटे छोटे कई राज्य बन गये । इस प्रदेश का दक्षिण और दक्षिण पश्चिम का भू-भाग गोंडो के अधिकार में चला गया । महोबा के निकटवर्ती प्रदेशों और उत्तरी पूर्वी भागों पर भार शासन करने लगे और झांसी से लगे गढ़कुण्डार, ओरछा, उन्नाव आदि के प्रदेश खंगारों के अधिकार में आगये । कहा जाता है कि खंगारों ने कुछ समय पश्चात् भारों से महोबा के भी कुछ प्रदेश छीन लिये । संक्षेप में बुन्देलों के आगमन के पूर्व इस भाग की राजनैतिक स्थिति डांवाडोल सी थी ।[12] 32

२ - बुन्देलों का अभ्युदय

बुन्देलखण्ड के बुन्देले शासक स्वयं को गहरवार क्षत्रिय मानते हैं और उनकी वंशावलियों व परम्पराओं के अनुसार उनके वंश का उद्भव राजा पंचम से

---

११ - बंगाल० १, १८८१ पृ० २२ स्मिथ का यह लेख `ए कन्ट्रीब्यूशन टु दी हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड (पृ० १-५३), अर्ली रूलर्स आफ खजुराहो (मित्रा) पृ०१ भी देखें ।

१२ - बंगाल० १ , १८८१ पृ० २२, ४४, ओरछा गज़० पृ० ६, १४ ।

हुआ था। यह पंचम काशी के गहरवार राजा कर्णपाल के पुत्र थे। ओरछा गजेटियर के अनुसार कर्णपाल के तीन पुत्र थे। इनमें हेमकर्ण ज्येष्ठ न होते हुए भी उनका प्रिय पुत्र था। लाल कवि का विवरण इससे विभिन्न है। वे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ छत्रप्रकाश में लिखते हैं कि पंचम के पिता का नाम वीरभद्र था, जो कि काशी के राजा और गहरवार क्षत्री थे। उनके पांच पुत्र थे। पहले चार पुत्र ज्येष्ठ रानी से थे और पंचम छोटी रानी से थे। वीरभद्र पंचम को अधिक चाहते थे इसलिए उन्होंने उन्हीं को अपनी गद्दी सौंपी। पंचम के अन्य चारों भाई उनके विरुद्ध एक हो गये और उन्होंने पंचम को गद्दी से खदेड़ दिया। कुछ समय पश्चात् पंचम ने फिर उन्हें पराजित कर अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लिया। पंचम के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी वीर का उल्लेख किया जाता है। उसने अपनी सीमाओं का विस्तार दक्षिण पश्चिम की ओर विशेष रूप से कर महौनी को अपनी राजधानी बनाया। यहां यह ध्यान रहे कि यह महौनी जालौन जिले के परगने कौंच में एक तहसील है, अस्तु यह कहना असंगत न होगा कि वीर के काल में ही बुन्देलखण्ड में सम्भवत: बुन्देलों की शक्ति के अंकुर जम गये। ऐसा अनुमान होता है कि बुन्देलों ने इस प्रदेश में १३ वीं सदी के प्रथम अर्द्धांश में प्रवेश कर अपने कुछ छोटे मोटे राज्य बनाये। शाहबुद्दीन गौरी (११९१ - १२०६) और उसके कुतबुद्दीन ऐबक (१२०६ - १० ई०) जैसे सेनापतियों ने उत्तरी भारत के राजपूत राज्यों को समाप्त कर दिया था और विशेष कर कन्नौज, काशी के गहरवार शासक उनके आक्रमण से बहुत ही अधिक प्रभावित हुए थे। इसलिए ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा कि काशी और कन्नौज के इन्हीं गहरवारों की एक शाखा में जो कालान्तर में बुन्देलों के नाम से प्रसिद्ध

---

१३ - ओरछा गज़ॆ० पृ० ११-१२।

१४ - छत्र प्रकाश पृ० ४-८, गौरे० पृ० ११६, ओरछा गज़ॆ० पृ० ११-१२।

१५ - छत्र प्रकाश पृ० ९-१०, बंगाल० १९०२, पृ० १०५।

36

हुई, इस प्रदेश में इसी समय प्रवेश किया होगा। इस समय बुन्देलखण्ड में चन्देलों की शक्ति जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि परमाल के ही काल से क्षीण होने लगी थी और उनकी निर्बल स्थिति ने बुन्देलों को इस प्रदेश में घुसने का अवसर दे दिया। बुन्देलखण्ड में बुन्देलों द्वारा सत्ता हस्तगत किये जाने का एक महत्वपूर्ण चरण गढ़कुण्डार की विजय थी। यह विजय सोहनपाल बुन्देला ने गढ़कुण्डार के खंगार शासक को छल बल से हराकर प्राप्त की थी। गढ़कुण्डार विजय की तिथि

---

१६ - बुन्देला शब्द की उत्पत्ति विवादग्रस्त है। बुन्देले शासक इसकी उत्पत्ति बूंद से मानते हैं। कहा जाता है कि जब पंचम ने देवी को प्रसन्न करने के लिये अपने गले पर तलवार का वार करना चाहा तब देवी ने उनका हाथ पकड़ लिया, लेकिन तलवार हल्के से छू जाने के कारण रक्त की बूंद निकल आयी। इसी बूंद से पंचम के वंशज बुन्देले कहलाये। हादी कुतुल अकालीम के अनुसार बुन्देले एक बांदी और गहरवार क्षत्रिय के सम्मिलन से उत्पन्न उनके वंशज थे। इसलिए वे बांदीले कहे जाने लगे जो कालान्तर में बुन्देला नाम में बदल गया।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि पंचम ने सम्भवत: देवी का वरदान पाने के बाद अपने नाम के आगे विंध्येला जोड़ दिया, क्योंकि पंचम की इष्ट देवी विन्ध्यवासिनी का मन्दिर विन्ध्य पर्वत श्रेणी में ही था और जिस प्रदेश में पंचम और उसके वंशजों ने राज्यसत्ता ग्रहण की उसमें भी विन्ध्य पर्वत श्रेणियां बिखरी हुई थीं, इसलिए सम्भवत: इस प्रदेश का नाम जेजाकभुक्ति के साथ ही विंध्येलखण्ड पड़ गया होगा और पंचम और उसके वंशजों के आगे विंध्येला जोड़ दिया गया होगा। कालान्तर में विंध्येला बुन्देला में और विन्धेलखण्ड बुन्देलखण्ड में बदल गया होगा।

छत्र प्रकाश पृ० ६ - ८, बंगाल० १६०२, पृ० १०४, ओरछा गज़े० पृ० १२, मा० उ० १, पृ० २०२- २०३, छत्रसाल० पृ० १६, ३०, ३१।

(6)

बुधवार २, कार्तिक १३४५ सम्वत् दी जाती है। इर्विन का अनुमान है कि यह विजय १२६२ ई० में प्राप्त की गयी थी, जबकि औरछा गजेटियर इसे सं० १३१४ या सन् १२६७ में निश्चित करता है। इर्विन और मजबूतसिंह के मत अधिक सही प्रतीत होते हैं और किसी निश्चित सूचना के अभाव में फिलहाल यह माना जा सकता है कि सोहनपाल ने १३ वीं सदी के द्वितीय अर्द्धांश में ही कभी गढ़कुण्डार पर अधिकार किया होगा।[37]

४ - रुद्रप्रताप से वीरसिंह देव तक

सोहनपाल और उसके उत्तराधिकारी लगभग १५३१ ई० तक गढ़कुण्डार से ही आस पास के प्रदेश पर शासन करते रहे। सन् १५३१ ई० में सोहनपाल के ही एक वंशज रुद्रप्रताप ने ओरछे की नींव डाली और उसे अपनी राजधानी बना लिया। इस समय तक बाबर मुगल राज्यवंश को भारत में स्थापित कर चुका था और उसके आक्रमण तथा लोदी साम्राज्य के विघटन से उत्तरी भारत की जो राजनैतिक स्थिति डावां डोल हो गयी थी, उससे लाभ उठाकर रुद्रप्रताप ने अपने राज्य का और अधिक विस्तार कर लिया। रुद्रप्रताप के १२ पुत्र थे तथा उसका राज्य उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में विभाजित हो गया। बुन्देलखण्ड के सभी राजे रजवाड़े स्वयं को रुद्रप्रताप के इन्हीं १२ पुत्रों में से किसी न किसी का वंशज मानते हैं। रुद्रप्रताप और उसके उत्तराधिकारी भारतीचन्द्र ने बुन्देलों की सत्ता का और अधिक विस्तार किया और सम्भवतः उन्हीं के समय से इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा।[38]

भारतीचन्द्र (१५३१ - ५४) की मृत्यु के पश्चात् मधुकरशाह (१५५४ - ९२) गद्दी पर बैठा। मधुकरशाह ने ग्वालियर तथा सिरौंज पर अधिकार कर मुगल सम्राट् अकबर को अपना शत्रु बना लिया। कई बार मुगल सेना मधुकरशाह के विरुद्ध भेजी गयी और उसे विवश होकर शाही अधीनता भी स्वीकार

---

३७ - छत्रसाल० पृ० १६, ओरछा गज़े० पृ० १५, इर्विन २, पृ० २१७ ।

३८ - छत्रसाल० पृ० १६ -२०, ओरछा गज़े० पृ० १७, इर्विन २, पृ० २१८ ।

करनी पड़ी। मधुकरशाह के पश्चात् (१५६२) उसका ज्येष्ठ पुत्र रामशाह गद्दी पर बैठा, किन्तु मुगल सम्राट् जहांगीर ने अपने सिंहासनारोहण पर ओरछा का राज्य अपने कृपापात्र, उसके छोटे भाई वीरसिंह देव को दे दिया और रामशाह को चन्देरी और बानपुर की जागीरें दे दीं। वीरसिंह देव ने अकबर के काल में (१६०२-ई० अबुलफज़ल की हत्या कर जहांगीर की कृपा अर्जित की थी। कालान्तर में वीरसिंह ने बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता का विस्तार कर अपनी धाक जमाली और कहा जाता है कि उन्होंने एक ही समय में ५२ किलों, गढ़ियां, कुओं, तालाबों आदि की नींव रखी थी। इन्हीं गढ़ियों में एक झांसी का किला भी था जो लगभग १६१३ ई० में निर्मित हुआ था। जहांगीर की मृत्यु (२८ अक्टूबर, १६२७ ई०) के कुछ ही समय पूर्व वीरसिंह देव की मृत्यु हो गई।

५ - जुझारसिंह का विद्रोह

वीरसिंह देव के पश्चात उसके ज्येष्ठ पुत्र जुझारसिंह ने गद्दी प्राप्त की। शासन के प्रारम्भ में ही उसकी मुगल सम्राट् शाहजहां से कुछ अनबन हो गयी और जुझार आगरा छोड़कर ओरछा चला आया। मुगल सेनाओं ने महाबतखां, खांजहांलोदी और अब्दुल्लाखां के सेनापतित्व में जुझारसिंह के राज्य पर आक्रमण कर दिया। अब्दुल्ला खां ने एरच पर भी अधिकार कर लिया। अब जुझार ने मार्च, १६२९ ई० में शाहजहां से क्षमा प्रार्थना की और क्षमा प्राप्त कर वह शाही सेना के साथ सम्मिलित होकर दक्षिण चला गया। वहां कुछ समय रहने के बाद (२६ जून, १६३४-१५ जून, १६३५) ओरछा लौट आया।

दक्षिण से लौटकर जुझार ने चौरागढ़ के गोंड राजा

---

१९ - अकबरनामा० ३, (अंग्रेजी) पृ० २६४-६५, ३२४-२६, ३७९,८०३, ८२३-२४।

२० - जहांगीर (बेणीप्रसाद) पृ० ५०-५५, इलियट डासन० ६,पृ० १५४-६०,२८८,२९९, जहांगीरनामा (हिन्दी) पृ० ४५-४६ पाद टिप्पणी।

२१ - इम्साल० पृ० २०-२१, औरंग० १, पृ० १६-१७, इर्विन० २, पृ० २२०, इलियट डासन० ७, पृ० ६-७।

२२ - चौरागढ़ - मध्यप्रदेश के जिला नरसिंहपुर में गाडरवारा स्टेशन से १० मील दक्षिण पूर्व में।

भीमनारायण को मार कर किले पर अधिकार कर लिया । जुझारसिंह के इस कुकृत्य का समाचार पाते ही शाहजहां भड़क उठा । उसने जुझार से भीमनारायण के राज्य का लूट का भाग मांगा । जब जुझार देने को सहमत नहीं हुआ तब मुगल सेना ने खान-ए-दौरान, फिरोजजंग और खां जहां के नेतृत्व में बुन्देलखण्ड में प्रवेश कर जुझारसिंह पर आक्रमण कर दिया । जुझार ने मुगल सेना का सबल सामना किया किन्तु मुगलों के सम्मुख टिक न सका और पुत्र सहित चांदा और देवगढ़ के जंगलों में भाग गया, जहां गोंडो ने उसकी हत्या करदी ।[43] यहां इस ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है कि झांसी के सम्बन्ध में सबसे पहला विश्वसनीय उल्लेख शाहजहां के दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी के पादशाहनामा में मिलता है । इसके अनुसार जुझार के विरुद्ध आक्रमण के समय ही शाहजहां की सेना ने झांसी की ओर प्रस्थान किया था । जुझार के समर्थक एक बसन्त ने मुगल सेना का विरोध किया किन्तु मुगल सेनापति मुकरमातखां ने किले का घेराव और कब्जा कर दिया जिससे विवश होकर उसे अक्टूबर १६३५ ई० में हथियार डालने पड़े । झांसी का खंजाना सैनिकों के हाथ लगा और झांसी का किला विट्ठलदास गौड के भाई गिरधरदास को दे दिया गया ।[44]

६ - चम्पतराय का मुगल विरोधी संघर्ष

इधर जुझार और उसके परिवार के सदस्यों के इस दुःखद अन्त से समस्या का समाधान नहीं हुआ । मुगलों के विरुद्ध संघर्ष जिसे जुझार ने स्वार्थवश प्रारम्भ किया था, अब उसने लोक संघर्ष का रूप धारण कर लिया । इसका नेतृत्व अब छत्रसाल के पिता चम्पतराय कर रहे थे । उनके पिता भगवतराय, रुद्रप्रताप के तीसरे पुत्र और उदयाजीत के पौत्र थे । शाहजहां के विरुद्ध जुझार

---

२३ - छत्रसाल० पृ० २१-२२, औरंग० १, पृ० १८-३१, इलियट डांसन० ७, पृ०४७-५०, इर्विन० २, पृ० २२० - २२२ ।

२४ - मा० उ० (हिन्दी) १, पृ० २४२, झांसी गजे० पृ० २६६, इलियट डांसन० ७, पृ० ५०, शाहजहां आफ देहली (डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना) पृ०६० ।

के विद्रोह में चम्पत ने भी उसका साथ दिया था।[45] चम्पतराय ने अब जुझारसिंह के कनिष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह के पक्ष में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। इससे ओरछे के चारों ओर अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। मुगल सेना और बुन्देलों में ओरछा तथा झांसी के बीच १८ अप्रेल, १७४० को मुठभेड़ भी हुई। इस संघर्ष में बुन्देलों को मुंह की खानी पड़ी तथा पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया।[46] इसके एकदम बाद ही खैलार[47] के संघर्ष में चम्पतराय का ज्येष्ठ पुत्र सारवाहन काम आया। किन्तु इन आपत्तियों से चम्पत के कार्यों में कोई बाधा नहीं पड़ी। अब उन्होंने मुंगलों से सीधे युद्ध न करके उनके ठिकानों पर अचानक धावे बोलकर शाही प्रदेशों की लूटमार प्रारम्भ करदी। जब सम्राट् चम्पतराय के विद्रोह का सामनाकरने में असमर्थ रहा तब उसने कूटनीति से काम लिया। उसने बुन्देलों में फूट डालने के उद्देश्य से जुझारसिंह के छोटे भाई पहाड़सिंह को ४ जून, १६४२ को ओरछा का शासक नियुक्त किया।[48] इस समय झांसी का किला तथा आस पास के गांव ओरछे में ही सम्मिलित थे। चम्पतराय का उद्देश्य ओरछा को मुगल अधीनता से मुक्त कराना था। पहाड़सिंह को गद्दी मिल जाने पर उसका उद्देश्य पूर्ण हो गया। अब उन्होंने पहाड़सिंह के पक्ष में विद्रोह समाप्त कर दिया। किन्तु पहाड़सिंह व चम्पतराय की मैत्री पूर्ण सम्बन्ध अधिक दिनों तक न चल सके। चम्पतराय की ख्याति एवं यश से पहाड़सिंह डरता था, साथ ही वह चम्पतराय से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके मुगल सम्राट् को भी अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने चम्पतराय को मरवाने के दो बार असफल षड्यन्त्र भी रचे। चम्पतराय पहाड़सिंह का विरोधकर बुन्देलों में ही फूट डालना नहीं चाहते

---

45 २५ - छत्रसाल० पृ० २३-२४, इर्विन० २, पृ० २२२, मा० उ० १, पृ० १३६-३७।

46 २६ - छत्रसाल० पृ० २४, इर्विन० २, पृ० २२२, इलियट डासन ७, पृ० ६१, औरंग० पृ० ३०।

47 २७ - खैलार - झांसी से ७ मील दक्षिण।

48 २८ - छत्रसाल० पृ० २५, इर्विन० २, पृ० २२३।

थे, इसलिये वे दारासिकोह की सेना में जाकर सम्मिलित हो गये। उन्हें कौंच[29] की जागीर भी प्रदान की गयी। कुछ समय पश्चात् दारासिकोह किसी कारणवश चम्पतराय से अप्रसन्न हो गया और उसने कौंच की जागीर छीनकर पहाड़सिंह को दे दी।[30] इससे चम्पतराय का विश्वास दारा पर से उठ गया। वह अपनी पैतृक जागीर महेवा लौट आये और एक बार फिर से विद्रोही बनगये।[31]

इसी समय शाहजहां की अस्वस्थता से चम्पतराय को दारा से प्रतिशोध लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने शाहजहां के चारों पुत्रो के बीच उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब का साथ दिया और सामूगढ़ के युद्ध में (२९ मई, १६५८), औरंगजेब और मुराद की ओर से भाग लिया। इसके बाद ही औरंगजेब ने चम्पतराय को खलीलुल्लाह के साथ लाहौर भेज दिया, किन्तु चम्पतराय शीघ्र ही अपनी स्थिति से असंतुष्ट होकर बुन्देलखण्ड लौट आये और मालवा की ओर जाने वाले मार्गों पर उन्होंने लूट मार प्रारम्भ करदी।[32] औरंगजेब इस समय शुजा तथा दारा के दमन में व्यस्त था, इसलिए चम्पतराय की ओर वह विशेष ध्यान न दे सका।

औरंगजेब ने अपने भाईयों से निपट लेने और दिल्ली की गद्दी पर सुरक्षित रूप से जम जाने के पश्चात चन्देरी के देवीसिंह बुन्देला को चम्पतराय का दमन करने के आदेश भेजे। अब चम्पतराय की स्थिति सोचनीय हो उठी। अपने ही लोगों ने उनके विरुद्ध हथियार उठा लिये थे। मुगलों और बुन्देलों की सम्मिलित शक्ति के विरुद्ध अधिक दिनों तक टिकना चम्पतराय के लिए असम्भव सा हो गया। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र रतनशाह तथा भाई सुजानसिंह के द्वारा संधि प्रस्ताव भेजे किन्तु उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसी समय ओरछे की

---

२९ - कौंच- झांसी से ५३ मील उत्तर पूर्व।

३० - छत्रसाल० पृ० २५-२६, इर्विन० २, पृ० २२३-२४, औरंग० ३, पृ०२७-२८।

३१ - इर्विन० २, पृ० २२४, औरंग० ३, पृ० २८।

३२ - छत्रसाल० पृ० २६-२७, औरंग० ३, पृ० २७-२८, मा० उ० १, पृ० १३७-३८, छत्र प्रकाश, पृ० ४५-५०, इर्विन० २, पृ० २२४।

सेनाओं ने सुजानसिंह को वेदपुर के किले में घेर लिया । सुजानसिंह ने ओरछे की सेना का डटकर सामना किया, किन्तु अन्त में अपनी स्थिति असहाय समझकर आत्म हत्या करली ।[53]

अब चम्पतराय ने सहरा की ओर प्रस्थान किया । सहरा के इन्द्रमणी पर उनके कुछ उपकार थे, इसलिए उसके बदले में उन्होंने उसके पास शरण लेने का विचार किया । ओरछा का राजा सुजानसिंह चम्पतराय का पीछा करता हुआ सहरा आ पहुंचा । युद्ध में धंधेरे बुरी तरह परास्त हुए । मुगलों तथा सुजानसिंह की सेनाओं से पीछा छुड़ाने के लिये धंधेरों ने चम्पतराय को ही मार डालने की योजना बनायी । अस्वस्थ चम्पत को जब मोरनगांव की ओर ले जाया जारहा था, तभी मार्ग में योजनानुसार धंधेरे चम्पत पर टूट पड़े । अब चम्पत को स्थिति समझते देर न लगी तथा उन्होंने और उनकी रानी लालकुंवर ने आत्म हत्या करली । धंधेरों ने चम्पतराय का सिर काटकर नवम्बर १६६१ में औरंगजेब के पास भेज दिया ।[54]

७ - छत्रसाल का उत्कर्ष

चम्पतराय की मृत्यु के समय छत्रसाल की आयु केवल १२ वर्ष थी । माता-पिता की मृत्यु से छत्रसाल के तीनों भाई अंगदराय, रतनशाह तथा गोपाल निराश हो चुके थे । फिर जुझारसिंह, पृथ्वीराज और चम्पतराय के दुःखद अन्त से बुन्देलखण्ड की जागीरदारों ने चम्पतराय के पुत्रों को शरण देने का साहस भी नहीं रह गया था । इसी समय (१६६५) मिर्जा ~~राजा~~ राजा जयसिंह ने शिवाजी के विरुद्ध दक्षिण की ओर सेना सहित प्रस्थान किया । अब छत्रसाल अपने भाई अंगद तथा चाचा जामशाह के साथ उनकी सेना में जाकर सम्मिलित हो गये । पुरंधर के घेरे में (मई - १६६५) उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई, जिससे उन्हें एक छोटा सा मुगल मनसब भी प्राप्त हुआ । उन्होंने बीजापुर के अभियान में भी भाग लिया, और कहा जाता है कि

---

53 ३३ - इर्विन० २, पृ० २२५, छत्र प्रकाश पृ० ५४-५७, छत्रसाल० पृ० २७, मा० उ० १, पृ० १३७, औरंग० ३, पृ० २६-२६ ।

54 ३४ - छत्रसाल पृ० २७-२६, इर्विन० २, पृ० २२५ -२८, छत्र प्रकाश पृ० ६२-६५, औरंग ३, पृ० २६-३० ।

(12)

देवगढ़ के राजा के विरुद्ध दिलेरखां के साथ भी रहे। किन्तु उन्हें रह रह कर अपने पिता की मृत्यु की याद आती रही। अब उन्हें मुगलों की सेना में रहना आंसने लगा। शिवाजी के मुगल विरोधी स्वतंत्र संग्राम से और उनकी चमत्कारिक सफलताओं से भी छत्रसाल प्रभावित हुए थे। शिवाजी के विरुद्ध शस्त्र पकड़ने पर उन्हें आत्म ग्लानि होने लगी थी। अस्तु, उन्होंने जैसे इसका प्रायश्चित करने को ही शिवाजी की सेवा करने की ठानी। वे एक दिन मुगल सेना से भाग निकले और भीमा नदी पार कर उन्होंने शिवाजी से भेंट की।[55] शिवाजी ने उनके साहस तथा वीरता से प्रभावित होकर उन्हें बुन्देलखण्ड के स्वतंत्रता संग्राम का श्रीगणेश कर उसका नेतृत्व ग्रहण करने को कहा। छत्रसाल अब शिवाजी की परामर्श मान-कर बुन्देलखण्ड लौट पड़े और उन्होंने दतिया के राजा तथा ओरछा के राजा सुजानसिंह से सहयोग प्राप्त करने की निष्फल चेष्टा की।[56] अगले ३० वर्षों - (१६७१ - १७०७) तक छत्रसाल संघर्ष में ही रत रहे और अन्त में औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों बहादुरशाह (१७०७ - १७१२), जहांदारशाह (फरवरी, १७१२-फरवरी, १७१३), फर्रुखसियर (१७१३-१७१६), मुहम्मदशाह (१७१६-१७४८) आदि को पूर्वी बुन्देलखण्ड में उनकी सत्ता स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा। इस बीच मुगल सम्राटों से उन्हें मन-सब भी मिले और समय समय पर अल्प-काल के लिए वे मुगल अधीनता भी स्वीकार करने को बाध्य हुये।[57] किन्तु छत्रसाल

---

55 ३५ - नुस्खा-इ-दिलकशा (ओजी) पृ० १०१, शिवाजी (सरकार) पृ० १८५-८६, इर्विन० २, पृ० २२८, छत्रप्रकाश पृ० ७८-८०, छत्रसाल०पृ० ३६, मा०उ०१,पृ०१३८

56 ३६ - छत्रसाल पृ० ३६-३७, इर्विन० २, पृ० २२८-२९, छत्रप्रकाश पृ० ७६-८०,शिवाजी (सरकार) पृ० १८५-८६, मा० उ० १, पृ० १३८ ।

57 ३७ - छत्रसाल के औरंगजेब कालीन संघर्ष और उनके औरंगजेब के उत्तराधिकारियों से सम्बन्धों की विशेष सूचना के लिए छत्रसाल० पृ० ४१-७४ देखें।
छत्रसाल को औरंगजेब ने ४००० का मनसब, बहादुरशाह ने ५००० का मनसब, फर्रुखसियर ने पहले ५००० और फिर ६००० के मनसब प्रदान किये थे। छत्रसाल० पृष्ठ ६३, ६६, ६८ ।

का राज्य मुगलों को सदैव खांसता रहा और मुगल सम्राट् मुहम्मद शाह के समय (१७१६- ४८) में मुहम्मदखां बंगश १७२० ई० में इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया गया । पूर्वी बुन्देलखण्ड का वह भाग जिसमें छत्रसाल ने अपनी सत्ता स्थापित की थी, इलाहाबाद सूबे के अन्तर्गत आता था । इसके महत्वपूर्ण महलों एरच, काल्पी आदि पर छत्रसाल का अधिकार था । इधर बंगश दिलेर और साहसी तो था ही । वह पूर्ण रूप से अपने अधीन सूबों का शासक बनना चाहता था, अस्तु वह यह कैसे सहन कर सकता था कि उसके अधीन सूबे के भाग छत्रसाल दाबे रहे । फिर छत्रसाल भी कम नहीं थे, वे उन्हें कैसे छोड़ते । अस्तु दोनों में संघर्ष अनिवार्य ही था ।[38]

८ - बंगश-बुन्देला संघर्ष

काल्पी के मुहम्मदखां बंगश के अधिकार में आ जाने के एकदम बाद ही बुन्देलों ने सन् १७२० के उत्तरार्द्ध में काल्पी को लूट कर वहां के आमिल पीरअली खां और उसके पुत्र को मौत के घाट उतार दिया । किन्तु मुहम्मदखां बंगश के प्रसिद्ध चेले दिलेर खां ने बढ़कर बुन्देलों को काल्पी से खदेड़ दिया। अब बुन्देले छत्रसाल के नेतृत्व में दिलेरखां का सामना करने के लिये आगे बढ़े । इस बार ओरछा, दतिया और चन्देरी के बुन्देला राजाओं ने भी सवाई जयसिंह के उकसाने पर छत्रसाल का साथ दिया । दिलेरखां ने बुन्देलों का डटकर सामना किया किन्तु अन्त में वह मौदहा[39] में चारों ओर से घिर गया और मारा गया ।[40]

मुहम्मदखां बंगश इस समय (१७२१-२३) जोधपुर के राजा अजीतसिंह राठौर के विरुद्ध सैनिक अभियानों में व्यस्त था, इसलिए सन् १७२३ तक छत्रसाल के विरुद्ध कोई कड़ा कदम नहीं उठाया जा सका । इस बीच

---

३८ - छत्रसाल पृ० ७६-७७, बंगाल० १८७८, पृ० २७३-७५, २८०-८३ ।

३९ - मौदहा - हमीरपुर से २० मील ।

४० - छत्रसाल पृ० ७७-७९, इर्विन० २, पृ० २२१ ।

मुहम्मदखां बंगश की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर छत्रसाल ने अपनी सीमाओं का और विस्तार कर लिया । जब १७२३ के अन्त में बंगश जोधपुर से लौट आया तब उसे शीघ्र ही इलाहाबाद जाकर छत्रसाल का दमन करने के आदेश दिये गये ।[41] 61

मुहम्मद खां बंगश ने सैनिक तैयारियां कर एक विशाल सेना के साथ जनवरी १७२७ के अन्त में पूर्वी बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया । इस बार बंगश ने बुन्देलों को खदेड़ कर उनके २०० मील तक के भू-भाग पर अधिकार कर लिया और सेंवढ़ा से ८ मील पर आ पहुंचा । बुन्देलों ने शत्रु को धकेलने का भरसक प्रयास किया किन्तु असफल रहे । छत्रसाल की आयु इस समय ८० वर्ष हो चुकी थी फिर भी उन्होंने अपने पुत्रों तथा पौत्रों सहित मुहम्मद खां की सेनाओं का जमकर सामना किया । किन्तु वे बंगश की प्रगति को नहीं रोक सके और लगभग २ साल के कड़े संघर्ष के बाद बंगश ने उन्हें जैतपुर के किले में घेर लिया । छत्रसाल ने निरुपाय होकर आत्म समर्पण कर दिया । बंगश ने सम्राट् मुहम्मदशाह को अपनी सफलताओं से सूचित कर छत्रसाल को दिल्ली लाने की आज्ञा मांगी । किन्तु ३ माह तक सम्राट् की ओर से बंगश को कोई आदेश नहीं मिला । इसी बीच होली का त्यौहार निकट आरहा था । जगतराज,हिरदेशाह ने बंगश से त्यौहार मनाने के लिए सूरजमऊ चले जाने की इच्छा प्रकट की । बंगश इसमें बुन्देलों की छुपी चाल को न समझ सका और उसने छत्रसाल को कुटुम्ब सहित सूरजमऊ चले जाने की अनुमति दे दी ।[42] 62

६ - बाजीराव की सामयिक सहायता और बुन्देलखण्ड में मराठा सत्ता का - बीजारोपण

इसी समय मराठे मालवा में अम्भझेरा के युद्ध (२६ - नवम्बर, १७२८ ई०) में विजय प्राप्त कर पेशवा बाजीराव प्रथम के अनुज

---

61 ४१ - छत्रसाल० पृ० ८०, इर्विन० २, पृ० २३१ ।

62 ४२ - छत्रसाल० पृ० ८२-८६, इर्विन० २, पृ० २३७, बंगाल० १८७८, पृ० २८८-९७ ।

चिमाजी के नेतृत्व में वहां अपना अधिपत्य जमा चुके थे। और स्वयं पेशवा तब देवगढ़ राज्य के प्रदेशों में सैनिक अभियान पर था। जब छत्रसाल ने पेशवा से सहायता की याचना की। छत्रसाल का सन्देश पाते ही पेशवा ने बड़ी तेजी से जैतपुर की ओर कूच किया और मुहम्मदखां बंगश को जैतपुर के किले में घेरकर उसकी स्थिति बहुत खराब करदी। मई १७३० के लगभग मराठा छावनी में बीमारी फैल जाने और वर्षाऋतु निकट आ जाने से पेशवा पूना लौट गया, किन्तु छत्रसाल फिर भी जैतपुर का घेरा कसते रहे। फलस्वरूप अगस्त १७३० में बंगश को छत्रसाल से संधि करनी पड़ी और उनके राज्य पर पुन: आक्रमण न करने का वचन देने पर ही छत्रसाल ने उसे सुरक्षित लौट जाने दिया।[63]

पेशवा बाजीराव की इस सामयिक सहायता से कृतज्ञ होकर छत्रसाल ने उसे अपना दत्तक पुत्र मानकर राज्य का एक तिहाई भाग देने का वचन दिया।[64] छत्रसाल की इसी इच्छा के अन्तर्गत उनकी मृत्यु के अनन्तर पेशवा बाजीराव को जो प्रदेश मिले, कहा जाता है कि उनमें फांसी भी सम्मिलित था।[65] यहीं से फांसी के मराठा संस्थान का इतिहास प्रारम्भ होता है।

---

63 ४३ - दिघे० पृ० १०८, छत्रसाल० पृ० ६०-६६, इर्विन० २, पृ० २४०-४१।

64 ४४ - छत्रसाल० पृ० ६७, सरदेसाई०२,मु० पृ० १०७, गौरे० पृ० २१८-२०, पारसनीस० पृ० ७३-७५, बंगाल० १८७८, पृ० २९८-३०१।

65 ४५ - पांग्सन० पृ० १०५, सर देसाई० २, पृ० १०८, गौरे० पृ० २३२, पारसनीस० पृ० ८१, छत्रसाल० पृ० १२६।

अध्याय - २

फांसी में मराठा शक्ति की स्थापना

१ - छत्रसाली राज्य का बटवारा

छत्रसाल की मृत्यु (४ दिसम्बर, १७३१) के पश्चात् छत्रसाल के राज्य का बटवारा प्रमुख रूप से उनके तीन उत्तराधिकारियों के बीच होना था। छत्रसाल के निर्देशानुसार उनके राज्य को पहले उनके पुत्रों हिरदेशा और जगतराज के बीच क्रमश: १।४ और ३।४ के हिसाब से बांटा जाना था और फिर उन दोनों के अलग अलग राज्य में से एक एक तिहाई भाग पेशवा को दिये जाने थे। यह बटवारा कैसे हुआ इसकी कोई सही और विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं है। फिर भी उपलब्ध सूचना के अनुसार हिरदेशा को पन्ना, कालिंजर, मऊ, गरब और धामौनी आदि मिले थे, जबकि जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, मुरागढ़ और बांदा मिले। पेशवा को छत्रसाली राज्य में जो भाग मिला उसमें कहा जाता है कि काल्पी, हटा, सागर, फांसी, सिरोंज, कोंच और गढ़ाकोटा के प्रदेश थे[1]। इस प्रकार सामान्यत: यह धारणा है कि फांसी छत्रसाल के राज्य में आती थी और यह पेशवा को छत्रसाल से प्राप्त हुई थी। गोरेलाल तिवारी के अनुसार फांसी पहले ओरछे के राज्य में थी किन्तु जब बहादुरशाह ने छत्रसाल से संधि की तब फांसी छत्रसाल के पास आगई थी[2]। गोरेलाल अपने इस कथन की पुष्टि में कुछ और नहीं कहते। डा० भगवानदास गुप्त ने भी अपनी पुस्तक " छत्रसाल बुन्देला " में कोई ऐसा उल्लेख नहीं किया है कि जिससे पता चलता हो कि बहादुरशाह ने कभी फांसी छत्रसाल को दी थी। कहीं और भी इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। अस्तु गोरेलाल का यह कथन विश्वसनीय सा प्रतीत नहीं होता।

---

१ - छत्रसाल० पृ० १२६, पांग्सन० पृ० १०५, पारसनीस० पृ० ८१।

२ - गोरे० पृ० २२२, ~~xxxxx~~ ।

२ - झांसी ओरछा राज्य में

कहा जाता है कि जहां झांसी स्थित है वहां पहले ओरछे के राजा भारतीचन्द्र (१५३१-५४) के राज्यकाल में सन् १५५३ ई० में कुछ झोपड़ियों की एक बस्ती सी थी । यह बस्ती वीरशाह और असोले नामक दो अहीर परिवारों की थीं, जोकि किसी पश्चिमी प्रदेश से यहां आकर बस गये थे । इन लोगों ने अपने चरते हुए पशुओं पर नजर रखने के लिए बंगरा पहाड़ी पर, जिस पर अब झांसी का किला स्थित है, कुछ झोपड़ियां डाल रखी थीं । इस पहाड़ी के आस-पास घना जंगल था । यह पहाड़ी और इसके इर्द गिर्द का भू-भाग ओरछा के अन्तर्गत लहरगिर्द[३] नामक गांव के अन्तर्गत आता था । यह गांव और लहर की पहाड़ी अभी भी झांसी शहर के उपनगर सीपरी बाजार के पास स्थित है । अनुमान है कि कालान्तर में अहीरों के परिवार, जोकि बंगरा पहाड़ी और उसके निकट ही बसे थे, बढ़ते गये होंगे और वहां धीरे धीरे एक छोटी मोटी बस्ती बन गयी होगी । भारतीचन्द्र के बाद यह गांव और बस्ती उनके भाई और उत्तराधिकारी ओरछा के राजा मधुकरशाह (१५५४-९२) के अधिकार में रही । मधुकरशाह की मृत्यु के पश्चात् लहरगिर्द और बंगरा पहाड़ी पहले रामशाह के अन्तर्गत आयी और जब १६०६ ई० में जहांगीर ने रामशाह को हटाकर ओरछा का राज्य वीरसिंह देव को दे दिया तब लहरगिर्द और उससे संलग्न प्रदेश उनको ओरछा के राज्य के साथ ही प्राप्त हुआ । यह भू-भाग ओरछे के बहुत ही समीप, केवल १० मील आगरा जाने वाली सड़क पर स्थित होने के कारण दूरदर्शी वीरसिंह देव के लिए महत्त्वपूर्ण हो उठा । उन्होंने ओरछे की प्रथम रक्षापंक्ति स्थापित करने के उद्देश्य से बंगरा पहाड़ी पर एक किला बनवाया । उनके काल में कहा जाता है इसका नाम

---

३ - लहर कीपहाड़ी किले से लगभग २ मील पश्चिम में स्थित है ।

मंजमहल था[४]। एक और जनश्रुति के अनुसार वीरसिंह देव ने अपने राज्य की सुरक्षा के लिये ५२ गढ़ियां बनायी थीं। झांसी की गढ़ी या किला इन्हीं में से एक था[५]। इस किले के आस-पास अब धीरे धीरे एक गांव बस गया और इसका नाम बलवन्तनगर रखा गया। इस बलवन्तनगर का ही नाम कालान्तर में झांसी पड़ गया। झांसी नाम की उत्पत्ति के बारे में एक मनोरंजक जनश्रुति है कि एक बार जैतपुर का कोई राजा ओरछा आया। वीरसिंह देव उसके साथ ओरछे के महल की सबसे ऊंची छत पर बैठे झांसी की ओर देख रहे थे। तभी वीरसिंह देव ने झांसी के किले के विस्मय (दिशा) में इशारा करके उनसे पूछा कि क्या उन्हें झांसी का किला दिखाई दे रहा है ? जैतपुर के राजा ने कहा कि उन्हें किले की `झाई सी` (छाया सी) दिखाई दे रही है और यही `झांई सी` कालान्तर में झांसी में परिवर्तित हो गया[६]। वीरसिंह देव की मृत्यु (१६२८ ई०) जहांगीर की मृत्यु के कुछ ही पूर्व हो गई थी। अब जुझारसिंह ओरछे का राजा बना। शाहजहां के शासन काल के प्रारंभ में जुझारसिंह ने विद्रोह किया और जब औरंगजेब को मुगल सेना का सेनापति बनाकर ओरछे के अभियान पर भेजा गया तब शाही सेनाओं ने ओरछे पर आक्रमण करने के पूर्व झांसी पर अधिकार कर लिया। झांसी में इस समय जुझार की ओर से बसंतसिंह नियुक्त था। मुगल सेनापति मकरमतखां ने झांसी पर अधिकार कर गिरधरदास को झांसी का राज्य सौंप दिया[७]। जब जुझारसिंह के पतन के बाद ओरछे के राज्य

---

४ - झांसी गज़० पृ० २६८-६६ ।

५ - वही पृ० २६६ ।

ओरछा गजेटियर के अनुसार माघ सुदी ५ सं० १६७५ (दिसम्बर, १६१८) को इन गढ़ियों की नींव डाली गई थी। इस प्रकार झांसी के किले का निर्माण ओरछा गजेटियर में दी गई उपरोक्त तिथि के अनुसार दिसम्बर, १६१८ में शुरु हुआ होगा। लोकश्रुति भी ऐसी ही है। किन्तु झांसी गजेटियर में झांसी के किले की निर्माण की वर्ष १६१३ दी गई है। यह जानकारी कहां से उपलब्ध हुई, इसका कोई उल्लेख नहीं है। ओरछा गज़० पृ० २३, झांसी गजे० पृ०२६६

६ - झांसी गजे० पृ० २६६ ।

७ - मा०उ० १, पृ० २४२, शाहजहां (सक्सेना) पृ० ८८-८६, झांसी गजे० पृ०२६६ जुझारसिंह के विद्रोह के विशद् विवरण के लिए औरंग० १, पृ० १६-२६, इतस पृ० २०-२२, इर्विन० २, पृ० २०-२२ देखें।

में मिला लिया गया, तब झांसी के आस-पास के प्रदेशों में सुप्रसिद्ध छत्रसाल के पिता चम्पतराय के नेतृत्व में बुन्देले मुगल अधिकारियों से संघर्ष करते रहे। चम्पतराय के नेतृत्व में मुगल विरोधीस्वातंत्र्यसंग्राम के दमन में मुगल सरदारों को असमर्थ पाकर शाहजहां ने कांटे से कांटा निकालने की सोची और मुगल पिट्ठू जुझारसिंह के भाई पहाड़सिंह को सन् १६४२ में ओरछा का राज्य लौटाकर उसे ओरछा का राजा बना दिया। तब से लगभग अगले १०० वर्षों तक झांसी ओरछा के ही अन्तर्गत बनी रही और इसका इतिहास ओरछे से जुड़ा रहा।

३ - झांसी क्या छत्रसाल के राज्य में थी ?

झांसी पर कभी छत्रसाल का अधिकार रहा हो इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता और जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोरेलाल के इस कथन की पुष्टि किसी अन्य स्रोत से नहीं होती कि बहादुरशाह ने छत्रसाल से की गई किसी संधि में उन्हें झांसी प्रदान की हो[८]। फिर एक बात यह भी है झांसी चारों ओर से दतिया ओरछे के प्रदेशों से घिरी हुई थी। छत्रसाल ने किस ओर से प्रवेश कर झांसी पर अधिकार किया होगा या झांसी यदि छत्रसाल के राज्य में थी तो वह कहां से जुड़ी होगी, यह बात समझ में नहीं आती। फिर डा० भगवानदास गुप्त के अनुसार छत्रसाल और ओरछा राज्य के बीच जो संधि हुई थी उसमें धसान नदी को छत्रसाली राज्य और ओरछा राज्य के बीच सीमा रेखा माना गया था। धसान के पूर्व में छत्रसाली राज्य था और पश्चिम में ओरछा का राज्य[९]। झांसी धसान के पश्चिम में ओरछा के राज्य में थी। झांसी ओरछा से केवल १० मील दूर और दतिया से १६ मील दूर थी और छत्रसाल को इसे लेने के लिए ओरछा दतिया से युद्ध मोल लेना पड़ता जो कि जहां तक सूचना है वे बचाते रहे[१०]। इसके सिवा फिर यह बात भी थी कि छत्रसाली राज्य में से पेशवा को जो प्रदेश मिले थे उनमें झांसी के होने का समकालीन

---

८ - गोरे० पृ० २२२।

९ - छत्रसाल० पृ० १४१ की पाद टिप्पणी।

१० - वही पृ० १४१।

कागजातों में कोई उल्लेख नहीं मिलता[११]। इस संदर्भ में यहां छत्रसाल की मृत्यु के बाद पेशवा को सौंपे गये प्रदेशों के नीचे दिये हुए विवरण से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है। ` गोविन्दपंत बुन्देल्याची कैफियत ` के अनुसार पेशवा को हृदयशाही राज्य में से जो प्रदेश मिले थे उनकी सूचना इस प्रकार है :-

१ - हिरदेशाही राज्य के प्रथम भाग में रहिली, गढ़ाकोटा, पथरिया, दमोह, वेलहाई आदि गोविन्द केशव नामक कमाविसदार के अधिकार में रखे गये।

२ - केशव सोनदेव को कुठरी, हटा, जटाशंकर, कोठा सिमरिया, जोधपुर, अमानगंज व ककेरिटी सौंपे गये।

३ - तीसरा भाग बुरई, पंचमहल, मोधना, केलगांव, माल्थौन आदि मिलाकर बनाया गया। इस भाग की देखभाल करने के लिये लक्ष्मणपंत दादा को नियुक्त किया गया।

४ - अगले भाग में जैसिंगनगर, रणावली, ईसखारा आदि थे। इसके कमाविसदार का नाम ज्ञात नहीं है।

५ - पन्ना के हीरों की खानों की आमदनी में से पेशवा को एक तिहाई भाग देने की बात निश्चित की गई थी। यहां चितले के सूबेदार रामचन्द्रपंत को नियुक्त किया गया।

---

११ - यह उल्लेखनीय है कि सन् १८१२ में बुन्देलखण्ड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट रिचार्डसन ने अपने १० अगस्त, १८१२ के एक पत्र में अंग्रेजी सरकार के सेक्रेटरी एडमन्स्टन को स्पष्ट लिखा था कि जहां तक उसकी सूचना है वहां तक फांसी के भाऊ के वर्तमान प्रदेश कभी भी बुन्देलखण्ड के उस भाग में नहीं थे जोकि छत्रसाल ने पेशवा को दिया था (" By my information, however, it appears, that the present possessions of the Bhao of JHANSI, never were included in the portion of Bundelkhand, made over to the Peishwah, by the Raja Chittersaul.")

फा० पौलि० कंस०, २८ अगस्त, १८१२, संख्या ५६।

जालौन के तीन भाग गोविन्दपंत बुन्देले के अधिकार में रखे गये । यह निम्न थे :-

१ - प्रथम भाग में चुरखी, रायपुर, कनार, जालौन, कोंच, सजवा, गोहाणे, कटाणे और कैलिया थे । इसका कमाविसदार जनार्दन विट्ठल खेर को नियुक्त किया गया ।

२ - एट, मौहम्मदाबाद, उरई, सैयदनगर, कोटरा और बाकोढी का दूसरा भाग गोविन्द शिवाजी नाफडे के अधिकार में रखा गया ।

३ - तीसरा भाग गुरसराय, सिमरिया, बैलाच, तालबेह आदि विट्ठलपंत काका खेर के अधिकार में पड़े ।[१२]

इसी प्रकार पेशवा को जो भाग छत्रराज से मिले थे उनका और उनमें नियुक्त कमाविसदारों का विवरण इस प्रकार है :-

१ - हरिविट्ठल के अधिकार में इटौरा, काल्पी, हमीरपुर आदि रखे गये तथा कृष्णाजी तांबे को हरिविट्ठल की सहायता के लिए नियुक्त किया गया ।

२ - श्रीनगर, खड्डिया, कबरई, चरखारी, जैतपुर, मौदहा, अजयगढ़ आदि कृष्ण जी अनन्त को सौंपे गये ।

३ - तीसरा भाग मुख्य रूप से नरसिंहपुर और उसके ११ परगनों का बनाया गया । ये परगने हटरी, विनेका, रामगढ़, कन्हैया, सिदवई, पैठर, कुंवरपुर, शाहनगर, महावरा, तुपई और मड़ियादो थे । इनके कमाविसदारों के बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है ।[१३]

इस प्रकार उपरोक्त जो विभाजन हुआ उसमें भी फांसी का कोई उल्लेख नहीं है । पेशवा बाजीराव प्रथम के काल के जो भी कागजात उपलब्ध हैं उनमें कहीं भी फांसी पर उसके काल में मराठों का अधिकार हो जाने का उल्लेख नहीं मिलता । छत्रसाली राज्य में फांसी थी यह संदिग्ध है । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि केवल गोरेलाल तिवारी ही ऐसा उल्लेख करते हैं कि फांसी पहले ओरछे के राज्य में थी, किन्तु जब बहादुरशाह ने छत्रसाल से संधि की तब फांसी

---

१२ - भारतवर्ष अंक ६ पृ० ५-६ , पारसनीस० पृ० ६३-६४ ।

१३ - भारतवर्ष अंक ६ पृ० ५ ।

छत्रसाल के पास आ गई थी।[१४] फिर छत्रसाली राज्य की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन करने से यह बात सम्भव नहीं दिखती कि फांसी छत्रसाल के राज्य में रही होगी, क्योंकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि यह चारों ओर से दतिया और ओरछे के प्रदेशों से घिरी थी और इसकी यह स्थिति सन् १८५७ ई० तक बनी रही।

मराठों ने फांसी पर कैसे अधिकार किया इसका एक और विवरण फांसी गज़ेटियर में इस प्रकार मिलता है कि जब जुझारसिंह बुन्देला के विद्रोह के समय फांसी के किले पर शाहजहां का अधिकार हो गया था, तब से १७४२ ई० तक यह सम्भवत: मुंगलों के हाथ में रही। अन्य किसी और विवरण के अभाव में गजेटियर में यही मान लिया गया है। गजेटियर में आगे कहा गया है कि फांसी के मुगल शासकों में अन्तिम फौजदार (गवर्नर) मुकीमखां था, जो १७२६ से १७४२ तक फांसी के किले का अधिकारी रहा था। उसने अपने अधीन एक अधिकारी शेख बुलाकी को किसी बात पर अपमानित करके निकाल दिया था। शेख बुलाकी फांसी का कामदार था। फांसी से निकाले जाने पर वह मालवा गया और वहां पर मल्हार कृष्ण की सेवा में हो गया। मल्हारकृष्ण नारोशंकर का एक सेना नायक था और वह मराठों की सेना के साथ उत्तरी भारत की ओर बढ़ रहा था। बुलाकी इस सेना के साथ बिजौली[१५] तक आ पहुंचा। यहां उसने सेना का साथ छोड़ दिया और पछतावे का ढोंग सा करते हुए अकेले नगर में प्रवेश किया। उसने मुकीम से क्षमा प्राप्त करली और अपना पद भी पा लिया। फिर उसने मराठा सेना को गुप्त सन्देश भेजा। मराठा सेना रात में आगे बढ़ी। बुलाकी ने किले के पीछे के भाग की एक खिड़की यह बहाना कर खुली छोड़दी कि नगर से उसके कुछ मित्र आने वाले हैं। मराठों ने इस खिड़की से किले में प्रवेश किया और बिना खून खराबी के किले पर अधिकार कर लिया। मराठों ने मुकीमखां को बन्दी बना लिया और एक कागज पर हस्ताक्षर करा लिये जिसमें उसने स्वीकार किया कि किला उसने मराठों को बेच दिया है।[१६]

---

१४ - गौरे० पृ० २२२ ।

१५ - बिजौली - फांसी से ६ मील।

१६ - फांसी गजे० पृ० २६६-७० ।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखने पर पारसनीस का यह कथन तर्क संगत और ऐतिहासिक तथ्यों से समर्थित प्रतीत होता है कि " झांसी प्रान्त के गोविन्दपंत बुन्देले कभी भी सूबेदार रहे, ऐसा दिखता नहीं है।"[१७] वे आगे साफ लिखते हैं कि पेशवा नानासाहब बालाजी बाजीराव ने झांसी १७४२ के मध्य में ओरछे से ली थी[१८]। संक्षेप में ऐसा प्रतीत होता है कि झांसी छत्रसाली राज्य में नहीं थी। वह ओरछा राज्य में थी और मराठों ने उसे ओरछा राज्य से ही प्राप्त किया था। मराठों ने कब और कैसे झांसी सन् १७४२ ई० में हस्तगत की इसका विवरण आगे यथा स्थान दिया गया है।

४ - बुन्देलखण्ड की स्थिति (१७३० - ४२ ई०)

बुन्देलखण्ड की राजनैतिक स्थिति छत्रसाल की मृत्यु (४ - दिसम्बर, १७३१) और पेशवा बाजीराव प्रथम की मृत्यु (२८ अप्रेल, १७४०) के बीच के १० सालों में अस्थिर और डावांडोल सी रही। इस अस्थिरता के तीन कारण थे। एक तो मराठों ने नर्मदा के उत्तर में तेजी से बढ़ना शुरु कर दिया था और भिण्ड भदावर, दोआब, आगरा और इलाहाबाद के सूबे उनकी महत्वाकांक्षा की परिधि में आ चुके थे। स्मरण रहे कि अमझेरा के युद्ध में मराठों के पैर मालवा में जमाये थे और छत्रसाल को सामयिक सहायता देकर बाजीराव को जैसे बुन्देलखण्ड में उनके पैर रखने की जगह बनाकर उनको आगरा और इलाहाबाद तक बढ़ने की सम्भावना पैदा करदी थी। मराठों की इन अप्रत्याशित सफलताओं ने उत्तरी भारत के हिन्दू ~~राजाओं~~ राजपूत राजाओं और विशेषकर सवाई जयसिंह का महत्व मुगल दरबार में बढ़ा दिया था और साथ ही मुगल दरबार को मराठों के बढ़ते हुये भय से आगाह भी कर दिया था। इस प्रकार एक ओर तो मुगल दरबार के अमीर मराठों के उत्तरी भारत में प्रवेश से चिंतित हो उठे थे और विशेष रूप से वजीर कमरुद्दीनखां, मीरबख्शी और समसुद्दौला के कंधों पर यह बोझ आ पड़ा था कि वे मराठों को नर्मदा के दक्षिण में खदेड़ दें अथवा दूसरे शब्दों में नर्मदा के उत्तर में मालवा राजपूताने और बुन्देलखण्ड में उन्हें रोक कर आगरा और इलाहाबाद के

१७ - भारतवर्ष अंक ६, पृ० ७ की पादटिप्पणी ।

१८ - वही ।

(17)

सूबों को बचाकर दिल्ली को सुरक्षित रखें । इन दोनों के असफल होने पर निज़ाम को दिल्ली बुलाकर यह भार उनको सौंपा गया ।

दूसरी बात यह तो थी ही कि मराठे उत्तरी भारत में प्रसार की अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे । चिमाजी-अप्पा, पिलाजी जादव, बाजी भीवराव और स्वयं पेशवा बाजीराव ने प्राय: हर दशहरे के बाद उत्तरी भारत में मराठा सत्ता के विस्तार के लिये सैनिक अभियान किये और कहना नहीं होगा कि उन्हें मालवा और बुन्देलखण्ड में अपनी स्थिति दृढ़ करना आवश्यक हो गया । मालवा से राजपूताना और बुन्देलखण्ड से (जहाँ) आगरा, मथुरा तथा दिल्ली तक का रास्ता खुल जाता था । दूसरा मार्ग जो इलाहाबाद और आगरा के सूबे उनके लिए खोलकर दिल्ली और दोआब तक का मार्ग प्रशस्त करता था, वह बुन्देलखण्ड से होकर था । इसलिए बुन्देलखण्ड इस दशक में मराठों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हो उठा था । वजीर कमरुद्दीन, सफदरजंग, निजाम और मुहम्मदखां बंगश की योजनायें और प्रयत्न थे कि मराठों को यमुना के दक्षिण में बुन्देलखण्ड से निकालकर मालवा से दक्षिण में खदेड़ दिया जाय । इस तरह बुन्देलखण्ड इस काल में मराठों और मुगलों के बीच में युद्ध क्षेत्र बना रहा ।

तीसरा कारण जिसने बुन्देलखण्ड की स्थिति को अस्थिर बनाया वह था स्थानीय बुन्देले राजाओं के कलह तथा आपसी झगड़े । जैसे छत्रसाल के मुख्य उत्तराधिकारी हिरदेशा और जगतराज में आपस में नहीं बनती । हिरदेशा की मृत्यु (जनवरी, १७३६) बाजीराव से लगभग १ साल पूर्व हो गयी थी । उसके उत्तराधिकारी राजा सभासिंह की अपने भाइयों से नहीं पटती थी । फिर दतिया ओरछे के शासकों का छत्रसाल के उत्तराधिकारियों और चन्देरी के राजा से परम्परागत वैर था[66] । हिरदेशा और जगतराज से मराठों के सम्बन्ध इस दशक में अच्छे रहे ।

---

66 १९ - प्रथम अध्याय पृ० ६ में इसका उल्लेख किया जा चुका है कि जहांगीर ने रामशाह से ओरछा छीनकर वीरसिंह देव को दे दिया था जिससे उनके उत्तराधिकारियों में स्थायी शत्रुता की नींव पड़ गयी थी । ओरछा के वीरसिंह देव के वंशज थे और चन्देरी के रा[illegible] रामशाह के ।

इसके विपरीत ओरछा और दतिया के राजा मराठों से त्रस्त रहे और मुगल दरबार की ओर अपनी रक्षा के लिए नजरें गड़ाये रहे। एक और बात जिसने इन सभी बुन्देले राजाओं की स्थिति बड़ीखराब करदी थी, वह यह थी कि बुन्देलखण्ड में आने वाले मराठा सरदार जैसे बाजीराव, चिमाजीअप्पा, बाजीभीवराव, पिलाजी जादव आदि मुगलों के विरुद्ध अक्सर इन्हें घसीट लेते थे। इसी तरह दिल्ली आगरे से बढ़ने वाला हर मुगल अमीर और सेनापति यह आशा करता था कि बुन्देलखण्ड के बुन्देला शासक मराठों के विरुद्ध उनका साथ देंगे। इस प्रकार मराठे और मुगल दोनों ही उन्हें फुसलाकर या धमकाकर अपने साथ ले लिया करते थे, जो अधिक शक्तिशाली होता था या जिसका पलड़ा भारी दिखता था बुन्देले उसकी तरफ हो जाते थे और जब उस पक्ष के हटते ही दूसरा पक्ष सबल हो जाता था तब वे बड़े धर्म संकट में पड़ जाते थे।

उपरोक्त तीन बातों से बुन्देलखण्ड की स्थिति डावांडोल ही नहीं रही बल्कि वह निरन्तर जैसे युद्ध क्षेत्र ही बना रहा। कभी मराठे अभियान हुए तो कभी मुगल। कभी इन दोनों में परस्पर टक्करें हुयीं तो कभी इनमें और स्थानीय शासकों में। इस सब के फलस्वरूप बुन्देलखण्ड का महत्व विशेष रूप से मराठों को बहुत स्पष्ट हो गया और उन्हें फांसी जैसे सैनिक अड्डे की आवश्यकता महसूस होने लगी। इस सब स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मराठों और मुगलों के बुन्देलखण्ड में इन अभियानों और संघर्षों (१७३३-४२ ई०) का यहां संक्षिप्त उल्लेख करना अनुचित न होगा।)) यहांतक

५ - कमरुद्दीन का प्रथम अभियान (१७३३ ई०)

वजीर कमरुद्दीन अप्रैल, १७३५ में मराठों को बुन्देलखण्ड मालवा से निकालने के लिए निकला और आगरे से मुहम्मदखां बंगश को लेते हुए शिवपुरी तक आ पहुंचा। पर मराठों के नर्मदा की ओर लौट जाने की खबर से और तत्पश्चात् अपने साले जांनिसारखां की मृत्यु का बदला भगवन्तसिंह अदारू से लेने के लिए गाजीपुर की ओर मुड़ गया। दतिया ओरछे के राजाओं ने उसे पन्ना

के हिरदेशा पर आक्रमण करने को उकसाया भी पर आराम पसन्द वजीर ने वर्षाऋतु करीब आ जाने से बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करना उचित न समझा और जून, १७३३ में दिल्ली लौट गया।[२०]

६ - पिलाजी के दो अभियान (१७३३ - ३५ ई०)

पेशवा बाजीराव के आदेश पर पिलाजी जादव दिसम्बर, १७३३ में बुन्देलखण्ड सैनिक दल के साथ आया और बुन्देले रजवाड़ों से जिनमें ओरछा, दतिया के राजा भी थे, खंडणी वसूल कर निर्विरोध पूना लौट गया।[२१]

अगले वर्ष (१७३४) वर्षाऋतु के पश्चात् पिलाजी जादव दक्षिण से चलकर फिर बुन्देलखण्ड में जनवरी १७३५ में ओरछा के प्रदेशों तक आ पहुंचा। वजीर कमरुद्दीन उसे निकालने के लिए बढ़ा। ओरछा के पास मुगलों और मराठों में मुठभेड़ भी हुई। वजीर को पीछे हटकर ओरछा में शरण लेनी पड़ी। एक दो और छोटी छोटी मुठभेड़ों में मुगल सैनिक दल पराजित हुए और अन्त में हताश होकर वजीर मई १७३५ में दिल्ली लौट गया।[२२]

७ - बाजी भीवराव बुन्देलखण्ड में (१७३५-३६ ई०)

वजीर कमरुद्दीन और खानेदौरां की मराठों के विरुद्ध असफलताओं से सारबुलन्दखां और सआदतखां के नेतृत्व में तुरानी दल दरबार में और अधिक सक्रिय हो उठा। सआदतखां ने मालवा और आगरे की सूबेदारी स्वयं को दिये जाने पर, मराठों को नर्मदा के दक्षिण में खदेड़ देने की बात कही, और मुहम्मदखां बंगश का जो कि पन्ना के छत्रसाल बुन्देले के उत्तराधिकारियों का शत्रु

---

२० - पे० द० १४, नं० ६, दिघे० पृ० ११४, इर्विन० २, पृ० २७६-७७।

२१ - पे० द० १४, नं० ११-१३, रघुबीर० पृ० २२६-२७, दिघे० पृ० ११६।

२२ - सरकार १, पृ० १४०-४१, इर्विन० २, पृ० २७६-८१, दिघे० पृ० ११७-१८, रघुबीर० पृ० २३०-३१, पे० द० १४ नं० २१-२३, पे० द० ३० पृ० ३१४-१८।

था, इलाहाबाद की सूबेदारी देने का सुझाव दिया । जयपुर में सवाई जयसिंह से यह सब समाचार पाकर उसके सुझाव पर बाजीराव ने एक बड़ी सेना सहित अक्टूबर, १७३५ में पूना से प्रस्थान किया । वह स्वयं जयपुर की ओर बढ़ गया और पिलाजी के पुत्र सटवाजी जादव और बाजीभीवराव को उसने नवम्बर - १७३५ में बुन्देलखण्ड भेज दिया ।[२३]

बाजी भीवराव ने बुन्देलखण्ड में आते ही पहले दतिया के राजा रामचन्द्रराव और ओरछा के राजा उद्योतसिंह से खंडणी कबूल की । वह फिर सटवाजी के साथ ग्वालियर बढ़ गया । वह ग्वालियर का किला तो नहीं ले सका, पर उसने ग्वालियर के प्रदेशों की खूब लूट पाट की । मुहम्मदखां बंगश मराठों को रोकने जनवरी १७३७ को मध्य धौलपुर तक आ पहुंचा । उसकी कुछ मराठों से मुठभेड़ें भी हुईं पर उनका कुछ विशेष परिणाम नहीं निकला । इधर पेशवा बाजीराव प्रथम ने सवाईजयसिंह और खानेदौरां की मध्यस्थता से सम्राट् के सामने अपनी मांगे प्रस्तुत की । उसने माल्वा की सूबेदारी, भोपाल की जागीरें, मांडू, धार और रायसीन के किले तथा नर्मदा और चम्बल के बीच के प्रदेशों की मांग की । साथ ही उसने इलाहाबाद, बनारस, मथुरा और गया के हिन्दू तीर्थों को अपने संरक्षण में दिये जाने की भी मांग की । सम्राट् को इन मांगों पर विचार करने का समय देकर बाजीराव माल्वा लौट आया और कुछ समय वहां रुकने के बाद मई में पूना के लिए चल पड़ा, जहां वह २४ जून, १७३६ को पहुंच गया ।[२४]

८ - पेशवा का उत्तरी अभियान (१७३६-३७ ई०)

पेशवा के दक्षिण लौटते ही सम्राट् मुहम्मदशाह ने संधि वार्ता भंग करदी, इसलिए वर्षाऋतु समाप्त होते ही बाजीराव फिर नवम्बर १७३६

---

२३ - पे० द० १४ नं० ३६, पे० द० ३०, नं० १४४, रघुवीर० पृ० २३७, सरकार १, पृ० १४५, दिघे० पृ० १२२-२३ ।

२४ - पे० द० १४ नं० ५२, ५५, पे० द० १५ नं० ८, ११, १२, पे० द० २२ नं० ३३३, दिघे० पृ० १२६-२६, सरकार १, पृ० १४६ ।

में एक बड़ी सेना सहित उत्तरी भारत के अभियान के लिए चल पड़ा । मालवा में उसके सरदार होलकर, सिंधिया, पवार आदि भी उसके साथ हो गये । पेशवा भोपाल के नवाब से खंडणी वसूल करता हुआ बुन्देलखण्ड आ पहुंचा और दतिया ओरछा के राजाओं से खंडणी लेकर भदावर आगरा तक पहुंच गया । सम्राट् ने वजीर, शमसुद्दौला, सआदतखां, जयसिंह आदि को मराठों को रोकने के आदेश दिये । इनमें सआदतखां अधिक जोश में था । पेशवा ने मल्हारराव होलकर को सेना देकर नवाब के दोआब के प्रदेश ध्वस्त करने को भेजा । पर दुर्भाग्य से सआदतखां और उसके भतीजे मंसूरखां ने होलकर को खदेड़ दिया । सआदतखां ने बढ़कर आगरे में पड़ाव डाला और मराठों के विरुद्ध अपनी उपरोक्त सफलता पर लम्बी चौड़ी डींगे मारने लगा[२५]। इनसे चिढ़कर पेशवा बाजीराव ने सम्राट् को सबक सिखाने के लिये मार्च, १७३७ के अन्त में दिल्ली पर अपनी सुप्रसिद्ध चढ़ाई की । इस चढ़ाई के पूर्व उसने अपना कीमती सामान बुन्देलखण्ड में छत्रसाल के पुत्र जगतराज बुन्देला के पास भेज दिया था । उसके अन्य सरदार बाजीभीवराव और जनार्दन बुन्देलखंड में थे ही । दिल्ली के इस आक्रमण में मुगल सम्राट् को अपने पंजे दिखाकर अन्त में पेशवा बुन्देलखण्ड की ओर लौट आया और जगतराज से अपना सामान लेकर उत्तर की ओर बढ़ते हुए, निज़ाम को मालवा में बचाकर दक्षिण लौट गया[२६]।

६ - निज़ाम का भोपाल में घिराव (जनवरी, १७३८)

निज़ाम के दिल्ली पहुंच जाने से सम्राट् बहुत आश्वस्त हुआ । अब उसने निज़ाम को ३० हजार सुसज्जित सैनिकों के साथ मराठों से निपटने के लिए

---

२५ - रघुवीर० पृ० २४८, दिघे० पृ० १३०-३१, पे० द० १५ नं० ५, १८, ४७, इर्विन० २ पृ० २८६-८८ ।

२६ - ब्रह्मेंद्र स्वामी चरित्र० पृ० २७, दिघे० पृ० १३२-३८, इर्विन० २ पृ० २६५-६८, पे० द० १५ नं० ३५, ३६, ३८, ४२, पे० द० ३० नं० १८६, १६६, २०१ ।

भेजा । राजपूत राजाओं को भी निज़ाम का साथ देने के आदेश दिये गये । वर्षा-ऋतु (१७३७) के पश्चात् निज़ाम ने दिल्ली से प्रस्थान किया । वह आगरा, एटा, कालपी होते हुए बुन्देलखण्ड आ पहुंचा । बुन्देलखण्ड में निज़ाम की उपस्थिति से बुन्देला सरदार बौखला उठे । छत्रसाल के पुत्र जगतराज और हिरदेशा जोकि मराठों के मित्र थे, निज़ाम से जाकर मिल गये । यहां तक कि हिरदेशा का पुत्र सभासिंह तो एक बुन्देला टुकड़ी के साथ निज़ाम के साथ आकर सम्मिलित हो गया । यह विशाल सेना धामौनी और सिरोंज होते हुए दिसम्बर, १७३७ के अन्त में भोपाल के निकट आ पहुंची।[२७]

इधर पेशवा भी निज़ाम की गतिविधियों से बेखबर न था । वह एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण से चल चुका था । उसके सभी विश्वसनीय सरदार रानोजी सिंधिया, पिलाजी जादव, मल्हारराव होलकर और वाजीभिवराव आदि भी सम्मिलित थे । पेशवा ने अपनी कुशल नीति से निज़ाम को भोपाल के किले में शरण लेने पर विवश कर दिया । उसके रसद के मार्ग मराठों ने काट दिये । निज़ाम ने बाहर निकलने का प्रयास किया किन्तु असफल रहा । अन्त में उसने जयसिंह के मंत्री आयामल की मध्यस्थता से ७ जनवरी, १७३८ को एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर कर मुसीबत से छुटकारा पाया । इससे उसे पेशवा को माल्वा और नर्मदा तथा चम्बल के मध्य का सम्पूर्ण हिस्सा देने को राजी होना पड़ा । उसने ५० लाख रुपये क्षति-पूर्ति के रूप में भी देने स्वीकार किये । निज़ाम दिल्ली लौट गया किन्तु पेशवा बाजी-राव ने आगे बढ़कर बुन्देलखण्ड के पन्ना, जैतपुर, दतिया, औरछा आदि राज्यों से खंडणी वसूल की और फिर १५ जुलाई १७३५ को पूना वापिस लौट गया ।[२८]

---

२७ - ब्रह्मेंद स्वामी चरित्र० पृ० ३३, पे० द० १५ नं० ५६-५६, रघुवीर० पृ० २५४, इर्विन० २, पृ० ३०२ दिघे० पृ० १४५ ।

२८ - ब्रह्मेंद स्वामी चरित्र० ३३-३६, दिघे० पृ० १४८-५०, इर्विन० २ पृ० ३०४-५ ।

१० - झांसी की महत्वपूर्ण सामरिक स्थिति

ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त अभियानों में झांसी अपनी मार्के की स्थिति के कारण मराठा सरदारों और पेशवा की नजर में चढ़ गयी थी। स्मरण रहे कि झांसी ओरछा और दतिया के बीच स्थित है। यह ओरछा से ६ मील और दतिया से १६ मील दूर है। साथ ही दतिया ग्वालियर होते हुए आगरे दिल्ली तक जाने वाला राजपथ भी यहां से गुजरता है और झांसी काल्पी कानपुर मार्ग से दोआब में सरलता से पहुंचा जा सकता है। फिर यह सागर और शिवपुरी से भी जुड़ा हुआ है, जिनसे होकर दक्षिण के राजमार्गों तक पहुंचा जा सकता है। इसके अलावा बुन्देलखण्ड में कालिंजर और अजयगढ़ के किलों के बाद झांसी का किला ही मराठा सैनिक छावनी के लिए बड़ा उपयुक्त था। महाराष्ट्र में मराठे प्रतापगढ़, खेलना, सिंहगढ़, पुरन्दर आदि के किलों और गढ़ियों द्वारा ही मुगलों का सामना करने में समर्थ हो सके थे। इस प्रकार वे पहाड़ी प्रदेशों में गढ़ियों के महत्व से भी भली भांति परिचित थे। अस्तु झांसी के किले तथा युद्ध की दृष्टि से उसकी महत्वपूर्ण स्थिति ने पेशवा का ध्यान आकर्षित किया होगा। फिर ओरछा और दतिया के शासक मराठा विरोधी और मुगलों के भक्त थे तथा झांसी से इन दोनों पर अंकुश रखा जा सकता था। इन्हीं सब कारणों से मराठे झांसी पर अधिकार करने के लिए उत्सुक हो उठे होंगे। पेशवा बाजीराव की मृत्यु (२८ अप्रैल, १७४०) के पश्चात् जब नये पेशवा बालाजी बाजीराव ने बंगाल के अभियान (दिसम्बर, १७४१- जुलाई, १७४४) के समय ओरछा के निकट पड़ाव डाला, तब सम्भवत: उसने दिसम्बर १७४२ में ओरछे के राजा पृथ्वीसिंह से खंडणी के ५०००० रुपये के बदले में झांसीको जागीर के रूप में ले लिया। तब झांसी से जो प्रदेश और गांव लगे थे उनकी आय लगभग इतनी ही रही होगी। यह ५०००० की जागीर उस चार लाख वार्षिक खंडणी के अतिरिक्त

थी जो औरछे से वार्षिक तय की गई थी।[67] मल्हार कृष्ण को औरछे के राज्य से खंडणी वसूल करने के लिए वहां का कमाविसदार नियुक्त किया गया और जोतिबा सिंधिया को बरुआसागर[68] में मराठा हितों की देख-भाल के लिए। जोतिबा के पिता रानोजी सिंधिया इस समय बंगाल अभियान में पेशवा के साथ ही थे।[69]

११- झांसी के मराठा राज्य का उद्भव (१७४२-४३)।

मल्हार कृष्ण को औरछा के राजा पृथ्वीसिंह[70] से चार लाख रुपये खंडणी वसूल करने के निर्देश दिये गये थे। इसके साथ ही उसे महादाजी अम्बाजी के ५००० रुपये तथा झांसी की जागीर और किला हस्तगत करने के लिए आदेश दिये गये थे। झांसी की आय इस समय ५०००० रुपये के लगभग थी। इस प्रकार मल्हार कृष्ण को चार लाख पचास हजार रुपये वसूल करने थे जिनमें झांसी की जागीर को पचास हजार रुपये भी सम्मिलित थे।[71]

---

२९ - रजवाड़े० २, ६७, वाड० भाग ३, बालाजी बाजीराव पेशवा १, पृ० ८, नं० ८। रजवाड़े के अनुसार मराठों के हाथ में झांसी आ जाने की खबर ६ दिसम्बर १७४२ को भेजी गई थी।

३० - बरुआसागर - औरछे से ७ मील।

३१ - रानोजी सिंधिया, २६८, सरदेसाई २, पृ० २१४-१७।

३२ - औरछा गजे० पृ० ३५, वाड० भाग ३, बालाजी बाजीराव १, पृ० ८ नं० ८। सरदेसाई भूलवश औरछे के राजा पृथ्वीसिंह को वीरसिंह देव मानते हैं। सरदेसाई २, पृ० २३०।

३३ - वाड० ३, बालाजी बाजीराव १, सं० ८ ।

इस राशि में से राजा ने केवल १ लाख रुपये ही दिये और १३ अप्रैल तक बाकी धनराशि देने का वचन दिया। किन्तु उसने अपना वचन नहीं निभाया। अब रुष्ट होकर मल्हार कृष्ण ने दण्ड स्वरूप साढ़े दस हजार कीअतिरिक्त धनराशि की मांग की। साथ ही वह एक छोटी सी मराठा टुकड़ी के साथ पृथ्वीसिंह से यह रकम वसूल करने के लिए ओरछा के निकट चला आया। इस पर राजा बौखला उठा और उसने एक अंधेरी रात को मराठा छावनी पर अचानक आक्रमण कर दिया। मल्हार कृष्ण, नागोमहादेव, अंताजीकृष्ण आदि कुछ ब्राह्मण तथा सौ सवासौ के लगभग सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये। पृथ्वीसिंह ने मराठा छावनी को लूट डाला और फिर फांसी के किले का घेरा डाला। फांसी का किला इस समय धोंदो दत्ताजी के अधिकार में था। उसने पृथ्वीसिंह का सामना किया और सम्भवत: एक बार फिर से फांसी ओरछा के अधिकार में आ गई। मल्हार कृष्ण का पुत्र तथा दमाद भी ओरछे में मारे गये।[72] राजा ने यह हमला इतना अकस्मात् और तेजी से किया था कि जोतिबा सिंधिया जो ओरछे से लगभग ७ मील दूर बरुआसागर में ही था, मल्हार कृष्ण की सहायता को न पहुंच सका और तुरन्त ही पश्चात् वह भी पृथ्वीसिंह के साथ हुई एक मुठभेड़ में मारा गया।[73]

---

72 ३४ - रजवाड़े० ६, १७०, पृ० २७५-७७। चौधरी के अनुसार (रानोजी सिंधिया पृ० २६६ पाद टिप्पणी ५६) पत्र की सही तिथि २७ अप्रैल १७४३ है।

73 ३५ - फाल्के० १, पृ० ३, रजवाड़े० ६, १७० पृ० २७५-७७, फांसी गजे० पृ० २४३। सरदेसाई के अनुसार यह घटना १७४२ की वर्षाऋतु में घटी। यहां यह स्मरण रहे कि मल्हार कृष्ण को १७४३ के मध्य में कमाविसदार नियुक्त किया गया था और जैसाकि पहले कहा जा चुका है राजा को १३ अप्रैल १७४३ तक समस्त खंडणी देनी थी। जबकि इस घटना की खबर देने वाला पत्र २७ अप्रैल १७४३ को लिखा गया था। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना १३ अप्रैल, १७४३ के उपरान्त तथा २७ अप्रैल के पूर्व दोनों तिथियों के बीच में ही कभी घटी होगी।

औरछे के राजा के इस कुकृत्य ने पेशवा बालाजी बाजीराव को बहुत उत्तेजित कर दिया। नारोशंकर तब पेशवा के साथ ही थे। पेशवा ने नारोशंकर को तेजी से बढ़कर औरछा के राजा को दंडित करने की आज्ञा दी। नारोशंकर ने बढ़कर बड़े वेग से औरछे पर आक्रमण कर दिया और औरछे के राजा को बन्दी बनाकर झांसी के किले में कैद कर लिया। उसका क्रोध इतने से ही शांत न हुआ। औरछे में आग लगा दी गई और उसे ध्वस्त कर दिया गया। इस प्रकार मल्हार कृष्ण और जोतिबा सिंधिया की हत्या का बदला लेकर नारोशंकर ने पुन: मराठों की धाक झांसी में जमा दी। पेशवा का क्रोध अधिक समय तक न टिक सका। औरछा का राज्यघराना बुन्देला राज्यों में से सबसे प्राचीन था और पन्ना, जैतपुर, दतिया, तथा चन्देरी आदि के राजा इसके वंशज होने के कारण इसका सदैव आदर करते थे।

---

२६ - मराठी रियासत ५, (साहू) पृ० ८५-८६, भारतवर्ष ११-१२ पृ० ६, रजवाड़े० १, नं० २०८ की पाद टिप्पणी, सर देसाई २, पृ० २३०, रानोजी सिंधिया पृ० २७० ।

नारोशंकर के प्रारम्भिक जीवन के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। मालेगांव (महाराष्ट्र) में मिली एक 'यादी' के अनुसार नारोशंकर के पूर्वज विजयपुर राज्य में दीवान गिरि करते थे। उनके तीन पुत्र थे - अम्बाजी शंकर, लक्ष्मणशंकर और नारोशंकर। इनमें अम्बाजीशंकर पेशवा के दरबार में थे, लक्ष्मणशंकर की नियुक्ति काल्पी के सूबे में हुई थी और नारोशंकर मल्हार होलकर की सेना में थे। इसके पश्चात् ही उनकी झांसी में नियुक्ति का उल्लेख मिलता है। रजवाड़े० १, पृ० ३१०-१२ पाद टिप्पणी ।

इसलिए ओरछा के राजा के विरुद्ध कोई भी कड़ा कदम उठाने से बुन्देला राज्य में मराठों के प्रति विरोध और कटुता और अधिक बढ़ जाती, क्योंकि स्वाभाविक रूप से उनकी सहानुभूति ओरछा के राज्य के साथ होती । फिर इस समय मराठों और छत्रसाल के उत्तराधिकारियों सभासिंह और जगतराज के आपसी सम्बन्धों में तनाव आ चला था । इसलिए पृथ्वीसिंह के पश्चाताप करने पर उसे मुक्त कर पुन: ओरछे की गद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया । पृथ्वीसिंह ने मल्हार कृष्ण और जोतिबा सिंधिया की हत्याओं की क्षति पूर्ति के रूप में बरुआसागर की लंहणी में से १० हजार रुपये वार्षिक सिंधिया की विधवा पत्नी सईबाई को देना स्वीकार किया । इससे झांसी का किला तथा उससे लगे गांव भी मराठों को प्राप्त हो गये ।[३७] इस समय से जैसा कि सर देसाई का कथन है कि " झांसी अब इस प्रदेश की मुख्य मराठा छावनी बन गयी ।"[३८] नारोशंकर को झांसी का प्रथम सूबेदार नियुक्त किया गया । उसने झांसी के किले के नीचे एक नगर बसाया और दक्षिण से बहुत से महाराष्ट्रियन ब्राह्मण परिवार यहां आकर बस गये । इस प्रकार " झांसी बुन्देलखण्ड में मुख्य रूप से एक मराठा उपनिवेश बन गया और मराठा इतिहास में उसने एक स्थायी नाम पाया ।"[३९]

१२ - सिंधिया होल्कर के बुन्देलखण्ड अभियान (अप्रैल, मई १७४६)

जब नारोशंकर इस प्रकार झांसी में मराठा सत्ता को जमाने में लगा था, तभी पन्ना के राजा सभासिंह और उसके चाचा जैतपुर के राजा

---

३७ - मराठी रियासत ५ (साहू) पृ० ८५-८७, सर देसाई २, पृ०२३०-३१, रानोजी शिंदे पृ० २७०-७१ ।

३८ - "Thus Jhansi hence forward became the principle Maratha Post in this province."
सर देसाई २ पृ० २३० ।

३९ - "Jhansi became an essentially Maratha colony in Bundel-Khand and acquired a permanent name in History."
सर देसाई २ पृ० २३० ।

जगतराज ने अपने अपने राज्यों में लगे प्रदेशों में उपद्रव करने और कराने शुरु कर दिये । सभासिंह अपने पिता हिरदेशा की मृत्यु (नवम्बर, १७३९) के पश्चात् पन्ना की गद्दी पर बैठा था। वह शुरु से ही मराठों के प्रति सद्भाव नहीं रखता था और जो छत्रसाली राज्य के प्रदेश मराठों के आधिपत्य में पहुंच गये थे, उन्हें पुन: प्राप्त करने का इच्छुक था । जगतराज भी अब उससे मिल गया । दोनों ने मिलकर सागर, धामौनी, गढ़ाकोटा आदि के प्रदेशों में उपद्रव शुरु कर दिये । गोविन्दपंत बुन्देले, नारोशंकर, लक्ष्मण शंकर आदि इन उपद्रवों को दबाने में असमर्थ रहे । इसलिए पेशवा बालाजी बाजीराव ने अब अप्पा सिंधिया और मल्हार होल्कर को सभासिंह और जगतराज के दमन के लिए भेजा । उन्होंने अप्रैल १७४६ में दोनों बुन्देला राजाओं को जैतपुर के किले में शरण लेने को विवश कर दिया और फिर जैतपुर का घेरा डाल दिया । बुन्देलों ने काफी जमकर सामना किया पर अन्त में ५ मई, १७४६ को मराठों ने जैतपुर के किले पर अधिकार कर लिया।[४०] जैतपुर का किला अब लक्ष्मणशंकर के अधिकार में रख दिया गया और यहां पर जमा गोला बारूद तोपें आदि झांसी के किले में भेजदी गई।[४१]

सभासिंह तथा जगतराज से निबटने के पश्चात् सिंधिया होल्कर ने सेना सहित दतिया की ओर कूंच किया । स्मरण रहे कि दतिया के राजा इन्द्रजीत ने मराठों को न केवल खंडणी देनी बन्द करदी थी बल्कि करैरा के किले पर भी अधिकार कर लिया था।[४२] झांसी के मराठा राज्य की सीमायें करैरा से लगी हुई थीं, इसलिए इन्द्रजीत के उपद्रव का प्रभाव झांसी पर भी पड़ा । अत: जैतपुर का किला हस्तगत करने के पश्चात् सिंधिया होल्कर झांसी की ओर बढ़े । यहां नारोशंकर भी उनके साथ आकर सम्मिलित हुआ ।

---

४० - पे० द० २१, नं० १४, १५, पे० द० २७ नं० १७, ऐति० पत्रे० ५२, फाल्के० ४९, ५०, ५४, मराठी रियासत ५ (साहू) पृ० ६३-६४, सर देसाई २ पृ० २३४, विसाजी कृष्ण और काशीबाई बनारस जाते समय बुन्देलखण्ड में हुए इन उपद्रवों का उल्लेख करते हैं । पे० द० न० स० १ नं० ६०-६२, ७०-७२ ।

४१ - वा० ७० ३, बालाजी बाजीराव १ नं० २७, पे० द० न० स० १ नं० ७४ ।

४२ - इन्द्रजीत ने सन् १७४५ के प्रारंभ में करैरा के किले का घेरा डाला था । पे० द० २७ नं० ८, ऐति० पत्रे० नं० ५६ ।

इन्द्रजीत ने थोड़ा बहुत विरोध करने के पश्चात् नारोशंकर की मध्यास्ता से जनवरी १७४७ में होल्कर सिंधिया से एक समझौता किया । उसने बुन्देलखण्ड में मराठा हितों को कभी भी हानि न पहुंचाने का वचन दिया[४३] । // पदबंध

१३ - झांसी के राज्य का विस्तार

इस प्रकार झेपुर की तोपें तथा गोला बारूद झांसी के किले में रखने से झांसी अब बुन्देलखण्ड में मराठों की सैनिक छावनी बनती जा - रही थी और झांसी का किला उनका शस्त्रागार बन गया । इसी प्रकार झांसी के राज्य की सीमाओं का भी विस्तार दतिया से करैरा के गांव और बाद में एरच, भाण्डेर के ले लिये जाने से हुआ । झांसी का मराठा राज्य वास्तव में ओरछा दतिया के प्रदेश छीनकर ही बना था । ओरछा राज्य का लगभग आधा भाग जो झांसी और धसान नदियों के बीच में था और जिसमें बरुआसागर, मऊरानीपुर जैसे परगने भी थे झांसी के नये मराठा राज्य के अंग बन गये[४४] । इसके बाद ही दतिया के राज्य करैरा, एरच, भाण्डेर आदि के भी कुछ गांव जो दक्षिण दतिया में थे, झांसी में मिला लिये गये[४५] । इस प्रकार सन् १७५० तक झांसी की सीमाओं में काफी वृद्धि हुई और जब १७४६ के मध्य में नारोशंकर की अनुपस्थिति में विट्ठल शिवदेव ने यहां का कार्यभार संभाला तब वह झांसी से काफी प्रभावित हुआ और उसने अपने पत्र में नारोशंकर की शासन व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए लिखा कि " झांसी का राज्य काफी बड़ा और सुशासित है[४६] ।

संक्षेप में ओरछा और दतिया के बीच उन्हीं के प्रदेश हथियाकर, नारोशंकर ने झांसी के मराठा राज्य का निर्माण किया ।

---

४३ - ऐति० पत्रे० नं० ५६, पे० द० २७ नं० २५ ।

४४ - वाड० ३, बालाजी बाजीराव १, नं० २२ ।

४५ - ऐति० पत्रे० नं० ५६, वाड० ३, बालाजी बाजीराव १ नं० २६-३० ।

४६ - पे० द० २७ नं० ४२, ४५, ४७, ५१, पे० द० न० स० १ नं० १०३ ।

ओरछा और दतिया के राजाओं पर उसका दबदबा बराबर बना रहा । ओरछा के राजा पृथ्वीसिंह की मृत्यु नवम्बर सन् १७५० में हो गई । उसके उत्तराधिकारी सावन्तसिंह को पेशवा से ओरछा का राजा मान्य कराने के उपलक्ष्य में नारोशंकर ने उससे १ लाख रुपये का ठहराव किया[४७] । सावन्तसिंह निर्बल शासक था और वह नारोशंकर की मुट्ठी में ही रहा । नारोशंकर ने अपने पुत्र को राजा का प्रतिनिधि नियुक्त करवाकर उसकी स्वीकृति पेशवा से ले ली । उसके इस पुत्र का वार्षिक वेतन ३० हजार रुपये ठहरा तथा इतनी आय की जागीरें नारोशंकर के अधिकार में पहुंच गईं[४८] । सावन्तसिंह को कर्ज देने वाले साहूकार भी अब कर्ज की वसूली के लिए नारोशंकर का सहारा लेने लगे और पेशवा ने कर्ज की रकम की वसूली का चौथाई लेकर उसे राजा से कर्ज वसूल करवाने की अनुमति भी दे दी[४९] । दतिया के राजा की स्थिति भी प्राय: ऐसी ही थी । दतिया राज्य के आधीन सेंवढ़ा की जागीर को नारोशंकर के संरक्षण में रख दिया गया था[५०] । इससे दतिया के राजा ~~इन्द्र~~ इन्द्रजीत पर भी अंकुश लग गया था ।

१४ - नारोशंकर के अन्य अभियान

इस प्रकार नारोशंकर सन् १७५७ तक झांसी का सूबेदार रहा । इसी समय अफ़गान शासक अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से उत्तर भारत की स्थिति डांवा-डोल हो उठी, इसलिए उसे उत्तर में बुला लिया गया । इन ७ वर्षों के समय (१७५०-५७) में वह मराठा सरदारों जैसे दत्ता-जी जनकोजी सिंधिया, ~~बुन्दे~~ गोविन्दपंत बुन्देले, समशेर बहादुर, अन्ताजीमाणकेश्वर आदि की सहायता करता रहा । जैसे १७५० के अन्त में नारोशंकर एक विशाल सेना सहित दोआब में मराठा हितों की देख-रेख के लिए फर्रुखाबाद गया । इसी प्रकार जब रघुनाथराव

---

४७ - पे० द० २ नं० २७ ।

४८ - वा० ३ बालाजी बाजीराव १ नं० २२८ ।

४९ - वही० नं० २३२ ।

५० - पे० द० २१ नं० ७८ ।

तथा मल्हारराव होल्कर सूरजमल जाट के विरुद्ध युद्ध में उलझे हुए थे तथा जनवरी १७५४ में उन्होंने डीग और कुम्भेर के किलों पर आक्रमण किया तब नारोशंकर भी फांसी से एक सैनिक दल, गोला बारूद सहित उनके साथ जाकर सम्मिलित हुआ[५१]। इसी प्रकार जब जयप्पा सिंधिया (२५ जुलाई, १७५५) मारवाड़ की गद्दी के दावेदार विजयसिंह द्वारा मारा गया तब पेशवा ने दत्तोजी व जनकोजी सिंधिया की सहायता के लिए एक सेना भेजने के आदेश दिये। नारोशंकर को भी मारवाड़ जाने के आदेश प्राप्त हुए। उसने नरवर में समशेरबहादुर के साथ सम्मिलित होने की योजना बनाई किन्तु जब वह फांसी से प्रस्थान कर रहा था (मार्च १७५६) तब इसी बीच मारवाड़ का मामला निपट चुका था। अब नारोशंकर को मारवाड़ के बदले अन्तर्वेद की ओर बढ़ने के आदेश दिये गये। इसी बीच दोआब में एक नया बवण्डर उठ खड़ा हुआ था। सैयदअली कुबरा व बकरुल्लाह खां ने इटावा, फरुखाबाद, गाजीपुर, कोड़ाजहानाबाद पर अधिकार कर लिया था तथा गोविन्दपंत बुन्देले काल्पी के कमाविसदार हरी विट्ठल की सहायता से भी स्थिति को न संभाल सका। इसलिए उसने पेशवा से सैनिक सहायता भेजने की मांग की थी[५२]। अन्त में नारोशंकर समशेरबहादुर और सिंधिया गोविन्दपंत बुन्देले की सहायता के लिए दोआब की ओर बढ़े[५३]।

नारोशंकर को अब्दाली के आक्रमण के समय (नवम्बर, १७५६- अप्रैल १७५७) फिर से फांसी छोड़नी पड़ी। इस बार अहमदशाह अब्दाली मथुरा वृन्दावन तक बढ़ आया था तथा जहांखां के नेतृत्व में अब्दाली के सैनिकों ने आगरा तक लूट पाट मचा रखी थी। अन्ताजी माण्केश्वर, जो उस समय दिल्ली में था, १ फरवरी, १७५७ को अब्दाली के सैनिकों द्वारा बुरी तरह से परास्त होकर मथुरा की ओर भाग खड़ा हुआ था[५४]। जब अब्दाली मथुरा आगरा की ओर बढ़ा तब माण्केश्वर भदावर की ओर बच निकला[५५]। इसी समय नारोशंकर समशेरबहादुर के साथ

---

५१ - पे० द० २७ नं० ६६ (पृ० ८८-८९)

५२ - पे० द० २७ नं० १२४-१२५, पे० द० २१ नं० ८१ ।

५३ - पे० द० २७ नं० १२०, ~~१२१~~ १२४, १२५, १२७, २१५ , पे० द० २ नं०५८-६१,

५४ - सरकार २, पृ० ८१-८२ ।

५५ - पे० द० २१, नं० ९७ ।

ग्वालियर से आगरे की ओर बढ़ा । उनके साथ मार्च १७५७ के प्रारम्भ में अन्ताजी-माण्डकेश्वर भी आकर सम्मिलित हो गया । इसके तुरन्त ही बाद जहांखां ने ३ दिनों (२१ से २३ मार्च) आगरे की लूट पाट की । अब नारोशंकर भदावर की ओर बढ़ा। अन्ताजी माण्डकेश्वर उसके साथ हो लिया, किन्तु तभी अब्दाली ~~के~~ अपने देश के लिए वापस चल पड़ा । अस्तु, उपरोक्त तीनों सरदार राजपूताने की ओर बढ़कर रघुनाथराव के साथ हो गये[५६] । सम्भवत: इसी समय नारोशंकर की अनुपस्थिति में यशवन्तराव बाबूराव को फांसी का मौकासादार तथा ~~[illegible]~~ महादाजीगोविन्द काकड़े अथवा आंतिया को यहां का कमाविसदार नियुक्त किया गया[५७] ।

१५ - महादाजीगोविन्द काकड़े और बाबूराव कोन्हेर

महादाजी गोविन्द का काल (१७५६-६०) राजनैतिक रूप से घटना रहित रहा । उसने फांसी पर मराठा अधिकार बनाये रखा और ओरछा व दतिया के बुन्देला राज्यों पर भी अपनी धाक जमाये रखी । किन्तु उसका व्यवहार इन बुन्देला राज्यों के प्रति अच्छा न था । उस पर ओरछे के राजा पर दबाव डालकर रिश्वत लेने और अन्य ऐसे ही भ्रष्ट कार्य करने के आरोप लगाये गये[५८] । उसके काल में कर वसूली का कार्य भी न हो सका । इससे पेशवा उससे शीघ्र ही अप्रसन्न हो उठा । अब पेशवा ने १७६० के प्रारम्भ में उसे वापस बुला लिया और उसके स्थान पर बाबूराव कोन्हेर की फांसी के कमाविसदार के रूप में ~~नियुक्त~~ नियुक्ति की गई[५९] ।

---

५६ - पे० द० २१ नं० ६६, १००, १०३, १०५, १०७, ११८, पे० द० २७ नं० १४६, सरकार २ पृ० १३५, डेक्कन कालेज पूना रिसर्च बुलेटिन भाग ३१ में जी०टी० कुलकर्णी का डायरी आफ पौलिटिकल ~~अ~~ ऐफेअर्स आफ नौर्थ इंडिया फ्रॉम मई टू जुलाई १७५७ शीर्षक लेख, पृ० २१८ । इसमें फांसी के मौकासादार नारोशंकर के राजपूताने में माधोसिंह से धनराशि वसूल कर सान्हेर की ओर जाने का उल्लेख है ।

५७ - पे० द० २७ नं० १४४, १४६, २३२, २३३, पे० [illegible] नं० [illegible] ठे० १, ६३, सर देसाई २ पृ० २३१ पाद टिप्पणी, मराठी [illegible] पृ० ८७ पाद टिप्पणी, फांसी गज० पृ० [illegible] ।

५८ - पे० द० २७ नं० २३२, पे० द० ४० नं० १२[illegible]

५९ - पे० द० न० स० १ नं० २३७ ।

पानीपत के युद्ध (१४ जनवरी, १७६१) के अन्तिम दिनों में नारोशंकर उत्तरी भारत के अभियानों में उलझा हुआ था। पानीपत के युद्ध के समय वह दिल्ली के सूबेदार व किलेदार के रूप में नियुक्त था जिससे वहां से भाऊ और मराठा सेना को समय पर रसद भेजी जा सके[६०]। जब पानीपत के मैदान में मराठों की पराजय का समाचार दिल्ली पहुंचा तब " नारोशंकर ने अपनी स्थिति नाज़ुक पायी और वह अपनी सम्पत्ति और परिवार सहित बिना लुटे पिटे नगर छोड़कर चल पड़ा[६१]"।

---

६० - सर देसाई २ पृ० ४२३, ४२६, सरकार २ पृ० १८८, १६०, २६५, २६६।
नारोशंकर, दत्ताजी सिंधिया के साथ फरवरी १७५६ में पंजाब अभियान पर था। उसे पंजाब में रहने को कहा गया जिसे नारोशंकर ने स्वीकार नहीं किया। नारोशंकर जनवरी, १७६० में दत्ताजी के बारीघाट कैम्प में भी उपस्थित था और बाद को भाऊ के (दिल्ली मार्ग पर) साथ सम्मिलित हुआ तथा अगस्त, १७६० में दिल्ली में नियुक्त किया गया जहां वह पानीपत के युद्ध तक बना रहा।
सर देसाई २ पृ० ४०५, ४१०, सरकार २ पृ० १६०।

६१ - "Naro Shankar found his position untenable and ....issued from the city with his property and family without molestation."

सरकार २ पृ० २७६।

अध्याय - ३

झांसी की डांवाडोल राजनैतिक स्थिति

(१७६१ - ७०)

१ - झांसी पर शुजाउद्दौला और गुसाइयों का अधिकार

नारोशंकर की झांसी की सूबेदारी पर नियुक्ति (१७४२) के पश्चात् झांसी पानीपत के युद्ध तक (१७६१) मराठों के ही अधिकार में बनी रही। नारोशंकर के बाद महादाजीगोविन्द काकड़े (१७५६-६०) और फिर बाबूराव कोन्हेर (१७६१) पानीपत के युद्ध के समय तक इसके सूबेदार रहे[१]। इधर मुहम्मदखां बंगश के पश्चात् इस बीच क्रमश: सारबुलन्दखां और सफदरजंग इलाहाबाद के सूबेदार रहे। सफदरजंग की मृत्यु (५ अक्टूबर, १७५४) के पश्चात् उसके पुत्र शुजाउद्दौला को उसकी गद्दी के साथ इलाहाबाद की सूबेदारी भी विरासत में मिली। मुहम्मदखां बंगश की तरह शुजाउद्दौला भी बुन्देलखण्ड को जीतकर पुन: इलाहाबाद के सूबे में मिलाने को उत्सुक था, क्योंकि पूर्वी बुन्देलखंड का अधिकांश भाग इलाहाबाद सूबे में आता था और जैसाकि डा० आशीर्वादीलाल का कथन है " उसकी वैदेशिक नीति के हार्दिक लक्ष्यों में से एक बुन्देलखण्ड का अधिनीकरण था[२]।"

शुजाउद्दौला को अपने उपरोक्त लक्ष्य की पूर्ति के लिए पानीपत के युद्ध (१७६१) के पश्चात् अवसर मिला। मराठों की पानीपत की पराजय से उत्तरी भारत में उनकी सत्ता उखड़नी शुरु हो गई थी। बुन्देलखण्ड के अधिकांश राजाओं और जमींदारों ने मराठों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उन्होंने पेशवा को खंडणी भेजनी बन्द करदी[३]।

---

१ - अध्याय २ पृ० ४१ ।

२ - "~~Same~~ One of the most cherished objects of his foreign policy was the subjugation of Bundelkhand."
शुजा० १ पृ० १२३ ।

३ - पे० द० २७ नं० २७२, पे० द० न० स० ३, नं० ७३ ।

फांसी के निकट समथर[४] के मदनसिंह गूजर, गंगापुरी गोसाई मराठों के विरुद्ध उठ खड़े हुए[५]। कुछ बुन्देलों ने तो फांसी और मऊ-रानीपुर[६] के आस पास १०-१५ गांव लूट कर मराठा चौकियां ही समाप्त करदीं[७]। फांसी ओरछा[८], दतिया[९], चिरगांव[१०] आदि के राजे रजवाड़ों ने मराठा सत्ता को खुली चुनौतियां देनी शुरु करदी। दतिया के निकट सेवढ़ा[११] में पजनसिंह नामक एक बुन्देला सरदार ने लूटमार कर मराठों की सत्ता वहां समाप्त करदी[१२]। इससे बुन्देलखण्ड में मराठा राज्य की नींव हिल सी गयी। अब शुजाउद्दौला को अपनी आकांक्षा पूर्ण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसने बुन्देलखण्ड में उत्पन्न स्थिति से लाभ उठाने के लिए मुगल सम्राट् शाहआलम से, जोकि इस समय इलाहाबाद की यात्रा पर थे, भेंट की। सम्राट् ने शुजाउद्दौला की बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने की योजना को न केवल स्वीकार ही किया, बल्कि उसके साथ काल्पी तक जाने को भी तैयार हो गया। शुजाउद्दौला और शाहआलम की सहायता के लिए फर्रुखाबाद के शासक अहमदखां बंगश के पुत्र महमूदखां बंगश, हाफिज रहमतखां और दूंदेखां आदि रुहेलों ने भी अपनी सेनायें भेजी। इस संयुक्त सेना ने सम्राट् के नेतृत्व में ७ नवम्बर १७६१ को आजमऊ से प्रस्थान किया[१३], और यमुना पार कर ११ दिसम्बर को - काल्पी पहुंचे। शुजाउद्दौला ने काल्पी और फांसी के मराठा सूबेदारों, क्रमश:

---

४ - समथर - फांसी से ४१ मील ।

५ - भारतवर्ष भाग १ नं० १, पे० द० २६ नं० १०, पे० द० २७ नं० २७३ ।

६ - मऊरानीपुर - फांसी से ३६ मील पूर्व में ।

७ - पे० द० २७ नं० २७३, शुजा० १ पृ० १२२ ।

८ - ओरछा - ~~कंब~~ फांसी से ८ मील दक्षिण पूर्व ।

९ - दतिया - फांसी से १६ मील उत्तर पूर्व ।

१० - चिरगांव - फांसी से १८ मील ।

११ - सेंवढ़ा - दतिया से ३६ मील ।

१२ - पे० द० २६ नं० १०, १२, १४, १५, पे० द० २७ नं० २७३, शुजा० १, पृ० १२२

१३ - पे० द० २६ नं० २३, २४, शुजा० १ पृ० १२३, सरकार २ पृ० ३६८-६६ ।

बालाजी गोबिन्द तथा गणेश संभाजी के पास सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने के आदेश भेजे । बालाजी गोबिन्द से सम्राट् को कोई उत्तर प्राप्त न हो सका । शीघ्र ही बालाजी की सेना शाही सेना का मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ी, किन्तु सामना करने के पूर्व ही वह घबड़ाकर भाग खड़ा हुआ । इधर झांसी के मराठा सूबेदार गणेशसंभाजी ने काल्पी में आकर सम्राट् से भेंट की । इसका कारण यह था कि गणेशसंभाजी झांसी में बाबूराव कोन्हेर की नियुक्ति को लेकर पूना दरबार से असंतुष्ट हो गया था । उसने मदनसिंह गूजर और गंगापुरी गोसाई आदि को मराठों के विरुद्ध भड़काया तथा झांसी के ५२ मराठा सरदारों को कैद कर लिया ।[१४] गणेशसंभाजी ने शुजाउद्दौला को मराठों के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया, किन्तु बदले में उससे वही पद प्राप्त करना चाहा जो अब तक उसे मराठों के अधीन प्राप्त था ।[१५]

काल्पी को हस्तगत करके शाहआलम तो वहीं रुक गया और शुजाउद्दौला झांसी की ओर बढ़ आया । उसने सिदीबशीरखां के नेतृत्व में मोंठ[१६] पर शाही शासन स्थापित करने के लिए १ सैनिक टुकड़ी भेजी । बशीरखां ने मोंठ के किले को घेर लिया और शीघ्र ही उस पर अधिकार कर लिया ।[१७] मोंठ के किले के पतन से आतंकित होकर झांसीके मराठा किलेदार ने शुजाउद्दौला के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि यदि झांसी का किला उसके अधिकार में रहने दिया जाय तो वह ३ लाख रुपये खंडणी देगा, किन्तु शुजाउद्दौला झांसी को अपने अधीन देखना चाहता था, इसलिए उसने किलेदार का उक्त प्रस्ताव अस्वीकार कर झांसी की ओर कूच किया और झांसी जाकर किले पर मोर्चे लगाये ।[१८]

---

१४ - पे० द० २६ नं० २२, ३२, ३६, भारतवर्ष १ नं० १, शुजा० १ पृ० १२३, सरकार २ पृ० ३९८-९९, ऐति० पत्र० नं० १९६, झांसी गजे० पृ० ४८ (नया)।

१५ - शुजा० १ पृ० १२३-२४ ।

१६ - मोंठ - झांसी से ३१ मील उत्तर पूर्व ।

१७ - शुजा० १, पृ० १२४, पे० द० २६ नं० ३७, सरकार २ पृ० ३९८-९९, झांसी गजे० पृ० ४८ (नया)।

१८ - पे० द० २६ नं० ३२, ३७, शुजा० १ पृ० १२४-२५, ऐति० पत्र० नं० १९६ ।

मराठे जमकर लड़े किन्तु शुजाउद्दौला के तोपखाने के सम्मुख अधिक दिनों तक न टिक सके और ३१ जनवरी या १ फरवरी १७६२ को उन्हें हथियार डालने पड़े[१९]। इस प्रकार पूर्वी बुन्देलखण्ड और विशेषकर झांसी को इलाहाबाद के सूबे में मिलाने की शुजा की आकांक्षा पूर्ण हुई। गणेशसंभाजी के विश्वासघात के कारण पेशवा को काल्पी, मोंठ तथा झांसी के लगभग १ करोड़ के प्रदेश से हाथ धोना पड़ा[२०]। शुजाउद्दौला ने अब बसीरखां को झांसी का फौजदार नियुक्त किया और यहां की माल गुजारी वसूल करने का कार्य गणेशसंभाजी को ठेके पर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् यह नवाब के विश्वसनीय सरदार अनूपगिरि उर्फ हिम्मत बहादुर गोसाईं के अधिकार में आगयी[२१]।

२ - विश्वासराव का झांसी अभियान

झांसी के नवाब के अधिकार में चले जाने का समाचार पाते ही मराठा सरदार सक्रिय हो उठे। अब पेशवाने झांसी पर मराठा सत्ता पुन: स्थापित करने का कार्य यहां के प्रथम सूबेदार नारोशंकर को सौंपा। नारोशंकर तब मालेगांव (महाराष्ट्र) में था। उसने फरवरी १७६२ में मल्हारराव-होल्कर से भेंट कर झांसी को हस्तगत करने के विषय में परामर्श किया और उज्जैन में नियुक्त अपने भतीजे विश्वासराव लक्ष्मण को शत्रु के विरुद्ध स्थिति सुदृढ़ करने के निर्देश भेजे[२२]। नारोशंकर ने उत्तर की ओर प्रस्थान करने के पूर्व अन्ताजी - माण्केश्वर, विट्ठल शिवदेव तथा यशवन्तराव पवार को ५००० - ७००० सैनिकों सहित उज्जैन के मार्ग से झांसी भेजा। उसने अपने भतीजे विश्वासराव लक्ष्मण को ~~को~~ चिमनाजी वामन तथा माधवराव को भी सिरोंज के मार्ग से इसी सेना के साथ ~~भेजे~~ भेजने के आदेश दिये। उसने विश्वासराव को तुरन्त सिरोंज ~~म~~ जाकर वहां के

---

१९ - शुजा० १ पृ० १२५, पे० द० २६ नं० ३४, ३७, झांसी गजे० पृ० ४८ (नया) सरकार २ पृ० ३७४, तारीखे मुजफ्फरी (सीतामऊ) पृ० १५३।

२० - पे० द० २६ नं० २२, ३७ ।

२१ - शुजा० १ पृ० १२५, मिरआते आफताबनुमा (सीतामऊ) पृ० ३७४ ।

२२ - पे० द० २६ नं० ३८ ।

इज्जतखां, शुजाखां और अहीर सरदारों को साथ लेकर फांसी और करैरा[२३] के किलों पर यथा शीघ्र पुन: अधिकार कर लेने के भी आदेश भेजे।[२४] विश्वासराव ने फांसी के निकट पहुंच कर मार्च १७६३ में किले का घेरा डाल दिया। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। विश्वासराव ने महादाजी सिंधिया और मल्हार-राव होल्कर को भी सहायता भेजने के सन्देश भेजे। सिंधिया उस समय बूंदी के मामले में उलझा हुआ था तथा होल्कर और अन्य मराठा सरदार जयपुर के गांव में लूट पाट कर रहे थे। बूंदी के मामले से निवट जाने के पश्चात् सिंधिया ने अप्रैल में केदार जी के साथ शिवपुरी में पड़ाव डाला और वहां से विश्वासराव की सहायता के लिए फांसी की ओर चल पड़ा। अब गणेशसंभा जी भी विश्वासराव के साथ आकर मिल गया। इससे किले में घिरे लोगों की स्थिति बड़ी नाजुक हो उठी और उनका साहस भी जाता रहा। फलस्वरूप विश्वासराव ने मार्च १७६३ में ही फांसी के किले पर अधिकार कर लिया।[२५] फांसी पर अधिकार करने के बाद ही विश्वासराव ने कौंच[२६] में भी मराठा राज्य पुन: स्थापित किया।[२७] इस प्रकार फांसी तथा यहां के समीपवर्ती क्षेत्र पुन: मराठों के अधिकार में आ-गये।

३ - फांसी गुसाइयों के अधिकार में

फांसी पर अभी भी खतरे के बादल मंडरा रहे थे। विश्वासराव द्वारा फांसी का किला घेरे जाने का समाचार सुनते ही शुजाउद्दौला चिन्तित हो उठा और अब मराठों का दमन उसकी प्रतिष्ठा का प्रश्न सा बन गया।

---

२३ - करैरा - फांसी से २० मील।

२४ - पे० द० २६ नं० ३४, ३५, ३७, ३८, ७४, ऐतिहासिक पत्र व्यवहार नं० १०१ १०३, भारतवर्ष १ नं० १ - २, ऐति० पत्रे० नं० १६६, रघुवीर० पृ० ३१२।

२५ - भारत इतिहास संशोधक, मण्डल, त्रैमासिक वर्ष ४७-४८ नं० २४, २७,।

२६ - कौंच - फांसी से ५३ मील।

२७ - भारत इतिहास संशोधन मण्डल, त्रैमासिक वर्ष ४७-४८, नं० ३५।

उसने सम्राट् को लिख भेजा कि " दक्षिणी सरदारों ने झांसी के किले का घेरा डाल रखा है। उन्हें शिक्षा देनी चाहिए तथा कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मराठे कभी नर्मदा पार कर इस ओर आने का साहस ही न करें।"[२८] सम्भवत: तभी सम्राट् और शुजाउद्दौला में झांसी आने का निश्चय हुआ। सम्राट् शुजाउद्दौला ने जनवरी १७६४ में यमुना की बायीं ओर पड़ाव डाला तथा बुन्देलखण्ड से आगाबकीरखां को बुला भेजा। शुजाउद्दौला ने यमुना के दूसरी ओर के प्रदेश अनूपगिरी गोसाईं को दे दिये। सम्भवत: इसके बाद ही अनूपगिरी झांसी की ओर बढ़ा और उसने दतिया, ओरछे और सेवढ़े के बुन्देलों की सहायता से मराठों को खदेड़ कर झांसी पर आधिपत्य जमा लिया। झांसी के आस पास म के प्रदेशों पर भी गुसाइयों ने अधिकार कर लिया और झांसी के साथ ही मोंठ भी उनका महत्वपूर्ण सैनिक अड्डा बन गया।[२९]

४ - होल्कर द्वारा झांसी की पुनर्विजय

इस समय सूबेदार मल्हारराव होल्कर बुन्देलखण्ड में ही था। उसने जब इस प्रकार झांसी गुसाइयों के अधिकार में चले जाने का समाचार सुना तो उसने मराठा सरदार यशवन्तराव के साथ किले का घेरा डाल दिया। सिंधिया भी उसकी सहायता के लिए आ पहुंचा। अब हिम्मत बहादुर किले में फंस गया। किले में ओरछे, दतिया और सेवढ़े के सैनिक तथा बुन्देले सरदार भी थे। उन्हें किले से निकालने के लिए होल्कर ने एक चाल चली। उसने सेवढ़ा पर आक्रमण करने का ढोंग दिखाया और उस ओर कूंच कर दिया। इस पर सेवढ़े की रक्षा के लिए बुन्देले झांसी के किले से निकल रातों रात वहां पहुंच गये।

---

२८ - भारत इतिहास संशोधक मण्डल, त्रैमासिक वर्ष ४७-४८ नं० २३ ।

२९ - सी० पी० सी० भाग १ नं० २०२३ ।

अनूपगिरि गुसाईं जनवरी १७६५ तक लखनऊ में था किन्तु मई १७६५ को कड़ा में अंग्रेजों का होल्कर और शुजाउद्दौला की सेना से जो युद्ध हुआ उसमें उसके भाग लेने का उल्लेख नहीं है। जिससे अनुमान होता है कि हिम्मत-बहादुर ने इसी बीच झांसी पर अधिकार किया होगा ।

इधर उनके सेंवढ़ा आ जाने का समाचार पाते ही होल्कर ने तुरन्त मुड़कर झांसी आकर किला घेर लिया किन्तु तोपों के अभाव में किला जीतना कठिन सा लगा। तब उसने रामपुर से सुप्रसिद्ध फाड़ादल, सलाम, भवानी और मारतण्ड नामक तोपें मंगाकर दिसम्बर १७६५ में किले पर अधिकार कर लिया। अब हिम्मत बहादुर ने बचे खुचे सैनिकों के साथ बच निकलने में ही कुशल समझे[30]।

झांसी हस्तगत करने के तुरन्त ही पश्चात् होल्कर ने झांसी के अन्तर्गत माण्डेर[31], चिरगांव, मोंठ आदि के प्रदेशों को जीत कर वहां मराठा चौकियां स्थापित कीं। होल्कर ने दतिया, ओरछा और सेंवढ़े के बुन्देला शासकों से भी ५ लाख रुपये वसूल किये[32]। इस प्रकार झांसी तथा वहां के आस पास के प्रदेशों पर पुनः मराठा प्रभाव स्थापित हो गया।

५ - झांसी की असुरक्षित स्थिति

होल्कर तथा सिंधिया द्वारा झांसी हस्तगत (दिसम्बर, १७६५) करने के पश्चात् सम्भवतः रामचन्द्र साम्राज्य को वहां का कमाविसदार नियुक्त कर विश्वासराव ने होल्कर तथा सिंधिया के साथ दतिया और ओरछे के राज्यों से खंडणी वसूल करने के लिए प्रस्थान किया। इस समय तक बुन्देलखण्ड की अव्यवस्थित स्थिति से लाभ उठाकर जाट भी सक्रिय हो उठे थे। गोहद के राणा ने जवाहरसिंह जाट के साथ मिलकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया जो मराठों के लिए खुली चुनौती था। अब मराठों ने गोहद पर आक्रमण करने की योजना बनायी। योजनानुसार जानौजी भोंसले के साथ रघुनाथराव ने अप्रैल १७६६ में झांसी में पड़ाव डाला[33]। यहां होल्कर और सिंधिया भी उनके साथ आकर सम्मिलित हुए। इस संयुक्त सेना ने गोहद की ओर कूच किया, किन्तु गोहद पहुंचने के पूर्व ही आलमपुर

---

३० - होल्कराची कैफियत पृ० ३७-३८, सरकार २, पृ० ३४५, ३७८, चन्द्रचूड़ दफ्तर १, नं० १६०, पे० द० न० स० ३ पृ० ८८, बरवेकृत सूबेदार मल्हारराव होल्कर पृ० १५७ - ५८ ।

३१ - माण्डेर - झांसी से ३५ मील उत्तर पूर्व में ।

३२ - पे० द० ३०, नं० ११७, सरकार २ पृ० ३७८, होल्कराचीकैफियत पृ० ३८ ।

३३ - वाड० ७ पृ० ४११ ।

के निकट २० मई १७६६ को मल्हारराव होल्कर की मृत्यु हो गई ।[३४] नारोशंकर भी अप्रैल १७६६ में चिल्ला (दतिया के निकट) आ पहुंचा तथा सिंधिया और राघोबा के साथ माण्डेर के निकट सम्मिलित हुआ । गणेशसंभा जी ने रघुनाथराव का पुन: विश्वास प्राप्त करने का प्रयास किया । और गोहद के राणा के विरुद्ध इस मराठा अभियान में उसने भी उसका साथ दिया । चूंकि फांसी ई को प्राप्त किये अभी बहुत समय नहीं हुआ था और फांसी तथा ओरछे के मध्य का मार्ग भी असुरक्षित था तथा गंवार भी वहां उपद्रव कर रहे थे इसलिए विश्वासराव अपने पीछे नियुक्त कमाविसदार को फांसी के किले, चौकी, मार्गों आदि की देखभाल के लिए निर्देश देता गया ।[३५]

मराठे फांसी तथा बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल तो हुए थे किन्तु उनकी स्थिति अभी भी सुदृढ़ नहीं थी । उनके गोहद की ओर प्रस्थान करते ही ओरछा के राजा ने मऊरानीपुर तथा बरुआसागर के बीच के प्रदेशों में लूटमार शुरु करदी । टोड़ीफतेहपुर और बुरबई के बुन्देले भी भला क्यों चूकते ? चिरगांव के ठाकुर तथा टहरौली के राजा पजनसिंह ने भी सेना एकत्र कर बेतवा के घाट से उतरकर रामनगर में उपद्रव शुरु कर दिया ।[३६] अब तक फांसी की आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति लड़खड़ा उठी थी । उपद्रवी तत्वों का दमन करने में खर्च बढ़ता जा रहा था, जबकि वसूली का कार्य नहीं के बराबर था । इसीलिए यहां की स्थिति को संभालने के लिए पेशवा ने मार्च १७६७ में नारोशंकर के भतीजे विश्वासराव लक्ष्मण को फांसी का सूबेदार नियुक्त किया ।[३७] किन्तु विश्वासराव भी फांसी की स्थिति संभालने में असफल रहा । उसके समय में फांसी के निकटवर्ती प्रदेशों में लगातार उपद्रव होते रहे । ऐसे ही समय जवाहरसिंह जाट के बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर देने से स्थिति और खराब हो गयी ।

---

३४ - सर देसाई २ पृ० ५०७ , सरकार २ पृ० ३४६ ।

३५ - पे० द० २९ नं० १३६, १६१ ।

३६ - पे० द० २९ नं० १९५, पे० द० न० स० ३ नं० ६५, सरकार २ पृ० ३४५ ।

३७ - पे० द० नं० स० ३ नं० १०४, पे० द० २७ नं० ।

जवाहर भिण्ड , अटेर लेकर बुन्देलखण्ड में घुस पड़ा और उसकी सेना के अग्रिम दल झांसी से २४ कोस (४८ मील) तक आ पहुंचे।[38]

६ - जाट आक्रमण और अराजकतापूर्ण स्थिति

जवाहरसिंह जाट ने जून १७६७ तक बटेश्वर, अटेर और भदावर पर अधिकार कर लिया था। उसने ५० हजार सैनिकों तथा तोपखाने के साथ सिंध नदी पार कर अनेक मराठा अड्डों पर लूटमार की। उसने लाहर पर अधिकार कर रामपुरा की ओर प्रस्थान किया। जाटों के आने की खबर पाते ही आस पास के गांव के व्यक्ति घर बार छोड़कर भागने लगे। अब तक मिली विजयों से जाट राजा का उत्साह बढ़ता गया और आस पास के गांव को रौंदती हुई जाट सेना मुरावली और टेकरावपुर की ओर बढ़ी। जाट सेना समथर की ओर बढ़ने ही वाली थी कि इसी बीच जवाहरसिंह को रामपुरा वालों के विद्रोह का समाचार मिला। अब अपनी पूर्व योजना स्थगित कर वह परवारा के मार्ग से रामपुरा की ओर बढ़ा।[39]

रामपुरा से होकर जाट सेना काल्पी की ओर बढ़ी। मराठा सरदार बालाजी गोविन्द, गंगाधर गोविन्द व काशीपन्त सेना सहित जालौन से ८ मील उत्तर में स्थित सारावन गढ़ी में पड़ाव डाले हुए थे। बालाजी-गोविन्द ने जवाहरसिंह को ३ लाख रुपये देने चाहे किन्तु उसने स्वीकार नहीं किये और १०, १५ हजार सैनिकों सहित बालाजी पर अचानक आक्रमण कर दिया। जाटों के इस आक्रमण से बालाजी को केवल इतना समय मिला कि वह अपने परिवार को लेकर बेतवा पार कर अपने मित्र महोबा, चरखारी के बुन्देला बन्धु गुमानसिंह, खुमानसिंह के पास भाग सके। जाट सेना कुछ समय तक जालौन के आस-पास लूट मार करती रही।[40]

इस प्रकार काल्पी तक के समस्त क्षेत्र पर अधिकार करके जवाहरसिंह कोंच गया और फिर जुलाई के अन्त में समथर आ पहुंचा। समथर के

---

३८ - पे० द० २६ नं० १८५ ।

३९ - पे० द० न० स० ३ नं० ११८, ११९ , १२१, १२४ ।

४० - पे० द० न० स० ३ नं० १२०, १२३-२६, पे० द० २६ नं० १४६ ।

राजा ने जवाहरसिंह की अधीनता स्वीकार कर २० हजार रुपये देने का वचन दिया।[४१] जवाहरसिंह दतिया के राजा से भी कर वसूल कर नरवर की ओर चल पड़ा। उसने झांसी की ओर जाने का इरादा छोड़ दिया।[४२] इस प्रकार झांसी जाट आक्रमण की विभिषिका से बच गयी। जवाहरसिंह जाट की इन निरन्तर विजयों के बारे में मराठा अधिकारियों ने पूना सूचना भेजते हुए लिखा कि भदावर, कछवाधार, तोमरधार, सिकरवार, दण्डरौली और खितौली सब हमारे हाथ से निकल गये हैं तथा झांसी के लोग भी जाट आक्रमण के भय से भागने लगे हैं।[४३] झांसी में कोई अच्छी फौज़ नहीं रह गयी थी इसलिए विश्वासराव ने पेशवा को सैनिक सहायता भेजने के लिए अनेक सन्देश भेजे। अब पेशवा ने तुकोजी होल्कर और महादाजी सिंधिया को सेना सहित उत्तर की ओर भेजा। उन्होंने सन् १७६६ के प्रारम्भ में सेना सहित उत्तर भारत की ओर प्रस्थान किया। इस समय तक दतिया और ओरछे के राजाओं ने एक पैसा भी नहीं भेजा था और साथ ही उत्पात करके आस पास की शान्ति भंग करते रहे थे। अष्ट भैयों[४४] ने तो ५, ७ हजार सैनिक भेजकर ओरछे के राजा हटेसिंह को ओरछे की गद्दी से खदेड़ दिया। वह भाग कर दतिया के राजा के साथ जाकर मिल गया। विश्वासराव की उपस्थिति का किसी के मन में डर नहीं था, इसलिए समस्त जागीरदार मनमानी कर रहे थे। ओरछा

---

४१ - पे० द० न० स० ३ नं० १३०-१३१ ।

४२ - पे० द० न० स० ३ नं० १३२, १३३, पे० द० २६ नं० १५२, २१५, चन्द्रचूड़ दफ्तर भाग १ पृ० १५६ ।

४३ - पे० द० २६ नं० १५२, १७५, १६२ ।

४४ - अष्ट भैया जागीरें प्रारम्भ में ओरछा राज्य का ही एक भाग थीं। ओरछा राजा महाराजा उदोतसिंह ने १६६० ई० के लगभग बड़ागांव (झांसी कानपुर मार्ग पर झांसी से ६ मील) जागिर अपने भाई दीवानरायसिंह को दे दी। ~~उनकी मृत्यु के~~ रायसिंह के ८ पुत्र थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् यह ८ भागों में बांट दी गई। इसीलिए यह अष्टभैया जागीर के नाम से प्रसिद्ध हुयी। इसमें कटी, पसराई, टहरौली, विजना, चिरगांव, टौड़ीफतेहपुर और बंका पहाड़ी नामक ८ जागीरें थी। बाद में प्रथम ३ अन्य जागीरों में शामिल करदी गयीं। गौरे० पृ० २११-१२, सैन्ट्रल गजे० पृ० ३६३-६४ ।

और चिरगांव के विद्रोहों का फांसी पर भी प्रभाव पड़ा और यहां भी दंगे होने लगे।[४५]

७ - मराठा सत्ता की पुनर्स्थापना

होल्कर और सिंधिया के नेतृत्व में मराठा सेना ने सन् १७६६ के मध्य में फांसी में प्रवेश किया। जाट इस समय माण्डेर में थे। विश्वासराव ने होल्कर के साथ मिलकर जाट राजा दानशाह को परास्त कर बिलहटी पर अधिकार कर लिया। सम्भवत: इसी समय पेशवा ने विश्वासराव को पूना वापस बुला लिया और १७७० के प्रारम्भ में रघुनाथ ~~हरि~~ हरि नेवालकर को फांसी का सूबेदार नियुक्त किया।[४६] यहां स्मरण रहे कि फांसी में विश्वासराव के रहने के उल्लेख सन् १७६६ तक मिलते हैं और इसके तुरन्त ही पश्चात् रघुनाथहरि की नियुक्ति से ऐसा अनुमान होता है कि इसी समय विश्वासराव के स्थान पर ही रघुनाथहरि की नियुक्ति की गयी थी।

---

४५ - पे० द० २६ नं० २०१, २२४, २३०, २४४ ।

४६ - पे० द० न० स० ३ नं० १५८, १५६, १६४, ऐति० पत्र० भाग १ नं० २२२ ऐति० पत्र० २२२ दि० ४।१२।१७६६ में विश्वासराव के पूना पहुंचने का उल्लेख है और वा०ब० ६, माधवराव १ नं० ६६ दिनांक फरवरी १३, १७७० के पत्र में फांसी के रघुनाथहरि का ७५०० रु० देकर करैरा का किला ले लेने का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि विश्वासराव लक्ष्मण को १७६६ के अंतिम महिने में वापस बुला लिया गया था और उसके पश्चात् ही सन् १७७० के प्रारम्भ में ~~रघुना~~ रघुनाथहरि की नियुक्ति फांसी की सूबेदारी पर की गयी होगी।

अध्याय - ४

झांसी में निवालकर सूबेदारी का प्रारम्भ

१ - तत्कालीन स्थिति और रघुनाथहरि निवालकर की नियुक्ति

यद्यपि १७६५ में मराठा सरदार झांसी पुन: प्राप्त करने में सफल हुए थे किन्तु यहां के निकटवर्ती क्षेत्रों में लगातार उपद्रव होने तथा जाटों के आक्रमणों से झांसी की स्थिति सुरक्षित न थी। झांसी के निकट ओरछा का राज्य पेशवाओं के लिए सदैव से सिरदर्द बना हुआ था। होल्कर तथा सिंधिया की संयुक्त सेनाओं ने जब १७६५ में गुसाइयों को परास्त कर झांसी प्राप्त की थी, उस समय ओरछे के राज्य से भी खंडणी वसूल कर वहां का शासन प्रबन्ध हटेसिंह को सौंपा था। हटेसिंह से समस्त अष्टमैये सन्तुष्ट न थे। अस्तु उन्होंने ५, ७ हजार सैनिक भेजकर हटेसिंह को ओरछा राज्य से खदेड़ कर ओरछे की राज्य गद्दी पजनसिंह को सौंपी। हटेसिंह भी शान्त न बैठा रहा। उसने आस पास के क्षेत्रों की लूटमार प्रारम्भ करदी। छुधौरा का प्राणसिंह भी राजा बनना चाहता था, इसलिए वह भी मराठों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। इसी बीच करैरा का किला भी मराठों के हाथ से निकल गया। इस प्रकार चारों ओर के विद्रोहों से हाल ही स्थापित मराठा सत्ता फिर से डगमगा उठी।[१] 79

पजनसिंह को दण्डित किये बिना व्यवस्था स्थापित करना असंभव था। इसलिए उसे दण्डित करने के लिए १७७० के प्रारम्भ के लगभग पेशवा माधौराव ने रघुनाथहरि निवालकर को झांसी की सूबेदारी प्रदान की। रघुनाथहरि के पिता हरिदामोदर निवालकर पूना के दरबार में एक

---

(79) १ - भारतवर्ष १ पृ० ६, पे० द० २६ नं० ८२, परशियन रिकर्ड्स आफ मराठा हिस्ट्री भाग १ पृ० ५०, ऐति० पत्रे० नं० १६०।१०७, वाड० ६, पेशवा माधवराव १ नं० ६६।६८१ ।

प्रतिष्ठित सरदार थे । वह जाति के करहाडे ब्राह्मण थे और उनका गोत्र गौतम था ।[80] पजनसिंह को दण्डित करने तथा फांसी में व्यवस्था स्थापित करने के लिए रघुनाथहरि निवालकर ने ओरछे पर चढ़ाई की और जिस प्रकार सन् १७४२ ई० में नारोशंकर ने ओरछा के राजा को परास्त कर उसे फांसी के किले में कैदा रक्खा था, उसी प्रकार रघुनाथहरि ने भी पजनसिंह को परास्त कर फांसी के किले में कैद रक्खा । उसके आक्रमण के बाद ओरछा का राज्य जो उजड़ा, तो आज तक न बच सका ।[81] जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि पजनसिंह के विद्रोह से प्रेरित होकर करैरा का किला भी स्वतंत्र हो गया था । अब रघुनाथहरि ने ७५०० रु० देकर करैरा का किला भी प्राप्त कर लिया ।[82] इस प्रकार फांसी तथा निकटवर्ती क्षेत्र में पेशवाई अमल फिर से स्थापित हो गया ।

ओरछे पर मराठा सत्ता स्थापित होने का समाचार पाते ही टौड़ीफतेहपुर[83] के राजा हिन्दूसिंह बुन्देला ने मराठों के विरुद्ध विद्रोह कर फांसी के किले पर आक्रमण कर दिया । अब रघुनाथहरि ने दिल्ली स्थित मराठा सरदार विसाजीगोविन्द से सहायता की याचना की । उसने दिल्ली से नारोशंकर के नायक आनन्दराव को रघुनाथहरि की सहायता के लिए रवाना किया । साथ ही ग्वालियर के किलेदार को भी हरि की सहायता करने के आदेश भेजे गए ।[84] इस प्रकार सम्भवत: समय पर सहायता आ पहुंचने पर रघुनाथहरि पर आया संकट शीघ्र ही टल गया । पजनसिंह फांसी में बन्दी था ही अस्तु सन् १७७२ के प्रारम्भ में ओरछे के पूर्व शासक हटेसिंह को ओरछे की गद्दी दे दी गयी ।[85]

---

80 २ - फा० पौलि० कन्स० २ नवम्बर, १८३५ नं० २२, ऐतिहासिक घराण्याचा वंशावली पृ० ५२, इतिहास संशोधक जुन्या ऐतिहासिक गोष्ठी भाग २ पृ०४२-४३

81 ३ - भारतवर्ष १ पृ० ६, पे० द० २६ नं० ८२, परसीयन रिकर्ड्स आफ मराठा हिस्ट्री भाग १ पृ० ५०, ऐति० पत्रे० नं० १६०।१०७ ।

82 ४ - वा०८० ६, पेशवा माधवराव ~~खं~~ १ नं० ६६।६८१ ।

83 ५ - टौड़ीफतेहपुर - फांसी से ५४ मील ।

84 ६ - परसीयन रिकर्ड्स आफ मराठा हिस्ट्री भाग १, पृ० ५०, ऐति० पत्रे० नं० १६०।१०७, पे० द० २६ नं० ८२ ।

85 ७ - ऐति० पत्रे० नं० १६०।१०७ ।

२ - नईम खां और गुसाइयों के आक्रमण

इस समय पूना दरबार की स्थिति अच्छी न थी । सन् १७७२ में माधवराव पेशवा की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नारायणराव पेशवा बना । किन्तु नारायणराव का चाचा राघोबा पेशवा बनना चाहता था । इसलिए उसने षड्यन्त्र रचकर नारायणराव की हत्या करवादी । नारायणराव की हत्या से पूना दरबार की स्थिति डांवाडोल हो उठी । अब इस स्थिति से लाभ उठाने के लिए शुजाउद्दौला ने मीरनईम या नईम खां को यमुना के दक्षिण में स्थित बुन्देलखण्ड के राज्यों पर अधिकार करने के लिए भेजा । किन्तु वह झांसी के रघुनाथहरि तथा गंगाधर और बालाजी की सम्मिलित सेना द्वारा बुरी तरह से परास्त हुआ[८] । इसके बाद अंग्रेजों की सहायता से शुजाउद्दौला ने रुहेलों को परास्त कर दोआब में स्थित मराठा चौकियों पर अधिकार कर लिया[६] । दतिया के राजा ने भी मराठों के ताल्लुकों में उपद्रव शुरु कर दिया और मराठों से मिले हुए अपने दरबारी खेतसिंह को मरवा डाला । उसने नरवर (ग्वालियर से लगभग ४० मील दक्षिण) जाकर करैरा के ताल्लुके में दो चार गांव लूटे और वहां के जमींदारों को दतिया लाकर रुपये वसूल किये । इस समय तक सम्भवत: पजनसिंह मराठों की कैद से छूट चुका था । उसके दतिया के राजा से सम्बन्ध अच्छे न थे, क्योंकि उसने ओरछा के पूर्व शासक हटेसिंह को अपने राज्य में शरण दी थी । पजनसिंह ने दतिया के राज्य में ऊधम किया और मऊरानीपुर (झांसी से ३६ मील पूर्व) से रबी और खरीफ की फसल की माल गुजारी वसूल कर डाली[१०] ।

बुन्देलखण्ड की इस अव्यवस्थित स्थिति से लाभ उठाने के लिए शुजाउद्दौला ने मिर्वगिरि गुसाई को झांसी तथा शिवगिरि गुसाई को गुरसराय

---

८ - सेजवलकर पृ० ४६, शुजा० २, पृ० २३४ -३५ ।

६ - पे० द० २६, नं० २८२, सेजवलकर पृ० ४६ ।

१० - पे० द० २६, नं० ८२, २८२ ।

भेजा । काल्पी के गुसाईं राजा हिम्मतबहादुर ने भी अपने भाई उमरावगिरि गुसाईं तथा १५००० हजार सैनिकों सहित फांसी की ओर कूच किया[११]। उन्होंने उपरोक्त दोनों किले हस्तगत करने के लिए मोर्चे स्थापित किये । निकटवर्ती जागीरदारों ने भी मराठों को खंडणी भेजनी बन्द करदी[१२], और फांसी के आस पास गूजरों ने भी गुसाइंयों का साथ दिया । गूजर तो इतने उदण्ड हो उठे थे कि उन्होंने समथर के समीप मोठ के कुछ देहात ही लूट डाले[१३]। फांसी की तरह काल्पी और ग्वालियर में भी आक्रमणकारियों का खतरा बना हुआ था किन्तु गुसाइं विशेष रूप से फांसी पर ही दांत गड़ाये ब हुए बैठे थे, क्योंकि यहां उनका पूर्वाधिकार रह चुका था । गुसाइयों की सेना में १५००० सैनिक थे जबकि रघुनाथहरि के पास केवल २५०० घुड़सवार तथा ३००० पैदल सैनिक ही थे[१४]। पर इस सेना से उसे न केवल फांसी बल्कि आस पास के क्षेत्र की भी रक्षा करनी थी । इसलिए उसने सहायता के लिए मराठा सरदारों के पास सन्देश भेजे और मध्यभारत के स्थानीय जमींदारों से भी सहायता की याचना की । फलस्वरूप उज्जैन के निकट से होल्कर का एक कमाविसदार त्र्यंबकराव आपाजी २००० सैनिक और गोला बारूद इकट्ठी कर नवम्बर १७७४ में फांसी की ओर चल पड़ा और बुरहानपुर से हरी पंडित ने एक बड़ी सेना सहित फांसी की ओर कूच कर दिया[१५]। इस समय तक तुकोजी होल्कर इन्दौर पहुंच चुका था । उसने त्र्यंबकराव के कहने पर महादाजी सिंधिया से भेंट की । बापू होल्कर और महादाजी के सम्बन्धी बहिरजी तकपीर ने भी ५००० हजार घुड़सवारों तथा १०००० पिण्डारियों के साथ प्रस्थान किया[१६]। फांसी के आस पास के प्रदेश में

---

११ - गोरे० पृ० २५८, पे० द० २६ नं० २७४, २७६, सेजवलकर पृ० ४६, फा० सी० कन्स० २८ नवम्बर - २७ दिसम्बर, १७७५ पृ० ८-६, १६ फरवरी, १७७६ नं० ४, २ मई, १७७६ नं० ३ ।

१२ - फा० सी० कन्स० ८ जनवरी, १७७६ नं० २४ ।

१३ - पे० द० २६ नं० २८२ ।

१४ - फा० सी० कन्स० २८ नवम्बर - २७ दिसम्बर, १७७५ पृ० ८-६, सेजवलकर पृ० ५०, पे० द० २६ नं० २८२ ।

१५ - सेजवलकर पृ० ५०, फा० सी० कन्स० २८ नवम्बर - १७ दिसम्बर, १७७५ पृ० ८-६, २ मई १७७६ नं० ३ ।

१६ - सेजवलकर पृ० ५१ ।

गुसाइं फैल चुके थे, किन्तु सम्भवत: वे झांसी के किले और नगर का घेरा प्रभावशाली ढंग से नहीं डाल सके थे । इसलिए यह रघुनाथहरि के ही अधिकार में बने रहे ।[१७] इसी बीच दिनकरराव अन्ना[१८] ने काल्पी के बालाजी गोविन्द और रघुनाथहरि की सम्मिलित सेना की सहायता से गुसाइयों को परास्त कर गुरसराय के इलाके से खदेड़ दिया । बालाजी गोविन्द ने इस पर प्रसन्न होकर गुरसराय का प्रबन्ध दिनकरराव अन्ना को सौंप दिया[१९] ।

होल्कर और सिंधिया की सेनायें भी झांसी के निकट आ पहुंची थीं । गुरसराय से लौटकर रघुनाथहरि ने गुसाइयों को परास्त करने के निश्चय के साथ झांसी से प्रस्थान किया । इस समय तक अवध के नवाब शुजाउद्दौला और गुसाइयों के सम्बन्ध कुछ खराब हो चले थे । जब नवाब ने देखा कि गुसाईं अवध की परवाह न कर अपना राज्य बनाने में लगे हुए हैं, तब उसने क्रोधित होकर अनूपगिरि के भाई उमरावगिरि को कैद कर लिया ।[२०] इसी बीच नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु २६ जनवरी, १७७५ को हो गई । उसके उत्तराधिकारी आसफउद्दौला ने गुसाइयों को निकालना शुरु कर दिया[२१] । मराठों ने इस मौके से लाभ उठाकर गुसाइयों पर आक्रमण कर दिया । काल्पी के निकट १७७५ में गुसाइयों तथा मराठों में घमासान युद्ध हुआ । इस युद्ध में अनूपगिरि परास्त हुआ और अवध की ओर जान बचाकर भाग निकला[२२] ।

---

१७ - वही पृ० ५१ ।

१८ - दिनकरराव अन्ना सागर के मृत सूबेदार गोविन्दपंत बुन्देले का भतीजा और बालाजी का चचेरा भाई था ।

१९ - गौरे० पृ० २५८, पारसनीस० पृ० १७८ ।

२० - गौरे० पृ० २५८-५९ ।

२१ - सरकार ३, पृ० २२१ ।

२२ - सेजवलकर पृ० ५३, गौरे० पृ० २५९ ।

३ - प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध और रघुनाथहरि

इधर इसी बीच दक्षिण में प्रथम अंग्रेज मराठा युद्ध के बादल मंडराने लगे थे। पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु १८ नवम्बर, १७७२ में हो चुकी थी। माधवराव के नि:संतान होने के कारण उसका छोटा १७ वर्षीय भाई नारायणराव पेशवा बना। पर रघुनाथराव के षड्यन्त्र से ३० अगस्त १७७३ को उसकी हत्या करदी गयी। फिर रघुनाथराव पेशवा हुआ। पर नाना फड़नवीस के नेतृत्व में बारह भाइयों का गुट उसका विरोधी हो उठा और जब नारायणराव की विधवा गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया तो बारह भाइयों ने उसे पेशवा घोषित कर दिया। रघुनाथराव को खदेड़ दिया गया और उसने बम्बई की अंग्रेजी सरकार से सहायता की याचना की। बम्बई की सरकार ने अपनी सहायता के बदले उस पर सूरत की संधि (६ मार्च, १७७५) थोप दी और प्रथम अंग्रेज मराठा युद्ध प्रारम्भ हो गया। वैसे पूना और अंग्रेजों के बीच पुरन्दर की संधि (१ मार्च, १७७६) द्वारा शांति स्थापित करने की चेष्टा की गयी, पर वह व्यर्थ सिद्ध हुयी।[२३] कुछ समय पश्चात् युद्ध फिर चालू हो गया। अब गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स और उसकी कौन्सिल ने मराठों से युद्ध की ही नीति अपनाने का निर्णय किया और बम्बई सरकार की सहायता के लिए कर्नल लेज़्ली को फरवरी १७७८ में एक सेना सहित ' सबसे सुविधा पूर्ण मार्ग ' द्वारा बम्बई पहुंचने के आदेश दिये गये। लेज़्ली ने बुन्देलखण्ड से होकर बम्बई जाने का निश्चय किया।[२४]

लेज़्ली ने बुन्देलखण्ड से होकर बरार जाने का जो मार्ग चुना था, वह काल्पी, छतरपुर, श्रीनगर, सागर, भेलसा, होशंगाबाद से होकर था।[२५] बुन्देलखण्ड के जिन प्रदेशों से होकर गुजरना था, वे बालाजी गोविन्द और

---

२३ - सूरत और पुरन्दर की संधि की अधिक जानकारी के लिए एस० पी० वर्मा कृत ' ए स्टडी इन मराठा डिप्लोमैसी ' पृ० ७८-८१ और पृ० १३४-३६ देखें।

२४ - वही पृ० १७६ ।

२५ - प्रोसीडिंग्स फोर्ट विलियम, २ नवम्बर, १७७८ में उद्धृत लेज़्ली का २५ जुलाई १७७८ का पत्र ।

गंगाधरपंत तथा छत्रसाल के उत्तराधिकारियों, पन्ना के अनिरुद्धसिंह, बांदा चरखारी के गुमानसिंह, खुमानसिंह व जैतपुर के गजसिंह के राज्य पड़ते थे। सागर के सूबेदार बालाजी गोविन्द ने इन सभी को लेज़्ली के विरुद्ध संगठित कर लिया और वह स्वयं इनका निर्देशन करने छतरपुर आगया।[२६] इस समय पन्ना के उत्तराधिकार को लेकर हिन्दूपत के बड़े पुत्र सरनेतसिंह और पन्ना के वास्तविक राजा उसके छोटे भाई अनिरुद्धसिंह में विरोध चल रहा था। इसलिए सरनेतसिंह अपने समर्थक खेमराज चौबे की सलाह से जुलाई, १७७८ में लेज़्ली से आकर मिल गया।[२७] लगभग इसी समय लेज़्ली के एक २५ जुलाई के पत्र के अनुसार झांसी के शासक का भाई उससे आकर मिला और उसने कहा कि उसका बालाजी गोविन्द और अपने भाई रघुनाथहरि पर इतना प्रभाव है कि वह उन पर लेज़्ली को सुरक्षित रूप से निकल जाने के लिए दबाव डाल सकता है। पर लेज़्ली ने उस पर विश्वास नहीं किया।[२८] झांसी के सूबेदार रघुनाथहरि का यह भाई बहुत करके उसका उत्तराधिकारी शिवरावभाऊ ही रहा होगा और सम्भवत: रघुनाथहरि ने ही उसे लेज़्ली की गतिविधि समझने को भेजा होगा। क्योंकि उसे डर था कि कहीं वह झांसी का मार्ग न पकड़ ले। उसका यह भय निराधार भी नहीं था क्योंकि बालाजी गोविन्द और उसके अन्य सहयोगी बुन्देला राजाओं ने लेज़्ली को झांसीके मार्ग से बम्बई जाने का सुझाव देकर, उससे संघर्ष बचाने के प्रयत्न किये थे। पर लेज़्ली हठ पकड़ गया। वह बुन्देलखण्ड में उलझ गया और काल्पी से छतरपुर, राजगढ़[२६] पहुंचते पहुंचते उसे मराठों और बुन्देलों के संयुक्त सैनिक

---

२६ - एस० पी० वर्मा कृत `ए स्टडी इन मराठा डिप्लोमैसी` पृ० १८३ ।

२७ - पन्ना गज़े० पृ० १२ ।

२८ - प्रोसीडिंग्स फोर्ट विलियम, २ नवम्बर, १७७८ में लेज़्ली का यह पत्र उद्धृत किया गया है।

२६ - राजगढ़ पन्ना से १४ मील पश्चिम ।

दलों से मोर्चे लेते हुए लगभग ५ माह गुजर गये और अन्त में उसकी ४ अक्टूबर को मृत्यु हो गई।[३०] अब कर्नल गोडार्ड को लेज़ली की सेना की कमान संभालकर शीघ्र से शीघ्र बम्बई पहुंचने के आदेश दिये गये। कर्नल गोडार्ड ने बुन्देलखण्ड आकर लेज़ली की सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया और बुन्देलखण्ड के राजे रजवाड़ों के झगड़ों में न पड़कर वह तेजी से अक्टूबर में ही दक्षिण की ओर चल पड़ा। गोडार्ड के बुन्देलखण्ड से प्रस्थान करते ही बुन्देलखण्ड के मराठों ने कालपी लेने का प्रयास किया। उन्होंने सागर और झांसी की सेना लेकर कालपी पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया।[३१]

अंग्रेजों और महादाजी सिंधिया के बीच हुई सालबई की संधि (१७ मई, १७८२) ने आंग्ल मराठा युद्ध समाप्त सा कर दिया। नाना फडनवीस ने भी अन्त में २६ फरवरी, १७८३ को इसकी पुष्टि करदी। सालबई की संधि के बाद रघुनाथराव के रहने की व्यवस्था झांसी में करने का किया गया। उसने इसे स्वीकार कर अपना शेष जीवन झांसी में व्यतीत करने का निश्चय किया। इसलिए उसे झांसी के किले व ताल्लुके को छोड़कर साढ़े बारह लाख आय के प्रदेश देने की योजना बनायी गयी और १०, ८५ लाख की और भी जागीर देने का वचन दिया गया।[३२] सिंधिया की ओर से हरी बाबाजी केटकर और होल्कर की ओर से जीवनराम पागनीज़ आवस्कर ने रघुनाथराव के साथ २४ फरवरी को ७००० सेना सहित झांसी की ओर प्रस्थान किया।[३३] मई १७७६ में नावों का बेड़ा प्राप्त कर नर्मदा पार करने के लिए उसने ~~किनारे~~ किनारे पर पड़ाव डाला। इस समय हरि - बाबाजी ज्वर से पीड़ित अपने डेरे में थे। रघुनाथराव ने मौका पाकर हरी बाबा जी की हत्या करदी और सूरत और भड़ौंच की ओर भाग निकला।[३४]

---

३० - फा० सी० कन्स० १६ अक्टूबर १७७८ नं० २ ।

३१ - गोरे० पृ० २६५ ।

३२ - सी० पी० सी० ५ नं० १५१५, १५५०, १४४४, सर देसाई ~~भाग~~ ३ पृ० ८५ ।

३३ - सी० पी० सी० ५ नं० १४४४, १५५०, ~~ऐतिहासिक~~ पारसनीस कृत इतिहास संग्रह भाग २, ऐतिहासिक टिप्पणी भाग ४ पृ० १५-१६ , होल्कराची कैफियत पृ० १३, सर देसाई ३ पृ० ८५ ।

३४ - सी० पी० सी० ५ नं० १५८८, १५६५, सर देसाई ३ पृ० ८७ ।

~~अंग्रेजों~~

४ - अंग्रेजों और रघुनाथहरि के सम्बन्धों का प्रारम्भ

लेज़ली और गोडार्ड के बुन्देलखण्ड के अभियान के कारण बहुत से स्थानीय राजे रजवाड़े अंग्रेजों के सम्पर्क में आये थे । रघुनाथहरि के भी अंग्रेजों से सम्बन्धों का सूत्रपात इसी समय से हुआ । उसके एक भाई के लेज़ली से मिलने का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । आंग्ल मराठा युद्ध में अंग्रेजों की सफलताओं से और विशेषकर महादाजी के मुख्य गढ़ ग्वालियर के किले के ४ अगस्त १७८० को पतन से अंग्रेजी शक्ति की धाक बुन्देलखण्ड में जम गयी थी । रघुनाथहरि भी इससे प्रभावित ~~और~~ हुआ होगा और अंग्रेजों से अपने झांसी के राज्य को बचाने के लिए चिन्तित हो उठा होगा । इसलिए उसने बालाजी गोविन्द के वकील के साथ अपना वकील भेजकर सम्भवत: संधि करने की इच्छा प्रकट की थी ।[35] कम्पनी की ओर से कालपी के गंगाधर गोविन्द और झांसी के रघुनाथहरि के पास संधि स्थापित करने के विषय में पत्र भी आये और मेजर कामक को सितम्बर, १७८० में उक्त दोनों सूबेदारों से मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के निर्देश भी भेजे गये ।[36] ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजो और रघुनाथहरि के बीच पत्र व्यवहार बाद को भी चालू रहा क्योंकि जुलाई, १७८१ में रघुनाथहरि के २ पत्र अंग्रेजों को और मिलने, तथा उसके मुंशी लालचन्द को कामक के पास भेजे जाने के उल्लेख मिलते हैं ।[37] इस प्रकार १७८१ के अन्त तक रघुनाथहरि और अंग्रेजों के बीच काफी घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो चुके थे ।

किन्तु फिर भी प्रथम मराठा युद्ध के समय वह सिंधिया और अंग्रेजों के बीच युद्ध में एकदम निष्पक्ष नहीं रह सका । उसने एक ओर तो अंग्रेजो को अपने पक्ष में कर ही लिया था किन्तु दूसरी ओर वह सिंधिया और अंग्रेजों के

---

३५ - सी० पी० सी० ५ नं० १९९८ ।

३६ - वही नं० २००२ ।

३७ - सी० पी० सी० ६ नं० १९६ कामक को ~~जब~~ जब पोफम की सहायता के लिए बुन्देलखण्ड भेजा गया था तब वह भेलसा के आस पास था । सर देसाई ३ पृ० १०६-१० ।

मध्य हुए युद्ध में वह एकदम से निष्पक्ष नहीं रह सका । अंग्रेजों ने सिंधिया के विरुद्ध गोहद के राणा को अपने पक्ष में कर लिया था । जब सिंधिया ने उज्जैन में पड़ाव डाला तब हेस्टिंग्स ने पोफम को राणा की सहायता करने के लिए भेजा और दोनों सेनाओं ने ४ अगस्त १७८० को ग्वालियर पर अचानक आक्रमण कर महादाजी के बढ़ने के पूर्व ही किले पर अधिकार कर लिया । महादाजी के विश्वसनीय सरदार अम्बाजी इंगले और खण्डेराव हरी ने बड़ी बहादुरी से किले की रक्षा की, किन्तु किलेदार रघुनाथ रामचन्द्र मारा गया और अम्बाजी को हथियार डालने पड़े । अम्बाजी ने झांसी के निकट पड़ाव डाला । खण्डेरावहरी ग्वालियर छोड़कर झांसी, कौंच, कालपी को लूटता हुआ सम्भवत: सिंधिया की ओर बढ़ा[३८] । सिंधिया ने ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया, किन्तु सिप्री कुलारस के निकट २४ मार्च को अंग्रेजों के द्वारा बुरी तरह से पराजित हुआ । अब मध्यभारत में मराठा सत्ता लड़खड़ा उठी और उसका अन्त निकट आता सा प्रतीत हुआ ।

अंग्रेजों से परास्त होने पर सिंधिया ने बुन्देलखण्ड की राजे रजवाड़ों से सहायता की याचना की । इस बीच जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि रघुनाथ हरी के अंग्रेजों से सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे । अब सिंधिया ने रघुनाथ हरी, कालपी के गंगाधर गोविन्द और दतिया के राजा शत्रुजीत के पास सहायता के लिए सन्देश भेजे । दतिया के राजा ने सिंधिया की सहायता के लिए प्रस्थान भी किया । किन्तु रघुनाथ हरी ने प्रारम्भ में कोई सहायता नहीं भेजी । सम्भवत: अंग्रेजों से हुये किसी समझौते के कारण ही वह निष्पक्ष रहना चाहता था[३९] । इसलिए उसने अप्रैल १७८१ में अपने वकील को सिंधिया के पास भेजकर कहलाया कि उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है और सेना तैयार न होने के कारण वह सहायता करने में असमर्थ है[४०] ।

---

३८ - सी० पी० सी० ५, नं० १६०८, सर देसाई ३ पृ० १०६, इतिहास संग्रह पृ० १३६ ।

३९ - फा० सी० कन्स० ७ अप्रैल, १७८१ नं० ६ ।

४० - महादाजी० नं० १५३ ।

किन्तु जब ग्वालियर के निकटवर्ती क्षेत्रों में अंग्रेजों का जमाव दिन पर दिन बढ़ने लगा, तब अंग्रेजों से हुए किसी गुप्त समझौते के बावजूद भी सम्भवत: उसका विश्वास डगमगा सा उठा था और उसे लगा कि सिंधिया की पराजय के बाद झांसी और झांसी के निकटवर्ती प्रदेश भी अंग्रेजों की विजय लिप्सा के शिकार बन सकते हैं। इसलिए तब उसने गंगाधर गोविन्द के साथ ५, ७ हजार सैनिकों सहित अप्रैल १७८१ में ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया था[४१]। दतिया के राजा ने भी २००० घुड़सवारों सहित ग्वालियर की ओर कूच किया। इस सेना के ७, ८ कोस बढ़ने की भी खबर मिली[४२]। पर सम्भवत: बात यहीं तक रह गई। रघुनाथ हरी जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि इस बीच अंग्रेजों से अपने सम्पर्क बढ़ा रहा था और महादाजी की सहायता के लिए अपनी असमर्थता भी प्रकट कर चुका था। लगता यह है कि वह सिंधिया को भी एकदम नाराज नहीं करना चाहता था, इसलिए ही उसने यह उसकी सहायता को झांसी से बढ़ने का ढोंग मात्र किया होगा।

५ - चैतसिंह झांसी में (दिसम्बर, १७८१)

मराठों के साथ युद्ध करने में अंग्रेजों की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो चुकी थी। इसलिए अब हेस्टिंग्स ने अपनी आर्थिक क्षुधा का शिकार बनारस के राजा चैतसिंह को बनाया। उसने राजा से १७८० में अतिरिक्त बढ़ाये हुए राज्य कर के साथ ही २००० सैनिकों की मांग की। चैतसिंह के विरोध करने पर यह संख्या १००० करदी गई। किन्तु अब हेस्टिंग्स ने ५० लाख जुर्माना भी कर दिया और एक सेना सहित बनारस की ओर चल पड़ा। चैतसिंह ने बक्सर में उससे क्षमा-प्रार्थना की किन्तु हेस्टिंग्स ने अनसुनी करके राजा को कैद कर लिया[४३]। इससे बनारस की जनता भड़क उठी। उसने अंग्रेज सैनिकों को मारना शुरु कर दिया।

---

४१ - महादाजी० नं० १५६ ।

४२ - सी० पी० सी० ६, नं० १६६ ।

४३ - पूना अखबारात भाग २, नं० १११ ।

स्वयं हेस्टिंग्स अपनी सुरक्षा के लिए चुनार चला गया । चेतसिंह मुक्त हो गया । इसके बाद ही चुनार के पास हुई एक मुठभेड़ में चेतसिंह परास्त हुआ और बुन्देलखण्ड से ग्वालियर की ओर भाग खड़ा हुआ । सिंधिया उस समय झांसी के निकट ही पड़ाव डाले था । चेतसिंह ५००० सैनिकों सहित झांसी के निकट आ पहुंचा । उसने दिसम्बर, १७८१ के अन्त में ~~सिंधिया से~~ झांसी के निकट सिंधिया से भेंट की और अंग्रेजों से बदला लेने के लिए सिंधिया से सहायता की याचना की ।[४४]

६ - निवालकर और सिंधिया के विरोध का सूत्रपात

सिंधिया ने चेतसिंह को सहायता देने का आश्वासन दिया और चेतसिंह के परिवार को कुछ समय तक झांसी में भी रक्खा । उसने चेतसिंह को रहने के लिये बरुआसागर की जागीर भी दी । किन्तु बरुआसागर का किला झांसी के सूबेदार रघुनाथ हरी के अधिकार में आता था इसलिए रघुनाथ हरी ने सिंधिया के आदेश पालन करने से इन्कार कर दिया और चेतसिंह बरुआसागर नहीं पा सका । चेतसिंह के परिवार के सदस्य कुछ दिनों तक झांसी में भी रहे जहां उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।[४५] यह बात सिंधिया को खटक गयी और सम्भवत: तभी उसने रघुनाथ हरी को बरुआसागर के किले में बंदी बनाने की वह योजना बनाई होगी जिसका कि उल्लेख फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन, १४ अप्रैल, १७८१ नं० ६ में जे० जे० मार्गन ने हेस्टिंग्स को लिखे पत्र में किया है । किन्तु सिंधिया ऐसा नहीं कर सका । कारण यह रहा होगा कि रघुनाथ हरी की नियुक्ति सीधे पूना से और पेशवा द्वारा होने के कारण महादाजी को उसे हटाने का अधिकार नहीं था । इसलिए महादाजी ने रघुनाथ हरी को झांसी की सूबेदारी से हटवाने के लिए पूना में कार्यवाही शुरु करदी । जिसके फलस्वरूप बाबूराव भास्कर को झांसी के सूबे की सनद प्रदान कर उसे झांसी का शासन भार संभालने के आदेश दिये गये । बाबूराव भास्कर इस समय हमीरपुर में पेशवा की ओर से नियुक्त था ।

---

४४ - वही भाग २, नं० १५३, १५५, १५७, १६० ।

४५ - फा० सी० कन्स० २१ अप्रैल, १७८१ नं० १०, २ जनवरी, १७८२ नं० १६, ५ नवम्बर, १७८१ नं० २, १६ नवम्बर, १७८१ नं० २, २६ अक्टूबर, १७८१, नं० ७ ।

वह २००० सैनिकों सहित झांसी पर अधिकार करने के लिए धसान के इस पार आ पहुंचा। इस बीच रघुनाथ हरी को बाबूराव की नियुक्ति के समाचार मिल चुके थे। अस्तु, उसने एक ओर तो पूना में अपनी नियुक्ति बनाये रखने की कार्यवाही शुरू करदी और दूसरी ओर बाबूराव भास्कर को झांसी में प्रवेश करने के पूर्व ही रोक देने के लिए तत्पर हो गया। बाबूराव भास्कर ~~रघुना~~ रघुनाथ हरी की सेना द्वारा परास्त हुआ और समथर की ओर भाग खड़ा हुआ।[४६] इस बीच रघुनाथ हरी की पूना की कार्यवाहियां सफल हुई और उसे पुन: झांसी की सूबेदारी पर बहाल कर दिया गया।[४७] सम्भवत: ग्वालियर के सिंधिया और झांसी के निवालकर वंश के विरोध का सूत्रपात यहीं से हुआ और सन् १८५७ ई० में सिंधिया द्वारा लक्ष्मीबाई का विरोध, लक्ष्मीबाई का ग्वालियर के किले पर अधिकार करना तथा विद्रोह के पश्चात् झांसी सिंधिया को दिये जाने की पृष्ठ-भूमि यहीं परम्परागत विरोध था।

७ - अली बहादुर को बुन्देलखण्ड भेजे जाने की पृष्ठ-भूमि

सिंधिया का ध्यान इसके तुरन्त ही पश्चात् जयपुर की ओर बट गया था। उसने १७८६ के प्रारम्भ में जयपुर में प्रवेश किया और जयपुर के राजा से चौथ की मांग की। किन्तु राजा ने असमर्थता प्रकट करते हुए चौथ देने से इन्कार कर दिया। तब उसने जयपुर के आसपास के गांव को घेर कर जबरदस्ती चौथ वसूल की और जून १७८६ में मुगल बादशाह के साथ डीग लौट आया। यहां से मुगल सम्राट् ने दिल्ली की ओर और सिंधिया ने मथुरा की ओर प्रस्थान किया। सिंधिया के जयपुर से मुड़ते ही जयपुर के राजा ने जोधपुर के राजा विजयसिंह से सहायता की याचना की। जोधपुर के राजा ने उसे सहायता देने का वचन दिया। अब सिंधिया ने खण्डेराव हरी को बुन्देलखण्ड और

---

४६ - सतारा हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाइटी भाग २, नं० २१५ ।

४७ - महादाजी० नं० २६२ ।

अम्बाजी इंगले को सिंध सतलज प्रदेशों से वापस बुला लिया । खण्डेराव हरी जून, १७८७ के मध्य में सिंधिया के साथ आकर सम्मिलित हुआ[४८]। इसके साथ ही सम्भवत: उसने फांसी के सूबेदार रघुनाथ हरी से भी सहायता की मांग की थी । इसलिए वह भी ३००० पैदल सैनिकों के साथ सिंधिया से आ मिला था[४९]।

सिंधिया के लालसोट के अभियान (जुलाई, १७८७) में व्यस्त हो जाने से बुन्देलखण्ड में कर वसूली का कार्य प्राय: ठप्प सा हो गया । अब सिंधिया ने पूना से सहायता की मांग की । पूना से सिंधिया की सहायता के लिए एक विशाल सेना भेजी गई, जिसका सेना नायक अलीबहादुर[५०] था । अलीबहादुर के साथ तुकोजी होल्कर को भी भेजा गया था । इस सेना को ~~भेजन~~ भेजने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे सिंधिया पर नजर रखें और उस पर अंकुश बने रहें । अलीबहादुर ने सेना सहित ६ नवम्बर, १७८८ को मथुरा में प्रवेश किया । सिंधिया इस समय मथुरा में ही पड़ाव डाले थे । तुकोजी पीछे रह गया था । ६ माह पश्चात् अप्रैल, १७८६ में वह भी मथुरा आ पहुंचा । इस प्रकार अब मथुरा में मराठा सेना का अच्छा जमाव हो गया[५१]।

नाना फड्नवीस ने सिंधिया से अलीबहादुर की सेना का खर्च देने को लिखा था । किन्तु लालसोट के अभियान के पश्चात् सिंधिया की आर्थिक स्थिति नाज़ुक हो उठी थी । इसलिए उसने अलीबहादुर की सेना का खर्च देने में असमर्थता प्रकट की । इससे सिंधिया और अलीबहादुर मे मनमुटाव उत्पन्न हो गया, जो दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया । इस मन मुटाव का एक दूसरा कारण

---

४८ - सर देसाई ३ पृ० १५१-५३ ।

४६ - सी० पी० सी० ७, नं० १५५६। लालसोट के युद्ध और विशेष विवरण के लिए देखें - सर देसाई ३ पृ० १५४-५५, सरकार ३ पृ० २५४-६८ ।

५० - स्मरण रहे कि अलीबहादुर मस्तानी और बाजीराव प्रथम के पुत्र शमशेरबहादुर का पुत्र था ।

५१ - सर देसाई ३ पृ० २०५ ।

अलीबहादुर द्वारा अनूपगिरि या हिम्मत बहादुर को पेशवाई झण्डे के नीचे शरण देना भी था, जिससे सिंधिया कुपित हो उठा था। संक्षेप में यह घटना इस प्रकार थी कि जून १७८६ में महादजी सिंधिया अस्वस्थ्य हो गया और उसकी हालत दिन पर दिन गिरती ही चली गई। सिंधिया की लम्बी बीमारी का एक कारण यह भी बताया गया कि हिम्मतबहादुर गुसाईं ने सिंधिया के ऊपर जादू टोना कर दिया था। इस पर विश्वास करके सिंधिया ने हिम्मतबहादुर को बन्दी बनाने के आदेश दे दिये। तब उसने भागकर अलीबहादुर के पास पेशवाई झण्डे के नीचे शरण ली। सिंधिया ने अलीबहादुर से हिम्मतबहादुर को वापस मांगा किन्तु अलीबहादुर ने उसे देने से इन्कार कर दिया। पूना से भी नाना फड़नवीस ने सितम्बर १७८६ में आदेश भेजे कि हिम्मतबहादुर को झांसी के किले में रक्खा जाय तथा गुसाईं का व्यवहार देखकर बाद में निर्णय लिया जायगा।[५२] इसलिए अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर को अपने साथ रखा। बाद में हिम्मतबहादुर ने झांसी के किले में रखने की बात पर विरोध प्रकट करते हुए कहा कि उसे अलीबहादुर अपने साथ ही रखे या पूना भेज दे और इसीलिए सम्भवत: बाद को उसे झांसी के किले में नहीं रखा गया। इस प्रकार एक ओर अलीबहादुर और सिंधिया में विरोध बढ़ता गया और दूसरी ओर अली-बहादुर और हिम्मतबहादुर के आपसी सम्बन्ध अधिक गहरे होते गए।[५३] जब महादाजी और अलीबहादुर का विरोध समाप्त करने के लिए अलीबहादुर को बुन्देलखंड भेजा गया तो हिम्मतबहादुर भी उसके साथ बुन्देलखण्ड चला आया। अलीबहादुर भिण्ड मदावर होता हुआ १७६० के अन्त में दतिया आ पहुंचा।[५४] अब तक बुन्देलखंड में सिंधिया का ही खंडणी वसूल करने का एकाधिकार चला आ रहा था। अत: यह स्वाभाविक ही था कि सिंधिया को अलीबहादुर का बुन्देलखण्ड में मराठा प्रभाव जमाने के लिए भेजा जाना अच्छा न लगा हो, क्योंकि इसका अर्थ था कि अलीबहादुर ही अब बुन्देलखण्ड के राजे रजवाड़ों से खंडणी वसूल करता और इस

---

५२ - सरकार ४ पृ० १२, सतारा हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाइटी भाग १ नं०२७०, २७१, २७७।

५३ - सरकार ४ पृ० १३, सर देसाई ३ पृ० २०५-८।

५४ - हिंगणे० भाग २ नं० ४६। हिंगणे

प्रकार सिंधिया उसके लाभ से भी वंचित हो जाता। इसलिए जब सिंधिया ने बुन्देलखण्ड के राजाओं को इस आशय के पत्र लिखे कि वे अलीबहादुर को मसक खंडणी न दें।[५५] इसमें सम्भवत: सिंधिया का उद्देश्य यह था कि असफल होने पर अलीबहादुर बुन्देलखण्ड से चला जायगा और वहां सिंधिया का प्रभाव यथावत स्थापित हो जायगा।

८ - अलीबहादुर बुन्देलखण्ड में- रघुनाथहरि का सहयोग

अलीबहादुर हिम्मतबहादुर के साथ दतिया और झांसी की सीमाओं पर आ पहुंचा। रघुनाथहरि का सिंधिया से पहले से ही मन-मुटाव चला आरहा था और अभी वह बरुआसागर चेतसिंह को दिये जाने, स्वयं को वहां के किले में बन्दी बनाये जाने और अन्त में झांसी की सूबेदारी से हटा दिये जाने के सिंधिया के प्रयत्नों को भूला नहीं था। अलीबहादुर का सिंधिया से विरोध होने के कारण रघुनाथहरि ने स्वाभाविक रूप से अलीबहादुर से सहयोग करने का निश्चय किया। इसमें सम्भवत: उसके दो लक्ष्य थे। एक तो अलीबहादुर का विरोध करने से हानि ही होती, क्योंकि अलीबहादुर उसके प्रदेशों को यों ही नहीं छोड़ देता और दूसरा यह कि अगर अलीबहादुर उसके सहयोग से बुन्देलखण्ड में जम जाता तो सिंधिया के विरुद्ध उसे एक सहायक मिल जाता। साथ ही सिंधिया और अलीबहादुर में परस्पर विरोध होने के कारण वे दोनों ही रघुनाथहरि पर कोई बेजा दवाब इस डर या आशंका से नहीं डालते कि कहीं वह उसके विपक्षी के साथ न हो जाय। इसलिए दतिया और ओरछा से खंडणी वसूल करने में रघुनाथहरि ने अपने भाई शिवरावहरि को २००० सैनिकों के साथ नवाबअली बहादुर के साथ कर दिया। अलीबहादुर ने शिवरावहरि की सहायता से दतिया तथा ओरछे से २ लाख रुपये खण्डणी के रूप में वसूल किये। इस प्रकार इससे दतिया तथा ओरछा के राजा

---

५५ - हिंगणे भाग २ नं० ४६।

५६ - सतारा हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाइटी भाग ३ नं० २८१,३००,३०७,३०८, हिंगणे भाग ३ नं० ५०।

५७ - हिंगणे भाग २, नं० ४०, महेश्वर दरबारची वातमी पत्रे २, नं० २११।

जो सदैव से उपद्रव करते आ रहे थे, दब गये। अलीबहादुर की बुन्देलखण्ड में उपस्थिति से और तुरन्त ही पश्चात् उन्होंने अर्जुनसिंह के विरुद्ध उसकी सफलता से दतिया और ओरछा के बुन्देले राजा आतंकित हो उठे जिससे रघुनाथहरि के शासनकाल के अन्तिम वर्ष तुलनात्मक रूप से शांति पूर्वक गुजरे।

६ - बुन्देलखण्ड की तत्कालीन स्थिति और अलीबहादुर की सफलताओं का संक्षिप्त उल्लेख -

बांदा में इस समय बख्तसिंह का राज्य था। बखतसिंह १७७८ में गुमानसिंह के मरने के बाद गद्दी पर बैठा था। इस समय बखतसिंह की आयु बहुत कम थी, इसलिए उसकी ओर से राज्य कार्य उनके दीवान नौने अर्जुनसिंह देखते थे। अर्जुनसिंह पहले चरखारी के राजा गुमानसिंह की सेवा में थे, किन्तु उससे उसकी अनबन हो गई इसलिए वह बांदा के राजा गुमानसिंह की सेवा में चला आया था, जो कि गुमानसिंह का भाई था। जब खुमानसिंह और गुमानसिंह के बीच में युद्ध हुआ तब अर्जुनसिंह ने खुमानसिंह को परास्त किया था। खुमानसिंह इस युद्ध में मारा गया था। 88

जब अलीबहादुर ने हिम्मत बहादुर के साथ नौने अर्जुनसिंह पर आक्रमण किया, उस समय अर्जुनसिंह बखतसिंह के साथ अजयगढ़ में था। अर्जुनसिंह और अलीबहादुर के बीच यह युद्ध (१८।४।१७६२) अजयगढ़ और बनगांव के बीच हुआ। इस युद्ध में अर्जुनसिंह मारा गया और बांदा पर नवाबअलीबहादुर का अधिकार हो गया। 89 सिंधिया इस समय राजपूताने में व्यस्त था, इसलिए रघुनाथहरि उसकी ओर से भी फिलहाल निश्चिन्त था। 90

१० मृत्यु और उपलब्धियां

रघुनाथहरि के शासन काल का अब अंत समीप था। वह १७६२ के मध्य में किसी पुराने रोग से भयंकर रूप से पीड़ित हो उठा। जब उसे

---

88 ५८ - गौरे० पृ० २७३ ।

89 ५६ - गौरे० पृ० २७३-७४, सतारा हिस्टौरिकल रिसर्च सौसाइटी भाग १, नं० ३४६ ।

90 ६० - सरकार ४, पृ० ५७ ।

यह रोग ठीक होते न दिखा तब उसने अपने भाई शिवरावभाऊ को झांसी का शासन सौंप दिया और स्वयं काशी चला गया। यहीं १७६५ के अन्तिम अंशतः में में उसने गंगा में समाधि ले ली।[91]

इस प्रकार रघुनाथहरि ने लगभग २५ वर्षों तक बड़ी योग्यता से झांसी पर शासन किया तथा पेशवा को प्रसन्न कर यहां का राज्य सदैव के लिए अपने वंशजों के लिए प्राप्त कर लिया। रघुनाथहरि ने झांसी उस समय प्राप्त की थी जब बुन्देलखण्ड में मराठों की स्थिति बड़ी नाजुक थी। चारों ओर विद्रोह हो रहे थे। रघुनाथहरि ने इन विद्रोहों का दमन कर व्यवस्था स्थापित की। इतना ही नहीं उसने अवध के नवाब का आक्रमण का सफलता पूर्वक सामना किया। इसके साथ रघुनाथहरि के अंग्रेजों से सम्बन्धों का श्री-गणेश भी इसी काल में होता है। सम्भवतः अंग्रेजों से सम्बन्ध उसने महादाजी सिंधिया से अप्रसन्न होकर ही स्थापित किये थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि पूना में इस समय पेशवा की शक्ति क्षीण होती जा रही थी जबकि अंग्रेजों का सितारा बुलन्दी पर था। भारत के अधिकांश राजे रजवाड़े जिनमें बुन्देला भी थे अंग्रेजों की ओर आशा भरी नज़रों से देख रहे थे। अस्तु निवालकर जैसे महादाजी मसे पेशवा और अंग्रेजों के बीच अपनी स्थिति सन्तुलित किये रहा। यह उसकी एक उपलब्धि ही थी।

---

९१ - पे० द० २२ नं० २४१, इतिहास संग्रह फरवरी १९१० अंक ७ पुस्तक २, पृ० ४२-४३, ताम्हानकर पृ० १४, लक्ष्मीबाई (पारसनीज़) पृ० १४। इतिहास संग्रह और रानी लक्ष्मीबाई (पारसनीज़) में दो अलग अलग सन् १७६४ और सन् १७६६ देते हैं। पे० द० २२ नं० २४१ का पत्र १८।१०।१७६५ का लिखा हुआ है और उसमें स्पष्ट लिखा है कि रघुनाथहरि की मृत्यु हो गई है। इसलिए झांसी की मामलत उसके भाई शिवरावहरि को दी जाती है। इससे यही ठीक लगता है कि रघुनाथहरि की मृत्यु सन् १७६५ के अन्तिम अंशतः में ही कभी हुई होगी।

रघुनाथहरि न केवल एक शासक और सेनापति ही था, बल्कि वह कलाप्रिय, प्रगतिशील, बुद्धिजीवी था । निवालकर वंश की कुलदेवी लक्ष्मी का मंदिर फांसी में उसी ने बनवाया था, जो आज भी मौजूद है । वह एक ज्ञानपिपासु व्यक्ति था, जो हर प्रकार के उपयोगी ज्ञान को प्राप्त करने को उद्दत रहता था । उसका किले में अपना निजी पुस्तकालय भी था । अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के बाद पाश्चात्य प्रगति और विशेषकर वैज्ञानिक प्रगति में उसकी रुचि बहुत बढ गई थी । इसका प्रमाण विलियम हण्टर का १७६६ में लिखा नीचे उद्दत विवरण है । विलियम हण्टर रघुनाथहरि की मृत्यु के २ वर्ष पहले फांसी आया था, जैसाकि इस विवरण की अन्तिम पंक्तियों से विदित होता है । अस्तु यह विवरण एकदम समकालीन होने के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण है । विलियम हण्टर लिखता है " फांसी पहुंचने पर हमें सूबेदार से बन्द गोभी, चुकन्दर सलाद और अन्य अपने योरोपियन बगीचे की उपजें भेंट में पाकर सुखद आश्चर्य हुआ । सन्ध्या को सूबेदार हमसे मिलने आया । वह लगभग ६० वर्ष की आयु का लगता था । वह कद में मफ़ोले कद से कुछ छोटा था । उसके चेहरे मोहरे से बुद्धिमत्ता प्रकट होती थी और उसके तौर तरीके प्रसन्न करनेवाले थे । उसे किसी शारीरिक निर्बलता के कारण उपचार के लिए अंग्रेजों के केन्द्र कानपुर जाना पड़ा था । यहीं उसे योरोपीय तौर तरीके और रिवाज़ भा गये । उसमें इतनी समझ थी कि वह अपने देशवासियों के ऊपर कलाओं तथा विज्ञानों में हमारी श्रेष्ठता को अनुभव कर सके । उसमें एक उदार अन्वेषण की भावना थी और वह - राष्ट्रीय दुराग्रहों से मुक्त था, जो कि हिन्दुस्तान के लोगों में बड़ी ही असामान्य बात थी । वह हमारी (योरोपियन) प्रगतियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़ा लालायित था । दूसरे दिन सवेरे हम उससे वापसी भेंट करने गये । उसने किले के ऊपरी कमरे में हमसे भेंट की । यह कमरा बजाय हिन्दुस्तानी, मुसलिम तरीके के योरोपियन ढंग पर कुर्सियों और मेजों से सजा था । उसने हमें कई अंग्रेजी पुस्तकें दिखाई जिनमें इनसाइक्लो-पीडिया ब्रिटेनिका का द्वितीय संस्करण भी था । उसकी सभी तस्वीरों की प्रतिलिपियां उसने अपने चित्रकारों से करवाई थीं । इन

जिल्दों में निहित ज्ञान को प्राप्त करने के लिए इतनी वृद्ध आयु में भी वह अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करने की योजना बना रहा था। उसे इसकी बड़ी उत्सुकता थी कि उसे इस शौक को पूरा करने के लिए कोई अध्यापक या कोई ग्रन्थ मिल जाय। इसलिए जब लेफ्टीनेन्ट एम० फारसन ने उसे गिल्क्राइस्ट की डिक्सनरी (शब्दकोश) भेंट की तो उसने बड़ी कृतज्ञता जताई। उसने कानपुर से प्राप्त किये एक हाथ के बाजे पर कई धुनें बजाकर हमारा मनोरंजन किया और एक बिजली की मशीन भी दिखाई, जो उसी की सेवा में एक व्यक्ति ने बनाई थी। यह सिलिन्डर एक सामान्य लैम्प शेड था। इससे वह वायल (पारदर्शी कपड़ा) को चार्ज करके काफी मज़ेदार झटके देता था। इससे देखने वालों को और जिन पर यह प्रयोग किये जाते थे, उनको कम आश्चर्य नहीं होता था। चूंकि मौसम बहुत शुष्क था इसलिए काफी सफल प्रयोग हुए। उसने जलन पैदा करने वाले द्रव्य पदार्थों की प्रकृति शीशी के उन भागों के बारे में जिनमें उन्हें इकट्ठा किया जाता था और गिलास में रखने या चढ़ाने आदि के बारे में बुद्धिमत्ता पूर्ण सवाल भी किये। जिससे पता चलता था कि इन प्रयोगों को वह केवल किसी भी नई वस्तु की ओर आकर्षक होने वाली बच्चों जैसी उत्सुकता से नहीं देखता, बल्कि उनके घटित होने के कारणों को समझने की भी इच्छा रखता है। मुझे यह और लिखने में खेद होता है कि यह व्यक्ति दो साल से किसी ऐसी बीमारी से पीड़ित था, जिसे वह असाध्य समझता था। इसलिए वह बनारस चला गया और वहीं स्वयं गंगा में डूब गया।92

---

92 ६२ - इतिहास संग्रह फरवरी १६१० अंक ७ पुस्तक २, पृ० ४२-४३।

इस विवरण के मूल अंग्रेजी रूप के लिए इस अध्याय का परिशिष्ट १ देखें।

Appendix - 1.

"On our arrival we were agreeably surprised to receive from the Subahdar, a present of cabbages, lettrice, celery, and other productions of an European Garden. In the evening the Subahdar paid us a ~~visit~~ visit: he appread to be about sixty years of age, rather below the middle stature; his countenance bespoke intelligence, and his manneres were pleasing. Having had occasion, on account of some bodily infirmity, to repair to the English Station of Cawnpur for medical assistance, he had contracted a relish for Europeans manners and customs. He had discernment enough to perceive our superiority in arts and sciences over his countrymen; and possessing a spirit of liberal inquiry, and an exemption from national prejudices, which is very uncommon among the natives of Hindustan, he was very desirous of gaining a knowledge of our improvements. Next morning when we returned his visit, he received us in an upper room of the castle, which instead of Hindustani Muslim, was furnished with chairs and tables in the European manner. He showed us several English books, among which was the second edition of Encyclopedia Britannica. Of this he had got all the plates nearly copied by artists of his own. To get at the stores of science which these volumes contain, he had, even at that advanced period of life, formed the project of studying the English language. He expressed great anxiety to procure a teacher, or any book that could facilitate his pursuit; and was highly gratified by Lieutenant M'Pherson's presenting him with a copy of Gilchrist's Dictionary. He entertained us with several tunes on a hand organ which he had got at Cawnpur; and exhibited an electrical machine, constructed by a man of his own service. The cylinder was a common table

shade; with this he charged a viol, and gave pretty smart shocks, to the no small astonishment of those who were the subjects of his experiments, and of the spectators. As the weather was very dry, the operations succeeded remarkably well. He even proposed sensible queries on the caustic fluid, and the parts of the phial on which the accumulation took place; as whether in the glass, or the coating? &c., which showed that he did not look on the experiments with an eye of mere childish curiosity, which is amused with novelty, but had a desire to investigate the cause of the phenomena. I am sorry to add, that this man being, about two years ago, seized with some complaint which he considered as incurable, repaired to Benares, and there drowned himself in the Ganges."

अंग्रेजी सत्ता का बुन्देलखण्ड में विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण

(क) 1804 के पश्चात बुन्देलखण्ड की स्थिति

अध्याय - ५

फांसी में दूसरा निवालकर सूबेदार-शिवरावभाऊ

(१७६५ - १८१५)

१ - तत्कालीन मराठा राज्य की स्थिति

रघुनाथहरि के कोई अपना औरस पुत्र नहीं था इसलिए उसकी मृत्यु (१७६५) के पश्चात् फांसी की सूबेदारी पर उसके भाई शिवराव-हरि की नियुक्ति पेशवा द्वारा की गई[१]। शिवरावभाऊ ने जिस समय फांसी की सूबेदारी प्राप्त की उस समय मराठा साम्राज्य की स्थिति डांवा-डोल सी थी। मराठा साम्राज्य के प्रमुख स्तम्भ महादाजी सिंधिया की मृत्यु १२ फरवरी १७६४ को हो चुकी थी। पूना दरबार पर नाना फड़नवीस का प्रभाव छाया हुआ था तथा पेशवा माधवराव द्वितीय नाना के हाथों की कठपुतली बन गया था। महादाजी सिंधिया की मृत्यु के पश्चात् मराठा संघ में अब नाना की सत्ता को चुनौती देने वाला कोई नहीं रह गया था। इस प्रकार मराठा राज्य की सारी सत्ता और शक्ति नाना के हाथों में केन्द्रित हो जाने से तथा सभी सरदारों के उसके प्रभाव में आ जाने से, जो मराठा संघ को एकता और नई शक्ति प्राप्त हो गई थी, उसी का एहसास कर नाना ने मराठा साम्राज्य की नीतियों को नई दिशायें देने की सोची। फलस्वरूप उसका ध्यान पहले मराठा साम्राज्य के प्रमुखतम शत्रु निज़ाम की ओर गया। पेशवा की ओर से नाना ने निज़ाम से चौथ और सरदेसमुखी सम्बन्धी समझौते के नवीनी-करण की मांग की। किन्तु जब निज़ाम की ओर से कोई उत्तर नहीं आया, तब महादाजी सिंधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सिंधिया, तुकोजी होल्कर, रघुजी भोंसले तथा गोविन्दराव गायकवाड़ एक विशाल सेना के साथ अहमदनगर के पास खरदा आ पहुंचे। मराठे अन्तिम बार पेशवाई झण्डे के नीचे एक बार फिर से एकत्रित हुए। निज़ाम और मराठा सेना में खरदा में (११ मार्च १७६५) घमासान युद्ध हुआ और अन्त में पराजित होकर निज़ाम को तुरन्त ही एक अपमान जनक

---

१ - पे० द० २२ नं० २४१ ।

संधि करनी पड़ी।[2] निज़ाम के साथ हुए युद्ध के पश्चात् पेशवा माधवराव द्वितीय अधिक दिनों तक जीवित न रह सका और २७ अक्टूबर १७९५ को वह भी चल बसा।

नाना फड़नवीस ने माधवराव द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् मराठा इतिहास के विभीषण रघुनाथराव के पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाया। पेशवा बाजीराव द्वितीय नाना फड़नवीस से हृदय से घृणा करता था। लेकिन फिर भी किसी अन्य विकल्प के अभाव में फिलहाल उसने नाना को अपना मुख्य मंत्री बनाया। पर उसकी और नाना की अधिक समय तक न बन सकी। इसी समय अगस्त १७९७ में नाना के एक मात्र वृद्ध समर्थक तुकोजी होल्कर की भी मृत्यु (१५ अगस्त १७९७) हो गई। अब महादाजी सिंधिया का उत्तराधिकारी दौलतराव सिंधिया सर्वाधिक शक्तिशाली मराठा सरदार था। महादाजी सिंधिया का होल्कर तथा नाना विरोधी रुख रहा ही था और इस विरोध की परम्परा दौलतराव सिंधिया ने विरासत में पाई थी। अस्तु, बाजीराव द्वितीय ने नाना के विरुद्ध सिंधिया पर हाथ रखकर उसे अपने नाना विरोधी गुट में शामिल कर लिया और जैसा कि सर्वविदित है कि उसने नाना को अपनी दुरभि संधियों से अन्त में दौलतराव द्वारा कैद करा लिया। किन्तु सिंधिया और पेशवा का गठबन्धन अधिक दिनों तक न चल सका, क्योंकि नाना के हट जाने से सिंधिया की शक्ति पर कोई अवरोध नहीं रह गया था और वह पेशवा पर हावी होने लगा था। उसने पूना तक की लूट कर डाली। अब पेशवा तथा दौलतराव में विरोध स्पष्ट हो चला था और यहां तक की उनके सैनिकों में आपसी कुछ मुठभेड़ें हो गई थीं। बाजीराव ने निज़ामअली से एक रक्षात्मक समझौता करके सिंधिया से पार पाना चाहा पर सिंधिया ने नाना को मुक्त कर पेशवा की स्थिति नाजुक करदी, जिससे विवश होकर पेशवा को दौलतराव

---

२ - निज़ाम मराठा संघर्ष की उत्पत्ति और खरदा के युद्ध तथा उसकी समालोचना के लिए देखें -

सर देसाई ३ पृ० २८६-३०२, दी राइज़ एण्ड फाल आफ दी मराठा एम्पायर (नादकर्णी) पृ० २६३ ।

और नाना से समझौता सा करना पड़ा और नाना फिर अपने पुराने पद पर प्रतिष्ठित हो गया । किन्तु नाना और पेशवा के बीच जो खाई बन चुकी थी, वह पट न सकी । जब मराठा संघ अपने आपसी मन-मुटावों द्वारा निर्बल होता जा रहा था तभी दुर्भाग्य से नाना की मृत्यु (१३ मार्च, १८००) ने उसे अन्त के और निकट ला दिया और जैसा कि ब्रिटिश रेजीडेण्ट पामर ने उसकी मृत्यु का समाचार देते हुए गवर्नर जनरल को लिखा कि " नाना के साथ ही सारी बुद्धिमत्ता और संयम चला गया[३]।" अब दौलतराव सिंधिया पूना में सर्वशक्तिमान हो उठा । इस पर बाजीराव ने जसवन्तराव होल्कर का सहारा लिया और सिंधिया को मालवा में होल्कर से अपनी जागीरों की रक्षा के लिए जाना पड़ा । बाजीराव ने अब सिंधिया से तो मुक्ति पाई किन्तु होल्कर से शत्रुता मोल ले ली । जसवन्तराव होल्कर का भाई विट्ठू जी होल्कर उसका विरोधी रहा था, इसलिए उसने १६ अप्रैल, १८०१ को उसे हाथी के पैरों तले कुचलवा डाला । उसके इस कुकृत्य से उत्तेजित होकर होल्कर पूना पर चढ़ आया । पेशवा बुरी तरह पराजित होकर सिंहगढ़, और रायगढ़ होता हुआ बेसीन में अंग्रेजों के संरक्षण में जा पहुंचा । इधर जसवन्तराव होल्कर ने बाजीराव के दत्तक भाई अमृतराव को पेशवा घोषित कर दिया[४]। इस प्रकार सिंधिया और होल्कर से बिगाड़ हो जाने और अमृतराव के पेशवाई गद्दी पर जम जाने से बाजीराव नि:सहाय सा हो गया । लेकिन था तो वह राघोबा का पुत्र ही । उसने भी पुन: पेशवाई पाने के लिए अंग्रेजों से सहायता की याचना की ।

२ - बेसीन की संधि (३१ दिसम्बर, १८०२) अंग्रेजी प्रभुसत्ता की बुन्देलखण्ड में स्थापना -

इस समय वेलेजली गवर्नर जनरल था । उसने यह सुनहरा मौका पाकर बाजीराव पर सुप्रसिद्ध बेसीन की सहायक संधि (३१ दिसम्बर १८०२)

---

३ - बाजीराव सेकिंड एण्ड दी ईस्ट इंडिया कम्पनी (गुप्ता) पृ० २१, सरदेसाई ३ पृ० ३५७ ।

४ - सर देसाई ३ पृ० ३६६-३७५, बाजीराव सेकिंड एण्ड दी ईस्ट इंडिया कम्पनी (गुप्ता) पृ० ४१-४२ ।

थोप दी और इस प्रकार मराठा संघ भी उसके सुप्रसिद्ध सहायक संधि के जाल में फस गया । वैसे होल्कर से युद्ध के पहले भी वाजीराव ने अंग्रेजों से सहायता मांगी थी । किन्तु तब वह वेलेज्ली की सहायक संधियों की शर्तों पर राजी नहीं हुआ था । इसलिए उसे अंग्रेजी सहायता नहीं मिल सकी थी । पर अब वाजीराव की स्थिति एकदम बिगड़ चुकी थी और उसका मराठा सरदारों में कैसे कोई घनाघोरी नहीं रह गया था । अस्तु अब वेलेज्ली की सहायक संधि की शर्तें स्वीकार कर उनकी सहायता लेने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया था । बैसीन की संधि की शर्तें सुविदित हैं ही[5] । इस संधि में बुन्देलखण्ड में पेशवा की प्रभुसत्ता को अंग्रेजों को हस्तांतरित करने वाली धारा ही इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में यहां विशेष महत्वपूर्ण है । इस संधि से[6] अंग्रेजों को बुन्देलखण्ड में ३६१६००० रुपये की आय का प्रदेश प्राप्त हो गया था ।

बैसीन की संधि से महाराष्ट्र में खलबली मच गई । इस संधि के कारण ही द्वितीय अंग्रेज मराठा युद्ध अगस्त, १८०३ में प्रारम्भ हुआ । लार्ड वेलेज्ली इसके लिए पहले से ही तैयार था । उसके भाई आर्थर वेलेज्ली ने - सिंधिया और भोंसले की संयुक्त सेनाओं को परास्त कर अहमदनगर पर अधिकार कर लिया । दिसम्बर के अन्त तक मराठों के कई महत्वपूर्ण स्थल अंग्रेजों के अधिकार में आगये । भोंसले और अंग्रेजों के बीच १७ दिसम्बर १८०३ को ~~अंग्रेजों से~~ देवगांव की संधि हुई । इस संधि से कटक का पूरा प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया । इसी प्रकार सिंधिया ने ३० दिसम्बर १८०३ को अंग्रेजों से सुरजी अनजन गांव की संधि की । इस संधि से सिंधिया को यमुना गंगा का दोआब, दिल्ली आगरा के प्रदेश, भड़ौंच गुजरात के जिले, अहमदनगर का किला और अजन्ता एलोरा के प्रदेश अंग्रेजों को देने पड़े । गायकवाड़ पेशवा से पहले ही २६ जुलाई १८०२ को अंग्रेज सरकार से संधि कर चुका था । फलस्वरूप मराठा साम्राज्य विघटित होना शुरु हो गया ।

---

५ - सर देसाई ३ पृ० ३८३-८४, वाजीराव सैकिंड एण्ड दी ईस्ट इंडिया कम्पनी (गुप्ता) पृ० ४७-४८ ।

६ - ऐचिसन भाग ७, पृ० ५८-५६ ।

३ - शिवराव के अंग्रेजों से सम्बन्धों का प्रारम्भ

इस समय बुन्देलखण्ड में अमीरखां के नेतृत्व में पिण्डारी ऊधम कर रहे थे। अमीरखां १८०३ में सेना सहित टीकमगढ़ आया। अमीरखां के टीकमगढ़ आने का समाचार मिलते ही बांदा के अंग्रेज एजेन्ट अहमती (AHMUTY) सेना सहित एरच की ओर बढ़ा। अमीरखां के विरुद्ध फांसी के सूबेदार शिव-राव हरि ने भी अंग्रेजों की सहायता की। उसने १२ हजार गुसाईं सैनिकों को पिंडारियों के विरुद्ध भेजा। अंग्रेज सेना के आने का समाचार मिलते ही अमीरखां मालथौन की ओर भाग खड़ा हुआ[७]।

इस प्रकार शिवरावहरि ने पिंडारियों के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता करके उनकी सहानुभूति प्राप्त करली। सम्भवत: इसी समय से अंग्रेज सरकार और शिवरावहरि के बीच उस समझौते की पृष्ठभूमि प्रारम्भ हो गई थी जो ६ फरवरी १८०४ को सम्पन्न हुआ। इसके अलावा पेशवा और अंग्रेज सरकार के बीच बेसीन की संधि हो जाने का भी प्रभाव फांसी के सूबेदार शिवरावहरि पर पड़ा, क्योंकि बुन्देलखण्ड में उसकी नियुक्ति पेशवा के द्वारा ही हुई थी और फांसी का राज्य इस प्रकार पेशवा के अधीन एक राज्य था। बेसीन की संधि के बाद जब अंग्रेज सेनायें बुन्देलखण्ड में आईं तब शिवरावहरि ने बुन्देलखण्ड के पालिटि-कल एजेन्ट के द्वारा लार्ड लेक को एक वाज़िब-उल-अर्ज़ या प्रार्थनापत्र प्रेषित किया जिसमें उसने ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी अधीनता और उसके दृष्टिकोण तथा हितों के प्रति अपना लगाव प्रदर्शित किया। इस वाज़िब-उल-अर्ज़ में ७ प्रार्थनायें की गई थीं। सभी को प्रधान सेनापति ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार जो अन्तिम संधि ६ फरवरी, १८०४ को हुई उसमें ६ धारायें थीं। इससे पूर्व कि इस संधि की धाराओं का उल्लेख किया जाय, शिवराव ने जो वाज़िब-उल-अर्ज़ १८ नवम्बर, १८०३ को प्रस्तुत किया था उसकी प्रार्थना का उल्लेख करना उचित होगा, जिससे ६ फरवरी, १८०४ की संधि में जो और बातें जोड़ी गई वे तुलना से स्पष्ट हो जाय।

---

७ - फांसी गजे० पृ० ४६ (नया)

शिवरावभाऊ का जो वाजिब-उल-अर्ज़ १८ नवम्बर, १८०३ को प्रस्तुत किया गया था, उसकी मुख्य प्रार्थनायें संक्षेप में इस प्रकार थीं -

१ - पेशवा के अधीन मेरा जो पद और मर्यादा थी, अंग्रेजी सरकार के अन्तर्गत ज्यों की त्यों बनी रहे और इसमें वृद्धि होती रहे ।

२ - पेशवा की सत्ता के अधीन मेरे पास जो प्रदेश और किले हैं वे मेरे अधिकार में ही बने रहें, तथा जो राजस्व मैं पेशवा का देता रहा हूं, वह अब मैं कम्पनी के कोष में देता रहूंगा ।

३ - इस समय अंग्रेज, दौलतराव सिंधिया और होल्कर के प्रदेश और किले जीतने में लगे हुए हैं, इसलिए एक उच्च अधिकारी सहित एक या दो बटालियनें यहां भेज दी जाय । मैं उनके साथ सम्मिलित हो जाऊंगा और जो प्रदेश मेरे प्रदेशों से लगे हुए हैं, उन्हें जीतने में सहायता करूंगा ।

४ - अगर कम्पनी मेरे किले और प्रदेश को लेना चाहे तो वे स्वामी हैं और हर प्रकार से सामर्थवान हैं और मैं आज्ञा मानने को तैयार हूं । लेकिन चूंकि ब्रिटिश राष्ट्र और महामहिम पेशवा में अब शांति हो गई है और उनके बीच एक संधि भी हो चुकी है, इसलिए पेशवा का आदेश पत्र प्रस्तुत किया जाय, ताकि मैं उस आदेश का पालन कर अपना सामन्त का कर्तव्य पूरा कर सकूं ।

५ - अगर आगे भविष्य में कभी पेशवा मेरे राज्य को कम्पनी को सौंप दे और यह ब्रिटिश राज्य का एक हिस्सा बन जाय तो मुझे अपनी घुड़सवार और पैदल सेना के खर्च के लिए और अपने तथा अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए एक जायदाद हमेशा हमेशा के लिए प्रदान की जाय ।

६ - चूंकि पड़ोस के दतिया, चन्देरी के राज्य व अन्य दूसरे राज्य अंग्रेजी सरकार की अधीनता स्वीकार करने के लिए और उसकी सेवा में आने के लिए । इसलिए इन राजाओं के प्रदेशों की गारण्टी दी जाय और वे जो राजस्व पेशवा को देते थे, ब्रिटिश राज्य कोष में दिया जाने लगे ।

७ - मेरे साथ जो भी संधि की जाय, वह राजा हिम्मतबहादुर की मध्यस्थता से की जाय ।

इस वाजिब-उल-अर्ज़ को ईजुलखां ने तैयार किया था ।

४ - भाऊ की अंग्रेजों से संधि (६ फरवरी, १८०४)

उपरोक्त वाजिब-उल-अर्ज़ पर विचार करके उसमें और कुछ बातें जोड़कर जो संधि का अंतिम मसविदा तैयार किया गया उसमें जैसा कि उल्लेख किया गया है, ६ धारायें थीं । ये धारायें इस आशय की थीं -

१ - भाऊ, ब्रिटिश सरकार और पेशवा के प्रति अपनी पूर्ण अधीनता और हार्दिक लगाव व्यक्त करते हुए यह स्वीकार करता है कि वह दोनों सरकारों के मित्रों को अपना मित्र तथा शत्रुओं को अपना शत्रु समझेगा । तात्पर्य यह है कि वह किसी दूसरे ऐसे शासक या राजा को त्रस्त नहीं करेगा, जो अंग्रेज सरकार या पेशवा के अधीन हों और वह इन सरकारों (पेशवा और अंग्रेज) के प्रति विद्रोह या दुर्भाव रखने वाले शत्रुओं को, ऐसे लोगों और ऐसे परिवारों को अपने प्रदेश में संरक्षण नहीं देगा और न उनसे कोई सम्बन्ध रखेगा तथा उनसे किसी प्रकार का पत्र व्यवहार भी नहीं करेगा । वह अपनी शक्ति भर ऐसे लोगों को पकड़कर उनको उस सरकार को सुपुर्द कर देगा जिसके कि विरुद्ध उन्होंने काम किया है ।

२ - अगर भाऊ और किसी ऐसे राज्य या शासन के बीच, जो कि अंग्रेज सरकार के प्रति अधीनता रखता हो, कोई झगड़ा हो तो भाऊ यह स्वीकार करता है कि वह ऐसे झगड़ों या मतभेद के कारणों से अंग्रेज सरकार को सूचित करेगा । ताकि वह झगड़े के मामलों की जांच पड़ताल करने का अवसर पा सके तथा उसे दोनों दलों के आपसी संतोष के अनुसार तय कर सके अथवा जो दल दोषी हो उसे दंडित कर सके ।

३ - जब कभी शिवराव के प्रदेशों से लगे हुए उपद्रवी प्रदेशों में कोई अंग्रेजी सेनायें दमन के लिए भेजी जा रही हों, तो भाऊ यह स्वीकार करता है कि ऐसे अवसरों पर अपनी सेना सहित अंग्रेजी सेनाओं में शामिल हो जायगा और उसके ~~उपकरण~~-कलहों की पूर्ति में सहायक होगा तथा अंग्रेजी सेना का कोई दल किसी समय भाऊ के प्रदेश में उपद्रवों के दमन के लिए प्रवेश करेगा, तो ऐसे सैनिक दल का पूरा खर्च

भाऊ उठायेगा। दूसरी ओर अगर अंग्रेजी प्रदेशों में दमन के लिए किसी समय भाऊ की सहायता की मांग की जायगी, तो ऐसी सेनाओं का खर्च अंग्रेजी सरकार उठायेगी।

४ - भाऊ वास्तविक रूप से अपनी सेनाओं के सेनापति हैं, लेकिन यह तय हुआ कि हर ऐसे अवसर पर जब ये सेनायें अंग्रेजी सेनाओं के साथ काम करेंगी, तब उनकी कमान अंग्रेजी सेनाओं के सेनापति में निहित होगी।

५ - शिवरावभाऊ यह स्वीकार करता है कि वह किसी भी अंग्रेज नागरिक अथवा किसी भी राष्ट्र या यूरोपियन को बिना अंग्रेजी सरकार की अनुमति के अपनी सेवा में न लेगा।

६ - भाऊ पेशवा को जो भी राजस्व (नज़राना) देता रहा है, वह पेशवा को ही देता रहेगा। अंग्रेजी सरकार अपने लिए किसी नज़राने की मांग नहीं करती।

७ - अगर राजा अम्बा जी इंग्ले किसी समय भाऊ के प्रदेशों को त्रस्त करेगा, तो ब्रिटिश सरकार उसे रोकने के लिए हस्तक्षेप करेगी।

८ - अगर कोई व्यक्ति भाऊ के विरुद्ध बागी होने या अधीनता भंग करने का आरोप लगायेगा तो अंग्रेजी सरकार अगर उसकी सत्यता प्रमाणित न की गई, तो उसकी ओर ध्यान नहीं देगी।

९ - शिवरावभाऊ का बनारस नगर में एक निवास स्थान है। यदि अब से भाऊ की संतानें, भाई या दूसरे सम्बन्धी इस नगर में रहेंगे तो उन्हें अंग्रेजी सरकार का संरक्षण प्राप्त रहेगा और वे परेशान नहीं किये जायेंगे।

नोट - इस संधि में ९ धारायें हैं। इस पर प्रधान सेनापति जनरल लेक की ओर से पॉलिटिकल एजेन्ट जॉन बेली और शिवरावभाऊ ने कोटरा कैम्प में ६ फरवरी - १८०४ को हस्ताक्षर किये और मुहर लगाई।

२३ सवाल १२१८ हिजरी
फाल्गुन वदी, १० सम्वत् १८६० ।

इस संधि की एक प्रति भाऊ को दी गई और एक कैप्टिन जॉन बेली को। जब इस संधि की पुष्टि प्रधान सेनापति लेक या गवर्नर जनरल इन कांउन्सिल की मुहर से हो जायगी तब शिवराव भाऊ को दे दी जायगी और -

~~शिवरावभाऊरावरावरा~~

शिवराव भाऊ इसे लौटा देंगे[८]।

५ - पूना दरबार से खिंचते हुए सम्बन्ध

(२)- शिवराव भाऊ इस संधि के बाद अंग्रेजों के प्रति निष्ठावान बना रहा किन्तु कतिपय कारणों से उसके सम्बन्ध पेशवा और उसके सरदारों विशेष कर दौलतराव सिंधिया से बिगड़ने शुरु हो गये। जिनके कारण वह अंग्रेजों की ओर अधिकाधिक झुकता गया। पेशवा से उसके सम्बन्ध खराब होने का मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि उसने कई वर्षों से पेशवा को झांसी से पेशकश नहीं भेजी थी और न झांसीके सूबे से पेशवा को यहां की आय-व्यय के कई वर्षों के ब्यौरे ही भिजे थे। पेशवा से शिवराव के सम्बन्ध खराब होने के मुख्य कारण पर प्रकाश डालते हुए वाऊचौप [WAUCHOPE] ने १३ अगस्त १८१४ के बांदा से गवर्नर जनरल को यह लिखा था कि जहां तक झांसी की सूबेदारी का हिसाब भेजने की बात है, शिवराव भाऊ ने उसे रघुनाथहरि के काल के पहले २४ वर्षों का हिसाब किताब भेज दिया है और बाद के १६ शेष वर्षों का हिसाब भी वह शीघ्र भेज रहा है। इस हिसाब के ब्यौरे के अनुसार झांसी के सूबेदार के पक्ष में ८४०२०२७-१०-६ बाकी निकलता है। लेकिन उसने गवर्नर जनरल का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि यह हिसाब अस्पष्ट और सिलसिलेवार नहीं है। इसके साथ ही उसने गवर्नर जनरल को इस बात की भी सूचना दी कि शिवराव भाऊ अपने बाद अपने पौत्र रामचन्द्रराव को झांसी की सूबेदारी पेशवा द्वारा प्रदान किये जाने पर उसे लगभग १ लाख रुपया नज़राना देने को तैयार है। उसने यह भी इशारा किया कि यह रकम कुछ और भी बढ़ाई जा सकती है। भाऊ के वकील ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि १ लाख की रकम नज़राने के रूप में होगी। वार्षिक पेशकश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होगा। झांसी के

---

२ ८ - ऐचीसन भाग ५ पृ० ६४-६७ ।
इस संधि के मूल स्वरूप और वाकिआ-उल-अर्ज़ के मूल रूप के लिए इस अध्याय में संलग्न परिशिष्ट १ देखें ।

सूबेदार से यह वार्षिक पेशकश ड़ेढ लाख रुपये ली जाती थी[६]। लेकिन इसी पत्र के अनुसार यह भी प्रतीत होता है कि भाऊ अब यह ड़ेढ लाख की पेशकश देने में आनाकानी कर रहा था। भाऊ के वकील का तर्क यह था कि पहले जब ड़ेढ लाख की पेशकश दी जाती थी तब झांसी से लगा भांडेर का जिला झांसी की सूबेदारी के अन्तर्गत आता था, लेकिन चूंकि अब यह दोनों जिले झांसी से ले लिए गये थे, इसलिए सालाना पेशकश भी पहले से कम होनी चाहिए। वकील से ही बाऊचौफ को यह पता लगा था कि सन् १७७०-१८०५ तक का हिसाब पेशवा को भेजा जा चुका था और उसके बाद के ७ सालों का हिसाब भी दिया जा चुका है, लेकिन पेशवा ने अब तक उन ब्योरों पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं। उपरोक्त वर्षों के बाद के हिसाब नहीं भेजे जा सके हैं[१०]।

उपरोक्त पत्र से प्रतीत होता है कि पेशवा झांसी के हिसाब किताब के ब्योरे से संतुष्ट नहीं था और वह समझौता रामचन्द्र को झांसी का सूबेदार मानने के लिए एक लाख से अधिक नज़राना चाहता था। साथ ही ड़ेढ लाख की वार्षिक पेशकश में भी वह किसी कमी के लिए तैयार नहीं था। भाऊ ने जो झांसी के पक्ष में ८४०२०२७-१०-६ की जो बाकी रकम निकाली थी, वह भी पेशवा को सम्भवत: जमीं नहीं थी अथवा उसने उसे फर्जी मान लिया होगा। फिर बाउचौफ के पत्र से एक इस तथ्य का भी उल्लेख मिलता है कि भाऊ को ८ वर्ष पहले अर्थात् १८०६ में कभी पूना बुलाया गया था। सम्भवत: यह बुलावा हिसाब किताब से अथवा नज़राना या पेशकश से सम्बन्धित था और भाऊ ऐसे ही किन्हीं कारणों से बहाना करके तब पूना नहीं गया था[११]।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पेशवा बाजीराव द्वितीय शिवरावभाऊ से बहुत असंतुष्ट था और शिवराव को यह आशा नहीं थी कि वह सहज ही उसके पौत्र को झांसी का वंशानुगत सूबेदार मान लेगा। यही कारण था कि वह अंग्रेज गवर्नर जनरल को शीघ्र से शीघ्र पटाकर रामचन्द्र को अपने उत्तराधिकारी

---

3 ६ - फा० पौलि० कन्स० ३० अगस्त १८१४ नं० २६ ।

4 १० - वही ।

5 ११ - वही ।

के रूप में मान्यता दिलाकर उसके नाम से अंग्रेजों से एक नयी संधि करना चाहता था[12]। पर गवर्नर जनरल बिना पेशवा द्वारा मान्यता दिये स्वयं रामचन्द्र को भाऊ के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता देना उचित नहीं समझता था, क्योंकि झांसी की सूबेदारी अभी भी पेशवा के ही अधीन थी और वही उसके सूबेदार को नियुक्त करने का अधिकारी था[13]। इसीलिए बुन्देलखण्ड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट बाउचौप बार बार भाऊ को पेशवा को प्रसन्न कर किसी तरह उससे मान्यता लेने की सलाह देता रहा। इधर भाऊ का स्वास्थ्य बराबर गिरता जा रहा था और वह शीघ्र से शीघ्र उत्तराधिकार के मसले को तय करके बनारस जाकर अपना अन्तिम समय व्यतीत करना चाहता था[14]।

६ - सिंधिया से तनाव

शिवरावभाऊ के सम्बन्ध पेशवा के साथ साथ उसके सरदारों विशेषकर सिंधिया से बिगड़ने लगे थे। उसने सिंधिया की अपने प्रति शत्रुता का उल्लेख करते हुए अंग्रेजों को जो पत्र लिखे उनसे विदित होता है कि दौलतराव सिंधिया से उसके सम्बन्ध खराब होने के कारण निम्न थे -

१ - मोंठ के नरेन्द्रगिरि और कंचनगिरि ने अपनी सेना का एक भाग दौलतराव सिंधिया को दे दिया था और इसके बदले में उन्होंने सिंधिया से मांग की कि उन्हें मोंठ का किला दिया जाय।' दौलतराव ने मोंठ का परगना कंचनगिरि को दे दिया। मोंठ वास्तव में पेशवा की ही एक जागीर थी और यह झांसी के अन्तर्गत आती थी। इस पर सिंधिया का कोई अधिकार नहीं था। किन्तु दौलतराव ने न केवल मोंठ उन्हें दे दिया बल्कि मोठ पर अधिकार करने में फरवरी १८०७ में उनकी सहायता भी की। अब शिवरावभाऊ ने अंग्रेज सरकार से १८०४ की संधि के आधार पर सहायता की याचना की। लार्ड मिन्टो ने बुन्देलखण्ड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट बाउचौप को सिंधिया के इस कार्य का विरोध करते हुए पत्र भी लिखा।

---

6 १२ - फा० पोलि० कन्स० २० मार्च १८१२ नं० ३४-३५ ।

7 १३ - फा० पौलि० कन्स० ७ मार्च १८०८ नं० २१, २० मार्च १८१२ नं० ३६, ३७ जुलाई १८१२, नं० ४४ ।

8 १४ - फा० पौलि० कन्स० २० मार्च १८१२ नं० ३५ ।

गवर्नर जनरल और कौउन्सिल का विचार था कि सिंधिया को मोंठ के मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था, मोंठ का परगना वास्तव में फांसी की ही जागीर का एक भाग है और चूंकि फांसी के सूबेदारों की नियुक्ति अब तक पेशवा के द्वारा ही होती चली आरही है, इसलिए मोंठ फांसी के सूबेदार या पेशवा की अनुमति के बिना नहीं दिया जा सकता[१५]।

२ - सिंधिया और भाऊ के बीच इस विरोध ने उस समय और गति पकड़ ली जबकि सिंधिया का सेनापति जीनबेपस्टि अपने सैनिक दल सहित भाऊ के प्रदेशों को हानि पहुंचाता हुआ चन्देरी की ओर बढ़ा। चन्देरी में इस समय ओरछा के बुन्देलों की दूसरी शाखा के वंश का मोद प्रह्लाद शासन कर रहा था। लेकिन इससे प्रजा सन्तुष्ट न थी, इसलिए चन्देरी के सरदारों ने ग्वालियर के सेनापति जीनबेपस्टि को चन्देरी पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था[१६]। सिंधिया की सेना फांसी के प्रदेशों को रौंदती हुई सन् १८१२ में चन्देरी पहुंची। भाऊ ने सिंधिया की शिकायत करते हुए अंग्रेज सरकार को पत्र लिखे, किन्तु कोई कार्यवाही करने के पूर्व ही बेपस्टि चन्देरी से ग्वालियर वापस लौट गया[१७]।

३ - सिंधिया ने भाऊ को एक और उत्तेजना यह दी थी कि उसके एक सेनापति ने भाऊ की पैतृक जागीर पारौला (खानदेश) पर सिंधिया की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुमति से १८०२ में आक्रमण किया था और भाऊ के भतीजे बलवन्तराव लक्ष्मण ने पारौला को सिंधिया के सैनिकों की लूट से बचाने के लिए स्वयं को जमानत के तौर पर सिंधिया के सेनापति को सौंप दिया था। यह जमानत इसकी थी कि जब तक सिंधिया के सेनापति को गांव छोड़ने की रकम नहीं मिल जायगी, तब तक बलवन्तराव लक्ष्मण उसके पास बन्धक के रूप में रहेगा। बलवन्तराव ने शीघ्र

---

9 १५ - फा० पोलि० कन्स० २६ फरवरी १८०७ नं० १, ५ ।

10 १६ - विद्रोही बानपुर (वासुदेव गोस्वामी) पृ० २ - ।

11 १७ - फा० पोलि० कन्स० ७ अगस्त, १८१२ नं० २३, १४ अगस्त, १८१२ नं० ३५, २१ अगस्त, १८१२ नं० ११, २८ अगस्त, १८१२ नं० ५६, ११ सितम्बर, १८१२ नं० २८ ।

ही इस देय रकम का एक भाग पटा दिया और शेष रकम के लिए अपने पुत्र और माता को अपने स्थान पर बन्धक रखकर स्वयं शेष रकम की व्यवस्था करने के लिये अपने गांव लौट आया। लेकिन वह रकम की व्यवस्था नहीं कर सका। उसने अपने चाचा शिवरावहरि से अपने पुत्र और पत्नि को छुड़ाने के लिए धन की याचना की। भाऊ ने उन्हें रकम का एक भाग देकर सिंधिया से छुड़ाया[१८]। इस बात को लेकर भी भाऊ के मन में सिंधिया के प्रति दुरभि संधियों की बात जम गई होगी।

४ - इसी प्रकार झांसी से लगा हुआ भांडेर का प्रदेश भी झांसी का ही एक अंग था। किन्तु सिंधिया भांडेर को भी हथियाना चाहता था। इसलिए प्रारंभ से ही सिंधिया की ओर से भांडेर पर कई बार आक्रमण होते रहे और अन्त में उसके नाज़िम अम्बाजी इंग्ले ने भांडेर को ग्वालियर में मिला ही लिया[१९]।

७ - पड़ोसी बुन्देला राज्यों से सम्बन्ध -

झांसी के पहले के शासकों की अपेक्षा शिवरावभाऊ के सम्बन्ध अपने पड़ोसी बुन्देला राज्यों और विशेषकर ओरछा, दतिया से अच्छे रहे थे[२०]। इसका मुख्य कारण यह था कि भाऊ के शासनकाल में ही सभी झांसी के पड़ोसी राज्यों की संधियां अंग्रेजों से हो चुकी थीं। उदाहरण के लिए दतिया के राजा पारिछात और अंग्रेजों के बीच पहली संधि १५ मार्च १८०४ को हुई थी तथा ओरछा के राजा विक्रमाजीतसिंह से अंग्रेजों की पहली संधि ३० दिसम्बर, १८१२ को हुई थी[२१]। इन दोनों ही संधियों में भाऊ से हुई पूर्व उल्लिखित अंग्रेजों की संधि की तरह एक विशेष धारा यह जुड़ी थी कि ~~ओरछा और दतिया के राजा किसी ऐसे शासक या राज्य को त्रस्त नहीं करेंगे, जिसकी कि अंग्रेजों से संधि~~

---

12 १८ - फा० पौलि० कन्स० २६ अप्रेल, १८१४ नं० ८४ ।

13 १९ - फा० पौलि० कन्स० २० मार्च, १८१२ नं० ३५, ३० अगस्त १८१४ नं० २६ ।

14 २० - फा० पौलि० कन्स० ६ अक्टूबर, १८२१ नं० पृ० ५२-५४ ।

15 २१ - ऐचीसन भाग ५ पृ० ८४-८६ ।

~~की तरह एक विशेष धारा यह जुड़ी हुई थी कि~~ ओरछा और दतिया के राजा किसी ऐसे शासक या राजा को त्रस्त नहीं करेंगे जिसकी कि अंग्रेजों से संधि हो गई है या जिनके कि अंग्रेजों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं । फिर उपरोक्त संधियों में इन राज्यों को शत्रुओं के विरुद्ध संरक्षण भी दिया गया था और यह शर्त भी लगा दी गई थी कि ये शासक अपने सभी विवाद पहले पंच फैसले के लिए अंग्रेजी सरकार के सामने प्रस्तुत करेंगे । संधि की धाराओं से अब फांसी, ओरछा और दतिया के बीच किसी प्रकार के सैनिक संघर्ष की गुंजायश नहीं थी और इसलिए फिलहाल भाऊ के काल में फांसी के राज्य की यथा स्थिति बनी रही ।

८- उत्तराधिकारी का मनोनयन और मृत्यु

शिवरावभाऊ के अन्तिम वर्षों में उसके उत्तराधिकार की समस्या उठ खड़ी हुई । उसने सोचा कि अगर वह अंग्रेज गवर्नर जनरल से अपने उत्तराधिकारी को मनोनीत करने की अनुमति प्राप्त करले तो फिर पेशवा और सिंधिया से दबने का कोई कारण ही नहीं रह जायगा ।' इस समय फांसी की ~~स्थि~~ स्थिति ३२ दांतों के बीच जीभ जैसी थी । फांसी, ओरछा और दतिया के बुन्देला राज्यों से घिरी थी और उन्हीं से छीने गये प्रदेशों से इसका निर्माण हुआ था ।[२२] सिंधिया तो पहले ही शत्रु हो उठा था । अस्तु 'सम्भावना इसकी थी कि भाऊ के मरते ही किसी भी निर्बल उत्तराधिकारी के काल में उपरोक्त सभी विरोधी तत्व सक्रिय हो उठते और फांसी की सूबेदारी समाप्त हो जाती । इन सबको शान्त रखने के लिए और फांसी की गद्दी पर उसके उत्तराधिकारी ही बैठे, इसकी गारण्टी प्राप्त करने के लिए शिवरावभाऊ ने सशक्त अंग्रेजी सरकार का संरक्षण अपने उत्तराधिकारी के लिए प्राप्त करने का प्रयास किया । उसने गवर्नर जनरल को बार बार पत्र भेजकर इस बात के लिए दबाव डाला कि उसका आग्रह स्वीकार करले ।[२३] उसके आग्रहों का अधिक जोर पड़ा इसीलिए उसने बनारस

---

२२ - फा० पोलि० कन्स० २८ अगस्त, १८१२ नं० ५६ ।

२३ - फा० पोलि० कन्स० २० मार्च, १८१२ नं० ३५, २६ अप्रैल, १८१४ नं० ८६, ८७, ३ जून, १८१४ नं० ३३ ।

जाने और झांसी का शासन उससे लेने की बात भी कही ताकि वे शीघ्र से शीघ्र रामचन्द्र के लिए अपनी स्वीकृति भेज दें[२४]। किन्तु भाऊ की निष्ठा में विश्वास होने और उसके वंशानुगत उत्तराधिकार के प्रति सहानुभूति रखने पर भी अंग्रेज गवर्नर जनरल को एक हिचक थी। वह यह कि वैधानिक रूप से शिवरावभाऊ पेशवा के अधीन था और उसके द्वारा मनोनीत उसके उत्तराधिकारीको झांसी के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता देना अथवा झांसी की सूबेदारी को भाऊ के वंश को स्थायी रूप से प्रदान करना पेशवा के अधिकार क्षेत्र की बात थी। इसीलिए ही अंग्रेज सरकार ने भाऊ को सलाह दी कि वह पहले पेशवा से मान्यता ले ले और तभी वे उसके आग्रह पर विचार कर सकेंगे[२५]। किन्तु पेशवा बिना पिछला हिसाब दिये और पेशकश की अच्छी रकम लिये सम्भवत: मान्यता देने को राजी नहीं हुआ। यहां स्मरण रहे कि तीसरे अंग्रेज मराठा युद्ध (१८१७-१८) के बाद जब लार्ड - हेस्टिंग्स के काल में पेशवाई समाप्त हो गई और झांसी सीधे अंग्रेजों की अधीनता में आगई, तब कहीं उन्होंने १८१७ में रामचन्द्र से वह संधि की थी जिसकी कि इच्छा उसके पितामह शिवरावभाऊ ने इतने पहले सन् १८१२ में व्यक्त की थी[२६]।

ऐसा प्रतीत होता है कि शिवरावभाऊ प्रारम्भ में यह तय नहीं कर पाया था कि झांसी का शासन किसे दें। शिवराव के वकील ने बुन्देलखण्ड के एजेन्ट वाऊचौक से भेंट में यह कहा था कि शिवरावभाऊ झांसी का राज्य अपने पुत्र रघुनाथराव व पौत्र रामचन्द्रराव को संयुक्त रूप से देना चाहते थे[२७]। इस प्रकार शिवरावभाऊ प्रारम्भ में रघुनाथराव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे, किन्तु इस समय उसमें सम्भवत: कोढ़ के लक्षण दिखने लगे थे जिससे उसने अपना इरादा बदल दिया था। क्योंकि हिन्दू शास्त्र के अनुसार कोढ़ी को राजा नहीं होना चाहिए। इसीलिए बाद में जब रामचन्द्रराव की मृत्यु

---

18 २४ - फा० पौलि० कन्स० २० मार्च १८१२ नं० ३५ ।

19 २५ - फा० पौलि० कन्स० २० मार्च १८१२ नं० ३६, १७ जुलाई १८१२ नं० ३५, ४४, २६ अप्रैल १८१४ नं० ८६।

20 २६ - फा० पौलि० कन्स० २० मार्च १८१२ नं० ३४-३५ ।

२७ - फा० पौलि० कन्स० ३ जून १८१४ नं० ३२ ।

के बाद रघुनाथराव ने फांसी का राज्य प्राप्त करने का दावा किया था, तब भी इसी आधार पर अंग्रेज सरकार ने उसका विरोध किया था । स्लीमैन भी अपनी यात्रा के वर्णन में लिखता है कि जब वह रामचन्द्र की मृत्यु के बाद फांसी आया, तब रघुनाथराव के गले आदि में कोढ़ दिखने लगा था[२८]। और सम्भवत: इसीलिए शिवराव फांसी का राज्य अपने पुत्र को न देकर पौत्र को देना चाहता था ।

इस बीच शिवरावभाऊ का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता चला जा रहा था और दूसरी ओर उसके उत्तराधिकार का विवाद अभी चल ही रहा था । जब उसके स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं आया तब उसने गोपालराव भाऊ को फांसी का मुख्तार और गोपालराव के भान्जे नानाभाऊ को रामचन्द्र का संरक्षक नियुक्त किया और फिर फांसी का राज्य रामचन्द्र को छोड़कर स्वयं नवम्बर १८१४ में बिठ्ठूर चला आया[२६]। अंग्रेज सरकार ने भाऊ की चिन्ताजनक स्थिति के समाचार पूना के रेजीडेण्ट के पास भेजे तथा कानपुर के मैजिस्ट्रेट को भी भाऊ के बिठूर पहुंचने के समाचार भेजे गये[३०]।

भाऊ की जांघ और सीने में फोड़ा हो गया था । इन फोड़ों में से रक्त स्राव हो रहा था । इस रक्तस्राव से भाऊ धीरे धीरे कमजोर होता जा रहा था । इसी स्थिति में ६ दिसम्बर १८१४ को भाऊ की मृत्यु हो गई । अब अंग्रेज सरकार ने फांसी के मुख्त्यार गोपालराव भाऊ तथा रामचन्द्रराव के संरक्षण नानाभाऊ से आग्रह किया कि वे फिलहाल फांसी में व्यवस्था और अमनचैन बनाये रखें[३१]।

---

२८ - रैम्बिल्स एँड रिकलेक्शन्स आफ एन इंडियन आफिशियल भाग १ पृ० २६० ।

२६ - फा० पौलि० कन्स० २६ दिसम्बर १८१४ नं० १६, २६ नवम्बर १८१४ नं०६० ।

३० - फा० पौलि० कन्स० २६ नवम्बर १८१४ नं० ६० ।

३१ - फा० पौलि० कन्स० २६ दिसम्बर १८१४ नं० १६ ।

(अ)
Appendix - 1

No. VI
1804.

Whereas a firm Treaty of Friendship and Allience subsists between the British Government and His Highness the Peishwa, and Sheo Rao Bhao, Soobadar of Jhansie, is a tributary of His Highness the Pieshwa; and Whereas Sheo Rao Bhao, entertaining a just sense of the obligations imposed upon him by the said Treaty of Friendship and Alliance between the British Government and His Highness the Pieshwa, shortly after the arrival of a detachment of the British army in Bundelkhand, transmitted to His Excellency General Lake, Commander-in-Chief etc., etc., through Captain John Baillie, Political Agent on the part of His Excellency in Bundelkhand, a Wajib-ool-Urz or Paper of Requests, expressive of his submission and attachment of the views and interests of the British Government, and containing seven distinct Articles or Requests, all which have been acceded to by His Excellency the Commander-in-Chief; and Whereas certain requests and agreements on the part of Sheo Rao Bhao were not included in the said Wajib-ool-Urz, and are now necessary to be added :

The following Articles are now agreed on for the purpose of affording additional security and confidence to Sheo Rao Bhao, and of constituting and additional pledge of his fidelity and attachment to the British Government : -

Article 1.

The Bhao, professing his entire submission and sincere attachment to the British Government and to His Highness the the Pieshwa, hereby engages to consider the friends of both

Governments as his friends, and their enemies as his enemies, that is to say, he promises not to molest any Chief or State who shall be obedient to the British Government and to His Highness the Pieshwa; and considering all such as may be rebellious or disaffected to these Governments as his enemies, he engages to give no protection in his country to such persons or their families, to hold x no intercourse or correspondence of any nature with them, and to use every means in his power to seize and deliver them over to the Government against which they may offend.

Article 2.

Xixxxx If at any time a dispute or difference arise between the Bhao and any neighbouring state or Chieftain professing obedience to the British Government, the Bhao engages to communicate the grounds of such dispute or difference to the British Government that they may have an opportunity of investigating the matter in dispute and of adjusting it to the mutual satisfaction of the parties, or of punishing the party who shall be refractory.

Article 3.

Whenever a detachment of the British forces shall be employed in punishing the disaffected in the countries contiguous to the possessions of Sheo Rao Bhao, the Bhao engages upon every such occasion to join the British forces with his army and to assist in the accomplishment of their views; and if at any time a detachment of the British force shall march into the Bhao' country for the purpose quelling disturbances there, the whole expense of such detachment shall be defrayed by the Bhao. On the

other hand, if the assistance of the Bhao's troops be demanded at any time for the purpose of quelling disturbances in the British territory, the expenses of such troops shall be borne by the British Government.

Article 4.

The Bhao is in reality the Commander of his own troops; but it is hereby agreed that on every occasion when they may be acting with the British forces, the general command of the whole shall be vested in the Commanding Officer of the British troops, and in the event of peace being concluded, a due attention shall be paid to the interest of the Bhao.

Article 5.

Sheo Rao Bhao engages never to take or retain in his service any British subject or European of any nation or description without the consent of British Government.

Article 6.

Whatever tribute has been hitherto paid to His Highness the Pieshwa by the Bhao shall be continued to be paid to His Highness. The British Government do not demand any tribute for themselves.

Article 7.

If Rajah Ambagie Ingla at any time molest the possessions of the Bhao, the British Government shall interfere to prevent him.

Article 8.

Accusations of disaffection or disobedience, if adduced by any person against the Bhao, shall not be attended to by the

British Government unless the truth of them be proved.

Article 9.

Sheo Rao Bhao possesses a house in the city of Benaras; if any of the children, brothers, or other relations of the Bhao hereafter reside in that city, they shall enjoy the protection of the British Government, and shall not suffer any molestation.

This aggrement, containing nine Articles, signed and sealed by Captain John Baillie, Political Agent, on the part of His Excellency General Lake, Commander-in-Chief, and by Sheo Rao Bhao, Soobedar of Jhansi, in Camp at Kotra, on the 6th day of February 1804, answering to the 23rd day of Shuwaul 1218 Hijery, and 10th day of Phagoon Boodee 1860 Sumbut, is delivered to Sheo Rao Bhao, and another of the same date, tenor, and contents signed and sealed by the parties on the same day, is delivered to Captain John Baillie. Whenever the ratification of this Agreement, under the seal and signature of His Excellency General Lake, or of His Excellency General Lake, or of His Excellency the Most Noble the Governor-General in Council shall be delivered to Sheo Rao Bhao, the Bhao engages to return the Agreement.

TRANSLATION of a WAJIB-OOL-URZ presented on the part of the Rajah of JHANSI, - 18th November 1803.

Sheo Rao Bhao, Chief of Jhansie and other places submits the following requests in separate Articles hopes that they may be granted by the British G

1st.- The degree of rank and respectablity which I have hitherto enjoyed under His Highness the Pieshwa shall be continued and increased under the British Government.

2nd.- The country and forts which I at present hold under the authority of His Highness the Pieshwa shall remain in my possession, and the revenue which I have hitherto paid to the Pieshwa shall hereafter be paid to the Company's treasury.

3rd.- As the English are now employed in the conquest of the territories and forts of Dowlut Rao Scindia and Holkar, let a battlion or two with an Officer of rank be sent here and I shall join and assist them in conquering the countries which were adjacent to my own.

4th.- If the Honorable Company be desirous of possessing my country and fort, they are masters and every way powerful, and I am ready to submit; but as the British Nation and His Highness the Peishwa are at peace, and as a Treaty exists between them, let an order of His Highness be produced, that I may perform the duty of allegiance in obeying that order.

5th.- If the Peishwa at any future period make over my country to the Company, and it becomes a part of the British possessions, let a Jaidad be assigned to me for the support of my cavalry and infantry, and for the maintenance of myself and family in perpetuity.

6th.- As the Rajahs of Candahar, Duttees, Chundery and other Chiefs in the neighbourhood are ready to submit to and become the servants of the British Government, let the possessions of these Chiefs be guaranteed, and the revenue which

they have paid to the Pieshwa shall be paid into the British treasury.

7th.- Let every arrangement with me be concluded through the medium of Rajah Himmat Bahadur.

Signed and sealed under the authority of Sheo Rao Bhao by his vakeel Izzul Khan.

अध्याय - ६

अंग्रेजनिष्ठ रामचन्द्रराव (१८१५-३५)

१ - शासन के प्रारम्भिक वर्ष -

शिवराव भाऊ की मृत्यु (६ दिसम्बर, १८१४) के पश्चात उसका ७ वर्षीय पौत्र रामचन्द्रराव गद्दी पर बैठा। रामचन्द्रराव शिवराव भाऊ के स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र कृष्णराव का पुत्र था। इसका उल्लेख पांचवे अध्याय में किया जा चुका है कि शिवराव भाऊ अपने जीवनकाल के अन्तिम वर्षों में अपने इसी पौत्र रामचन्द्रराव को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था[१]। इसका सम्भवत: मुख्य कारण यह था कि कृष्णराव ज्येष्ठ होने के नाते स्वाभाविक रूप से शिवराव भाऊ का - उत्तराधिकारी था और अगर वह जीवित रहता, तो ऐसी स्थिति में वही झांसी की गद्दी पर बैठता और फिर उसकी मृत्यु के पश्चात् रामचन्द्र स्वाभाविक रूप से उसका उत्तराधिकारी होता। शिवराव भाऊ अपने दोनों पुत्रों को छोड़कर पौत्र को ही क्यों उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, इसके कारणों की विवेचना इसके पहले के पांचवे अध्याय में की जा चुकी है[२]।

रामचन्द्रराव को झांसी की गद्दी पर बैठाने के पश्चात् उसके मुख्तार गोपालराव भाऊ ने बुन्देलखण्ड में स्थित अंग्रेजों के पौलिटिकल एजेन्ट वाकचौप के माध्यम से गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स से आग्रह किया कि वह रामचन्द्र को झांसी के राजा के रूप में मान्यता दे दे और इस मान्यता के प्रतीक स्वरूप उसको एक खिलअत, एक घोड़ा और हाथी प्रदान करे। अभी तक अंग्रेज सरकार बुन्देलखण्डी राजे रजवाड़ों को खिलअत प्रदान करने की परम्परा अपनाती रही थी। किन्तु गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल ने फिलहाल रामचन्द्र को न तो मान्यता ही दी और न खिलअत ही भेजी[३]। उनका तर्क वही था जो वे शिवराव भाऊ को देते आ रहे थे

---

१ - अध्याय ५ पृ० ८७-८८ ।

२ - वही ।

३ - फा० पौलि० कन्स० २८ मार्च १८१५ नं० ५३, २८ जून १८१५ नं० ७२, ४ जुलाई, १८१५ नं० ५६, ६ नवम्बर १८१६ नं० ५६-६१ ।

कि फांसी की सूबेदारी पेशवा के अधीन है, इसलिए फांसी के किसी भी सूबेदार को पहले पेशवा से मान्यता प्राप्त करनी चाहिए । तभी अंग्रेजी सरकार उन्हें - मान्यता देगी । चूंकि रामचन्द्रराव के मुख्तार (मैनेजर) गोपालराव भाऊ ने पूना की मान्यता की उपेक्षा कर सीधे गवर्नर जनरल से मान्यता चाही थी, इसलिये गवर्नर जनरल ने उसे न तो फांसी के सूबेदार के रूप में मान्यता ही दी और न खिलअत ही प्रदान की । इस बात को लेकर रामचन्द्रराव का मुख्तार गोपाल - राव भाऊ सम्भवत: काफी क्षुब्ध हुआ और साथ ही गवर्नर जनरल से शिवराव की मृत्यु के बारे में अब तक कोई शोक सम्वेदना का संदेश न मिलने से और अधिक परेशान हो उठा । इस बात को ही समफकर बुन्देलखण्ड में स्थित अंग्रेजों के पोलिटिकल एजेन्ट वाऊचोप ने गवर्नर जनरल को एक पत्र भेजकर[3] उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि शिवराव भाऊ की मृत्यु (१४ दिसम्बर, १८१४) हुए लगभग ६ महिने गुजर चुके हैं किन्तु अब तक गवर्नर जनरल की ओर से कोई सम्वेदना पत्र रामचन्द्र को न भेजे जाने के कारण वह चिन्तित और परेशान सा हो उठा है । इसलिए वाऊचोप ने गवर्नर जनरल से निवेदन किया कि यह सम्वेदना पत्र यथाशीघ्र रामचन्द्र को प्रेषित कर दिया जाय[4]। इस पत्र के प्रत्युत्तर में गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी एडम (ADAM) ने वाऊचोप को सूचित किया कि रामचन्द्र को शिवराव भाऊ की मृत्यु पर गवर्नर जनरल की ओर से कोई सम्वेदना पत्र इसलिए नहीं भेजा गया है, क्योंकि रामचन्द्रराव ने शिवराव भाऊ के देहावसान की कोई औपचारिक - सूचना गवर्नर जनरल को नहीं भेजी थी । अस्तु एडम ने वाऊचोप को सुफाया कि वह रामचन्द्र से अपने पितामह की मृत्यु की खबर देते हुए एक पत्र गवर्नर जनरल को प्रेषित करने की परामर्श दे[5]। तदनुसार वाऊचोप ने उपरोक्त परामर्श पत्र फांसी प्रेषित किया जिसके फलस्वरूप रामचन्द्र की ओर से शिवराव भाऊ की मृत्यु की सूचना देते हुए एक औपचारिक पत्र गवर्नर जनरल को भेजा गया और बदले में उसे

---

४ - फा० पोलि० कन्स० २८ जून १८१५ नं० ७२ ।

५ - फा० पोलि० कन्स० ४ जुलाई १८१५ नं० ५६ ।

गवर्नर जनरल का एक सम्वेदना पत्र प्राप्त हुआ[६], जिससे रामचन्द्रराव अंग्रेजों की ओर से कुछ तो आश्वस्त हो ही गया ।

२ - पेशवाई का अन्त

जिस समय रामचन्द्रराव फांसी की गद्दी पर बैठा, उस समय मराठों की स्थिति अच्छी नहीं थी । मराठा साम्राज्य धीरे धीरे पतन की ओर उन्मुख हो रहा था । अपने सरदारों सिंधिया, होल्कर आदि का विरोध लेने से और अंग्रेजों से बेसीन की सहायक संधि कर लेने के कारण पेशवा बाजीराव द्वितीय की प्रतिष्ठा को बड़ी हानि पहुंची थी और उसका मराठा संघ के सर्वे सर्वा होने का जादू टूट चुका था । उसकी स्थिति निज़ाम और अवध के नवाब की तरह ही हो गई थी, जो कि पेशवा की तरह अंग्रेजों से पहले ही सहायक संधि कर पंगु हो गये थे । पेशवा बाजीराव द्वितीय को बेसीन की संधि के पश्चात् यह स्थिति खांसने लगी थी और वह अपने पद की खोयी प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो उठा था । फरवरी, १८१४ के एक पत्र में नागपुर में स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट ने गवर्नर जनरल को भोंसले तथा पेशवा के बीच बढ़ते सम्बन्धों के बारे में सूचित किया । बाजीराव भारतीय राजाओं को अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित करना चाहता था । फरवरी १८१५ में पेशवा ने लाहौर के रणजीतसिंह के दरबार में एक एजेन्ट भेजा था । इसी प्रकार दिसम्बर, १८१५ में नागपुर के भोंसले ने रावजी परसराम नामक एक व्यक्ति को हैदराबाद एक गुप्त मिशन के लिए भेजा । उसने सिंधिया और होल्कर को अंग्रेजों के विरुद्ध करना चाहा । सन् १८१६ के अन्त तक मराठा संघ में गुप्त - वार्ताओं के समाचार अंग्रेजों को प्राप्त होते रहे थे[७] । इधर अंग्रेजों से उसके सम्बन्ध पिंडारियों के दमन को लेकर बिगड़ने प्रारम्भ हो गये थे । सन् १८१४ में गायकवाड़ पर पेशवाई कर्ज़ को लेकर एक ओर पेशवा और दूसरी ओर गायकवाड़ और उसके

---

६ - फा० पौलि० कन्स० ६ अगस्त, १८१५ नं० ४२, २० सितम्बर, १८१५ नं० १८, ६ सितम्बर, १८१५ नं० २७ ।

७ - बाजीराव सेकिंड एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी (गुप्ता), पृ० १६८-७० ।

पृष्ठ-पोषक अंग्रेजों के बीच जैसे ठन-सी गई। अंग्रेज इस प्रश्न का शीघ्र ही हल चाहते थे। अन्त में निश्चित हुआ कि गायकवाड़ के मंत्री गंगाधर शास्त्री को इस सम्बन्ध पर वार्तालाप करने के लिए पूना भेजा जायगा। गायकवाड़ अहमदाबाद को पट्टे के रूप में लेना चाहता था। अंग्रेज भी यही चाहते थे। किन्तु पेशवा ने गंगाधर से बात करने से इन्कार कर दिया। इससे वातावरण उग्र हो उठा। अब अंग्रेजों ने गंगाधर को लौट आने को कहा, किन्तु यदि वह बड़ौदा लौट जाता तो गायकवाड़ उसका मज़ाक बनाता। इसलिए उसने कहा कि वह कुछ करके ही लौटेगा। अब तक पेशवा भी उससे बात करने को तैयार हो गया किन्तु कर्ज़ के बारे में दोनों के विचार एक न हो सके। अन्त में पन्दरपुर में पेशवा के प्रिय पात्र त्रिंबकजी ने गंगाधर की हत्या करदी। इससे स्थिति विस्फोटक हो उठी, जिसका अन्त अंग्रेज मराठा युद्ध से हुआ[८]।

गंगाधर की हत्या से अंग्रेज सक्रिय हो उठे। पूना में स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट एलफिन्सटन ने पेशवा बाजीराव द्वितीय को जून १८१७ की संधि करने के लिए बाध्य किया। इस संधि से मराठा संघ समाप्त हो गया। पेशवा ने बेसीन की संधि की पुष्टि की। उसने बड़ौदा पर पिछले दावे समाप्त कर दिये। उसे अहमदाबाद गायकवाड़ को देना पड़ा तथा बुन्देलखण्ड में उसकी प्रभुसत्ता समाप्त हो गई[९]।

३ - झांसी अंग्रेजी प्रभुसत्ता के अधीन -

बुन्देलखण्ड में पेशवा के हित समाप्त हो जाने से झांसी का राज्य भी सीधे अंग्रेजों के अधिकार क्षेत्र में आ गया और तब गवर्नर जनरल और उसकी काउंन्सिल को रामचन्द्र को झांसी का वैध सूबेदार मान लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं रही। शिवराव भाऊ से अपने पुराने अच्छे सम्बन्धों और अंग्रेज सरकार के प्रति उसकी निष्ठा व भक्ति को देखते हुए, रामचन्द्रराव को झांसी

---

८ - बाजीराव सेकिंड एण्ड ईस्ट इंडिया कम्पनी (गुप्ता) पृ० ११७-३६ ।

९ - एचीसन भाग ६ पृ० ६४-७०, बाजीराव सेकिंड एण्ड ईस्ट इंडिया कम्पनी (गुप्ता) पृ० १६३-६४ ।

के सूबेदार के रूप में मान्यता देते हुए अंग्रेज सरकार ने उससे नवम्बर १८१७ की एक संधि की । इस संधि की औपचारिक बातें वही थीं, जो सन् १८०४ में शिवराव भाऊ से की गई संधि में थीं।[१०] इस संधि में उल्लिखित बातें इस प्रकार थीं -

" अंग्रेज सरकार की फांसी के मृत सूबेदार शिवराव भाऊ से ६ फरवरी १८०४ अथवा फाल्गुन वदी १०, सम्वत् १८६० को एक संधि हुई थी जबकि उपरोक्त सूबेदार पेशवा के अधीन सामन्त था । अब चूंकि १३ जून १८१७ को पेशवा और अंग्रेजी सरकार के बीच जो पहली संधि से सम्बन्ध स्थापित हुए थे, समाप्त हो गये हैं । अस्तु दिवगंत सूबेदार शिवराव भाऊ के बहुत ही सम्मा- नीय व्यक्तित्व और अंग्रेज सरकार के प्रति एक सी निष्ठा पूर्ण भक्ति तथा उसकी मृत्यु के पूर्व व्यक्त की गई इस इच्छा को ध्यान में रखते हुए कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पौत्र रामचन्द्रराव को फांसी राज्य का स्थायी शासक मान लिया जाय, तथा उसकी अल्पव्यस्कता के समय तक रावगोपालराव भाऊ को उसका व्यवस्थापक नियुक्त कर दिया जाय, इन सब बातों को ध्यान में रखकर और फांसी की सरकार के मैत्रीपूर्ण व्यवहार तथा इस संधि की शर्तों का कठोरता से पालन करने के विश्वास पर कुछ शर्तों पर अंग्रेज सरकार रावरामचन्द्रराव को शिव- राव भाऊ के राज्य के उन प्रदेशों का वंशानुगत राजा मानने की सहमति प्रदान करती है, जिनको कि शिवरावभाऊ बुन्देलखण्ड में अंग्रेज सरकार स्थापित होने के समय तक नियंत्रित करते थे और जोकि अब फांसी की सरकार के नियंत्रण में है । निम्नलिखित समझौते की शर्तें अंग्रेज सरकार और रावरामचन्द्रराव के बीच उसके (मुख्तार), मैनेजर गोपालराव भाऊ की सम्मति तथा निर्देशन से तय हुई :-

१ - ६ फरवरी १८०४ को जो शिवराव भाऊ से अंग्रेजों की संधि हुई उसकी पुष्टि की जाती है, केवल उसके उन भागों को छोड़कर जिन्हें कि संधि की इस धारा द्वारा बदल दिया गया है या रद्द कर दिया गया है ।

---

१० - अध्याय ५ पृ० ८०-८१ , एचीसन भाग ५ पृ० ६४-६७ ।

२ - अंग्रेजी सरकार रामचन्द्रराव उसके वंशओंवारिसों तथा उत्तराधिकारियों को फांसी के उन प्रदेशों का वंशानुगत शासक स्वीकार करती है जोकि शिवराव के पास अंग्रेजी सरकार के बुन्देलखण्ड के अधिकार के समय थे। इसमें परगना मौठ अलग है जोकि फांसी सरकार के पास राजा बहादुर ने गिरवीं रखा था। इसकी स्थिति वैसी ही रहेगी जब तक कि रहननामों का समफौता न हो जाय। अंग्रेजी सरकार रामचन्द्रराव के उपरोक्त प्रदेशों को विदेशी शक्तियों के आक्रमण से बचाने की जिम्मेदारी लेती है।

३ - उपरोक्त धारा के अनुसार विदेशी आक्रमणों से फांसी की रक्षा करने की जिम्मेदारी तो ब्रिटिश सरकार लेती है, लेकिन दोनों दलों के बीच यह तय हुआ कि जब भी फांसी के राज्य को विदेशी शक्ति के आक्रमण की, किसी दावे या अन्य किसी कारण से आशंका होगी तो वह पूर्ण स्थिति से अंग्रेजी सरकार को परिचित करायेगी और अगर अंग्रेजी सरकार बीच में मध्यस्थता कर कोई निर्णय देगी तो अंग्रेजी सरकार की न्यायप्रियता पर विश्वास कर उसके फैसले को पूरा पूरा मान लेगी। अंग्रेजी सरकार अपना विरोध आदि प्रकट करके आक्रमक शक्ति को रोकने का प्रयत्न करेगी और अगर इसमें सफलता नहीं मिली तो वह सूबेदार के राज्य को बचाने के लिए जो भी उचित समफेगी, करेगी।

४ - उपरोक्त गारण्टी और संरक्षण के बदले में फांसी के राजा रामचन्द्र जब भी अंग्रेजी सरकार को ज़रूरत होगी अपने खर्च पर अपनी सेनायें अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिए भेजेगा। जिनमें दोनों सरकारों का हित होगा। ऐसे अवसरों पर फांसी की सेनायें अंग्रेज सेनापति के अधीन रहेंगी।

५ - रावरामचन्द्रराव अन्य राज्यों से अपने विवादों के पंच फैसलों के लिए अंग्रेजी सरकार के सामने प्रस्तुत करने को और उसके निर्णय मानने को बाध्य होगा।

६ - रावरामचन्द्रराव अपने राज्य की सड़कों और दरों से कम्पनी के शत्रुओं और आक्रमणकारी दलों को कम्पनी के प्रदेशों में घुसने से रोकेगा।

७ - अगर कभी अंग्रेज सरकार को रावरामचन्द्र के प्रदेशों में सेना भेजने या वहां उनके राज्य के भीतर अंग्रेजी सेना रखने की आवश्यकता पड़ी तो अंग्रेजी सरकार

ऐसा कर सकेगी तथा रामचन्द्रराव अपनी सहमति देगा । इस प्रकार भेजी या रखी गयी अंग्रेज सेना का सेनापति भांसी की सरकार के आंतरिक मामलों में किसी भी तरह का कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा और अंग्रेजी सेनाओं को जिन भी वस्तुओं की आवश्यकता होगी उन्हें रावरामचन्द्र के अधिकारी और प्रजा उस समय प्रचलित भावों पर प्रदान करेंगे ।

८ - रावरामचन्द्र बिना अंग्रेजी सरकार की पूर्व अनुमति के किसी भी बाहरी राज्य से कोई पत्र व्यवहार नहीं करेगा ।

९ - रावरामचन्द्र अपने राज्य में अंग्रेजी सरकार के अपराधियों या भागे हुओं को शरण नहीं देगा और जो भी अंग्रेज सरकार के अधिकारी भेजे जायंगे उनकी पूरी पूरी सहायता करेगा ।

१० - दस धाराओं की यह संधि अंग्रेजी सरकार और रामचन्द्र के बीच जान वाऊ-चौप तथा नाना बलवन्तराव की मध्यस्थता से तय हुई । अंग्रेजों की ओर से वाऊ-चौप ने और सूबेदार रामचन्द्रराव की ओर से नाना ने अंग्रेजी, फारसी और - हिन्दी की दो दो प्रतियों पर हस्ताक्षर किये । वाऊचौप ने १७ नवम्बर १८१७ को हस्ताक्षर किये और पिपरी में १८ नवम्बर को सरकार के फारसी सचिव - (सेक्रेटरी) ने इसकी पुष्टि की ।[११]

इस प्रकार रामचन्द्रराव और उसके उत्तराधिकारियों को शिवरावभाऊ के अन्तर्गत शासित प्रदेशों का वंशानुगत शासक मान लिया गया । इसमें मौंठ का परगना अलग रखा गया, जो बन्धक था ।[१२] इसके बदले में रामचन्द्रराव ने भी ब्रिटिश सरकार को अपने राज्य में से ७४००० हजार रुपये कर के रूप में देने स्वीकार किये ।[१३]

---

११ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३६ नं० ४२, एचीसन भाग ७ पृ०६७-६८
संधि के मूल स्वरूप के लिए अध्याय के अंत में संलग्न परिशिष्ट १ देखें ।

१२ - भांसी गजे० पृ० ५० (नया) ।

१३ - मैलसन भाग ३ पृ० ११६ ।

४ - रामचन्द्रराव की अंग्रेज निष्ठा -

इस संधि के पश्चात् रामचन्द्रराव अंग्रेजों के प्रति निष्ठावान् बना रहा। प्रथम वर्मा अंग्रेज युद्ध के समय १८२४ में रामचन्द्रराव ने ७४००० रु० देकर अंग्रेजों की सहायता की और जब बाद में अंग्रेज सरकार ने उसका भुगतान करना चाहा तब रामचन्द्रराव ने उदारतापूर्वक इस रकम को कर्ज़ न मानकर अनुदान माना और कर्ज़ का भुगतान सौजन्यता पूर्वक अस्वीकार कर दिया।[१४] अंग्रेजी सरकार पर इसका रामचन्द्र के मनोनुकूल प्रभाव पड़ा। अंग्रेज सरकार पर उसकी निष्ठा का सिक्का जम गया और गवर्नर जनरल ने " बहुत ही सौजन्यपूर्ण व्यक्ति " ~~कहकर~~ (A MAN OF MOST AMIABLE DISPOSITION) कहकर उसकी प्रशंसा की।[१५] इसी प्रकार जब १८२५ ई० में भरतपुर के घेरे के समय मध्यभारत में अव्यवस्था और लार्ड कांम्बरमियर के सेनापतित्व में अंग्रेजी सेनायें भरतपुर का घेरा डाले थीं, तब स्थिति का लाभ उठाते हुए एक विद्रोही नेता नाना पंडित ने काल्पी पर आक्रमण कर दिया। काल्पी इस समय अंग्रेजों के अधिकार में थी। अब बुन्देलखण्ड में स्थित अंग्रेज पौलिटिकल एजेन्ट एन्सिली (ANSLIE) ने रामचन्द्र से सहायता की याचना की। रामचन्द्र ने तुरन्त ही ४०० घुड़सवारों, १००० पैदल सैनिकों और २ तोपें अंग्रेजों की सहायता के लिए काल्पी की ओर रवाना करदी। रामचन्द्र द्वारा भेजी गई सेना समय पर काल्पी आ पहुंची और इस प्रकार काल्पी विद्रोहियों के हाथ में जाने से बच गई।[१६] इसी प्रकार ठगों के दमन में झांसी के राजा रामचन्द्रराव ने अंग्रेजों की सहायता कर उनकी सहानुभूति और अधिक प्राप्त करली। उसने अंग्रेज सैनिकों की सहायता के लिए १८३१ में एक सैनिक टुकड़ी भी भेजी। जिससे झांसी, दतिया तथा बुन्देलखण्ड के ~~लगभग~~ अन्य राज्यों से लगभग १०८ ठग

---

१४ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७७ ।

१५ - वाह्मान्कर पृ० १६ ।

१६ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७७, हौलकौम्ब पृ० १० ।

कैद किये गये । इस पर अंग्रेजी सेना के सेनापति स्लीमैन ने गवर्नर जनरल लार्ड - विलियमबेन्टिक को एक पत्र द्वारा सुफाया कि सूबेदार रामचन्द्रराव तथा उसके दल को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।[१७] इस प्रकार रामचन्द्रराव की अंग्रेजी - साम्राज्य के प्रति एक निष्ठता और सद्भावना से लार्ड विलियमबेन्टिक अत्याधिक प्रभावित हुआ । रामचन्द्रराव के अंग्रेजों से सम्बन्ध दिनों दिन घनिष्ठ होते गये । इसी घनिष्ठता को ध्यान में रखकर जब गवर्नर जनरल बुन्देलखण्ड से होकर सागर की ओर जा रहा था, तब मार्ग में वह रामचन्द्र को सम्मान देने के लिए फांसी रुका । रामचन्द्रराव ने उसकी आवभगत में कोई कसर नहीं रखी और उसके सम्मान में एक दरबार भी आयोजित किया गया । बेन्टिक रामचन्द्रराव की अंग्रेजों के प्रति भक्ति से पहले ही से बहुत प्रभावित था । फांसी में अपने स्वागत सत्कार से वह बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और २० दिसम्बर १८३२ को भरे दरबार में उसने रामचन्द्रराव को " महाराजधिराज फिदवी बादशाह जामजाह इंगलिस्तान " की उपाधि से विभूषित किया तथा उसे " नक्कारा " और " चंवर " जैसे राज्य चिन्ह भी भेंट किये।[१८]

रामचन्द्रराव इस सम्मान से कृत्य-कृत्य हो उठा और उसने अंग्रेजों के प्रति अपनी दासवृत्ति से प्रेरित होकर महामहिम गवर्नर जनरल से विनय की कि वह उसे अंग्रेजी राज्यसत्ता का परम प्रतीक यूनियन जैक फण्डा देकर उपकृत करें, जिसे वह फांसी के किले के सबसे ऊंचे बुर्ज पर ~~कलहराकर~~ फहराकर जैसे स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करे । विलियमबेन्टिक ने अत्यन्त शालीनता पूर्वक उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर उसे अनुगृहीत किया।[१९] इस प्रकार रामचन्द्र

---

१७ - फा० पौलि० कन्स० १८ मार्च १८३१ नं० १७-१८ ।

१८ - फा० पौलि० कन्स० १२ फरवरी १८३३ नं० २६-२७, १४ जनवरी १८३३ नं० ५-८,१०, २३ जून १८५४ नं० ११७, ३१ मार्च १८५४ नं० १७७ ।

१९ - फा० पौलि० कन्स० १४ जनवरी १८३३ नं० ५ ।

राव की अंग्रेजों के प्रति निष्ठा की कहानी में कुछ और कणियां जुड़ गईं । जैसे फांसी को और अधिक अंग्रेजों के समीप लाने के लिए बेन्टिक ने अपने १ फरवरी १८३३ के पत्र में आदेश दिये कि फांसी के राजा और अंग्रेज सरकार के बीच जो पत्र व्यवहार फारसी में होता था वह अब अंग्रेजी में किया जाय । लेकिन फांसी के राजा की सुविधा के लिए पत्र व्यवहार की एक प्रति फारसी में भी भेजी जायगी[२०] ।

५ - रामचन्द्र के पड़ोसी बुन्देला राज्यों से सम्बन्धों का अनुशीलन

इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि रामचन्द्र राव के अल्पवयस्क होने के कारण शिवरावभाऊ ने अपने जीवन के अन्तिम काल में नानाभाऊ को उसका संरक्षक और गोपालराव भाऊ को उसका मुख्तार नियुक्त कर दिया था[२१] । शिवराव भाऊ की मृत्यु (६ दिसम्बर १८१४) के पश्चात गोपालराव भाऊ अपनी मृत्यु पर्यन्त (सन् १८२२[२२]) फांसी के शासन और फांसी राज्य के अंग्रेजों तथा पड़ोसी बुन्देला राज्यों से सम्बन्धों का निर्देशन और नियंत्रण करता रहा । रामचन्द्रराव के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्ष कुछ बड़े ही कठिनाई और परेशानी के थे । रामचन्द्रराव को प्रारम्भ में जैसाकि विदित है, न तो पेशवा से ही मान्यता मिली थी और न अंग्रेज सरकार ने ही उसे मान्यता दी थी । क्योंकि वह फांसी राज्य को पेशवा के अधीन समझती थी और जब तक रामचन्द्रराव को पेशवा से मान्यता न मिले तब तक स्वयं मान्यता देने में िझकती थी[२३] । इसलिए शुरु के दो ढ़ाई वर्षों तक स्थिति अनिश्चित ही बनी रही थी । जब जून १८१७ में बुन्देलखण्ड में मराठा प्रभुसत्ता अंग्रेजी सरकार को हस्तांतरित करदी गई तब कहीं अंग्रेजी सरकार ने रामचन्द्रराव से नवम्बर सन् १८१७ में संधि कर उसे फांसी का शासक स्वीकार किया था । जैसाकि इस अध्याय

---

२० - फा० पौलि० कन्स० १२ फरवरी १८३३ नं० २७ ।

२१ - अध्याय ५ पृ० ८९ ।

२२ - फा० पौलि० कन्स० ७ जून १८२२ नं० ३४ ।

२३ - अध्याय ५ पृ० ८७-८९ ।

के प्रारम्भ में ही बताया जा चुका है कि रामचन्द्रराव की इस नाज़ुक स्थिति से झांसी के पड़ोसी बुन्देला राज्यों को झांसी राज्य के विरुद्ध उठ खड़े होने का मौका मिला। अष्टभैया और ककरवई के बुन्देला सरदारों ने झांसी राज्य को न केवल राजस्व देना ही बन्द कर दिया बल्कि झांसी के कुछ गांव भी हथिया लिये। इसमें उन्हें ओरछा के राजा से, जोकि इन सबका सम्बन्धी था, विशेष उकसावा मिला था। यहां स्मरण रहे कि झांसी के मराठा राज्य के अधिकांश प्रदेश ओरछा के राज्य से ही छीने गये थे, इसलिए झांसी पर ओरछा की सदैव ही टेढ़ी नज़र रही थी। इस समय ओरछा के राजा धर्मपालसिंह (१८१७-३४)[२४] को अपना बैर भांजने का मौका मिला। एक ओर तो रामचन्द्र अल्पवयस्क था ही फिर दूसरी ओर जैसाकि अंग्रेज एजेन्ट मारजोरीबैंग्स का अनुमान था कि ओरछा के राजा ने यह भी कल्पना की थी कि पेशवा के अभी हाल ही में हटा दिये जाने से अंग्रेजी सरकार झांसी के सूबेदार का पहले जैसा ख्याल नहीं रखेगी[२५]। अस्तु ओरछा के राजा के विचार में झांसी राज्य इस समय नि:सहाय था, उसका संरक्षक पेशवा हट चुका था और अंग्रेजी सरकार भी झांसी के सूबेदार के प्रति पहले जैसी उन्मुख नहीं थी। अतएव ओरछा के राजा ने अपने सम्बन्धियों अष्टभैयों और ककरवई के जागीरदारों से झांसी राज्य में उपद्रव करवा दिये और उन्होंने झांसी के कई गांवों पर अधिकार कर लिया। झांसी को राजस्व देना वे पहले ही बन्द कर चुके थे। पर झांसी का मुख्तार गोपालराव भाऊ योग्य और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति था। उसने अष्टभैयों और ककरवई के जागीरदारों के विरुद्ध कठोर सैनिक कार्यवाही की जिसके फलस्वरूप ओरछा के राजा और उपरोक्त जागीरदारों को यह मामले बुन्देलखण्ड के एजेन्ट के सामने ले जाने को विवश हो जाना पड़ा। फिर यह बात भी थी कि ओरछा का राजा और झांसी का सूबेदार दोनों ही अंग्रेजी सरकार से अपनी पहले की संधियों की एक शर्त के अनुसार इसके लिए बाधित थे कि वे अपने विवादों को पंच

---

२४ - ओरछा गज़ि० पृ० ३५ ।

२५ - फा० पौलि० कन्स० १८२१ नं० ३२ ।

फैसले के लिए अंग्रेजी सरकार के सामने प्रस्तुत करें।[२६] संक्षेप में अष्टभैया और ककरवई के जागीरदारों तथा टहरौली को लेकर जो झगड़े झांसी के सूबेदार से हुए उनका ~~संक्षेप~~ और उन पर अंग्रेजी सरकार के निर्णयों का विवरण इस प्रकार है -

<u>अष्टभैया विवाद</u>

अष्टभैया जागीरदार ओरछा के बुन्देला राज्यवंश की ही शाखा के होने के कारण ओरछा के राजा के कुटुम्बी थे। ओरछा के राजा उद्योतसिंह (१६८९-१७३५) ने सन् १६९० के लगभग अपने भाई दीवान रायसिंह को बड़ागांव की जागीर दी थी। रायसिंह की मृत्यु के उपरान्त यह जागीर उसके ८ पुत्रों में बट गई और इस प्रकार बड़ागांव की एक जागीर के स्थान पर ८ जागीरें बन गईं। ये जागीरें थी - कर्वी, पसारी, तरावली, चिरगांव, धुरवई बिजना, टोड़ीफतेहपुर और बंका पहाड़ी। इन ८ जागीरों के जागीरदारों को सम्मिलित रूप से अष्टभैया कहते थे और उनकी जागीरें अष्टभैया जागीरों के नाम से जानी जाती थीं।[२७]

उपरोक्त जागीरों के जागीरदार लगभग ५० साल से झांसी के सूबेदार के अधीन थे और लगभग १७९५ तक झांसी के सूबेदार को खंडणी देते रहे थे। सन् १७९५ के पश्चात पूना दरबार की स्थिति कमजोर होने के कारण झांसी के सूबेदार की भी स्थिति निर्बल हो गई थी और १७९५ के बाद से सन् १८१२ में भाऊ के बीमार पड़ने तक इन अष्टभैयों से न तो खंडणी ही वसूल की जा सकी थी और न ही उन्हें दबाये रखा जा सका था। फलस्वरूप भाऊ के काल में वे काफी उदण्ड हो गये थे और भाऊ के राज्य-काल में ही अंग्रेजों के पास झांसी से यह शिकायतें आई थीं कि अष्टभैया सिर

---

२६ - ऐचिसन भाग ५ पृ० ९५ धारा २, पृ० ९६ धारा ५, पृ० ८५ धारा ४ ।

२७ - सेन्ट्रल गजे० पृ० ३६३-६६ ।

उठा रहे हैं, राज्य कर नहीं देते और फांसी से भागे हुए अपराधियों को शरण दे रहे थे। इतना ही नहीं वे फांसी के सूबेदार का सामना करने की तैयारियां भी करने लगे थे और उन्होंने अपनी गढ़ियों को सुदृढ कर लिया था। इसलिए फांसी के सूबेदार ने उनका दमन करने के लिए अंग्रेजी सरकार से सैनिक सहायता और गढ़ियों को तोड़ने के लिए तोपें, गोला बारूद आदि की भी मांग की थी। सन् १८१२ में भाऊ के बीमार पड़ जाने से गोपालराव भाऊ के हाथों में मुख्तार के रूप में सत्ता आई। इसी बीच इन अष्टभैया जागीरदारों ने फांसी के खालसा के भी कुछ गांव दाब लिये और उन्होंने अपनी फांसी विरोधी कार्यवाहियां जारी रखीं। इसमें उन्हें ओरछा के राजा से भी बढ़ावा मिल रहा था। गोपाल-रावभाऊ ने पहले फांसी की स्थिति सुदृढ की और उसके पश्चात उसने अष्टभैयों के विरुद्ध कठोर कार्यवाहियां शुरु करके फांसी के वे प्रदेश उनके कब्जे से निकाल-ना शुरु कर दिया जिन पर कि उन्होंने बलात् अधिकार कर लिया था। ये कार्य-वाहियां सन् १८१३-१६ के बीच विशेष रूप से चिरगांव, बिजना, धुरवई, पहाड़ी और टोड़ीफतेहपुर के अष्टभैया जागीरदारों के विरुद्ध की गई थी। इन जागीरों से कई गांव छिना लिये गये और उनसे खंडणी की भी मांग की गई[२८]। इन जागीर-दारों ने अब त्रस्त होकर ओरछा के राजा से हस्तक्षेप करने और अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित कर भाऊ को रोकने के लिए आग्रह किया। इस पर ओरछा के राजा ने बुन्देलखण्ड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट मैंडक से सम्पर्क स्थापित किया और स्वयं को एक पक्ष बनाकर फांसी के सूबेदार की ये शिकायतें कीं कि उसने अष्टभैयों की जागीरों में हस्तक्षेप कर उसके कई गांव जब्त कर लिये हैं और खंडणी बहुत बढ़ा दी है। ये अष्टभैया ओरछा राज्य के सम्बन्धी हैं और यद्यपि वे ओरछा राज्य को राजस्व नहीं देते फिर भी उसी के अंग हैं। इसी बीच फांसी के सूबे से भी शिकायतें आईं जिनमें कहा गया कि अष्टभैया जागीरदार ओरछा से लगभग ५० साल से अलग होकर फांसी के अधीन हैं और कर देते चले आरहे हैं। पर अब ओरछा के राजा के उकसावे पर उन्होंने फांसी के कई खालसा गांव पर अधिकार कर लिया है और फांसी राज्य के क्षेत्र पर अतिक्रमण किया है। मैंडक ने इस पर टिप्पणी दी कि पिछली जून सन् १८२० तक उसने अष्टभैयों के ओरछे के अधीन होने की बात

---

२८ - फा० पौलि० कन्स० ७ जुलाई १८२१ नं० ३२ ।

पहले कभी नहीं सुनी थी । फांसी के सूबेदार के विरुद्ध पहली बार ये शिकायतें की गई हैं । उसका तात्पर्य सम्भवत: यह था कि अगर औरछे के राजा को कोई शिकायत थी तो उसे सन् १८२० से पहले भी कभी ऐसी शिकायत करनी चाहिए थी या एतराज उठाना चाहिए था । उसने तुरन्त ही जो काम किया वह यह था कि अष्टभैया जागीरदारों की जागीरों की और फांसी के राज्य की वही स्थिति करदी जो मई १८२० में अर्थात् जून १८२० की औरछे की शिकायत के पहले थी और उसने दोनों ही पक्षों को अंग्रेजी सरकार के निर्णय होने तक शान्त रहने को कहा । फांसी की सरकार ने तो इसे मान लिया किन्तु अष्टभैयों ने अपने अतिक्रमण जारी रखे, जिससे मैल्क काफी असंतुष्ट हुआ । उसने इसे अंग्रेजी सरकार के आदेशों की अवज्ञा समझी और अंग्रेजी सरकार को साफ लिखा कि इन जागीर-दारों को आदेशों की अवज्ञा से लाभान्वित नहीं होने दिया जाना चाहिए । इसके बाद अंग्रेजी सरकार ने दोनों पक्षों के दावों पर विचार किया । मैल्क के बाद गवर्नर जनरल के दूसरे एजेन्ट मारजोरी बैंक्स ने भी जांच पड़ताल कर अपनी रिपोर्ट और सुझाव अप्रैल १८२१ में गवर्नर जनरल को भेजे । इन सब पर विचार कर गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल ने जो (जुलाई १८२१) महत्वपूर्ण निर्णय दिये वे इस प्रकार थे -

१ - अष्टभैया जागीरदारों को फांसी और औरछा दोनों से ही स्वतंत्र मानकर अंग्रेजी सरकार के अन्तर्गत ले लिया जाय ।
२ - फांसी के सूबेदार को जो खंडणी उनसे मिलती है उसे अंग्रेजी सरकार उनसे लेकर फांसी के सूबेदार को देती रहे ।
३ - इन अष्टभैया जागीरदारों को अंग्रेजी सरकार के अन्तर्गत तभी लिया जायगा जबकि वे ये खंडणी देना स्वीकार करलें जोकि वे पहले देते थे ।

उपरोक्त निर्णयों से स्पष्ट था कि अंग्रेजी सरकार ने अष्टभैया जागीरदारों को औरछे के अधीन नहीं माना था और न उन पर फांसी के सूबेदार की प्रभुसत्ता ही स्वीकार की थी । उन्होंने केवल इन राज्यों से फांसी के सूबेदार को खंडणी मिलने का अधिकार ही स्वीकृत किया था । गवर्नर-जनरल और उसकी काउन्सिल का विचार था कि उनके इन निर्णयों से फांसी का

सूबेदार भी संतुष्ट हो जायगा और अष्टभैया जागीरदारों को भी अंग्रेजी संरक्षण मिल ~~सम्मव~~ जाने से झांसी के सूबेदार को शोषण और अतिक्रमणों से मुक्ति मिल गई थी।[२६] यहां यह इंगित करना अनुचित न होगा कि इन निर्णयों के फलस्वरूप एक ओर जहां अष्टभैया जागीरों में अंग्रेजी प्रभाव जमा, वहां दूसरी ओर ओरछा और झांसी के बीच मन-मुटाव और बढ़ गया।

ब टहरौली

टहरौली और ककरवई को लेकर भी ओरछा और झांसी के ~~सम्बन्धि~~ सम्बन्धों में तनाव बढ़ गया था। सन् १८०८ ई० में ओरछा के राजा विक्रमाजीत (१७७६-१८१७) ने टहरौली के जागीरदार से नाराज हो गया था और तब उसने झांसी के सूबेदार से टहरौली को अपने राज्य में मिलाने की सहमति और ~~सम्मति~~ सहायता मांगी थी। तब शिवरावभाऊ ने उसे इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया था कि वह टहरौली से जो वार्षिक खंडणी झांसी को मिलती है, वह पहले की तरह ही देता रहे और टहरौली का किला ले लेने के खर्च के बाद जो बचे उसका आधा झांसी को दे दे। ओरछा के राजा ने पूरी टहरौली मय किले के हथिया ली किन्तु उसमें से कोई भाग झांसी के सूबेदार को नहीं दिया ओरछे के राजा का कहना था कि झांसी के राजा ने टहरौली के घेरे में कोई - सहायता ~~ब~~ नहीं दी, इसलिए उसने भी अपनी शर्त पूरी नहीं की। झांसी के सूबेद का कहना था कि उपरोक्त समझौता होता या न होता लेकिन उसका टहरौली की जागीर में आधा भाग था और अब यह आधा भाग भी चूंकि ओरछा के अधिकार में है इसलिए उसे उस भाग की क्षति-पूर्ति प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। दोनों पक्षों ने अपने अपने दावे अंग्रेजी सरकार के सामने रखे। वैसे तो अंग्रेजी सरकार ने उपरोक्त टहरौली के सम्बन्ध में हुए झांसी और ओरछा के बीच के - समझौते को अस्पष्ट घोषित कर दिया लेकिन चूंकि टहरौली अष्टभैया जागीरों

---

२६ - पूर्ण विवरण इन पर आधारित है, फा० पोलि० कन्स० ३ फरवरी १८२१, ~~ब~~ नं० २३, ७ जुलाई १८२१ नं० ३२, ३४ ।

में थी और टहरौली का जागीरदार के १७६६ तक पूना को खंडणी देने के उल्लेख थे। इसलिए यह मान लिया गया कि टहरौली पर झांसी के सूबेदार के कुछ तो अधिकार हैं। इस निष्कर्ष के आधार पर अंग्रेजी सरकार ने दिसम्बर १८२१ में यह तय किया कि ओरछा का राजा टहरौली पर अपने पूर्ण अधिकार के बदले में झांसी को वार्षिक ३००० रुपये टहरौली की खंडणी के रूप में देता रहे। यह रकम या तो अंग्रेजी एजेन्ट के माध्यम से झांसी के सूबेदार को दी जाती रहे या इस रकम के बदले में इतनी ही आय का एक गांव झांसी को सौंप दिया जाय।[30]

ककरवई

ककरवई के जागीरदार भी ओरछा के राजा के सम्बन्धी थे। झांसी के प्रथम सूबेदार नारोशंकर ने सन् १७४५ ई० में ककरवई को झांसी के अधीन कर लिया था। तब से ककरवई के जागीरदार झांसी के अधीन चले आरहे थे। ककरवई के जागीरदार सन् १८१४ तक अधीनता पूर्वक व्यवहार करते रहे किन्तु जैसाकि गोपालरावभाऊ का कथन था कि उसके बाद उन्होंने ओरछा के राजा के उकसाये से उपद्रव शुरु कर दिये और झांसी के कई गांव पर अधिकार कर लिया। इस पर गोपालराव ने ककरवई पर आक्रमण कर उनके कई गांव ले लिये। तब ओरछा के राजा ने ककरवई के जागीरदारों का पक्ष लेकर अंग्रेजी सरकार से गोपालराव की शिकायत की और उन्हें अपना सम्बन्धी बताकर यह दावा किया कि वे जैसे ओरछा के अधीन थे। अंग्रेजी सरकार अपनी जांच पड़ताल के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंची कि ककरवई के जागीरदारों को ४० गांव की सनद नारोशंकर से मिली थी, जिसे कि उन्होंने स्वयं प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही सन् १८१४ में उनके पास जो गांव थे वे झांसी की सेवा

----

३० - फा० पौलि० कन्स० २७ अक्तूबर १८२१ नं० ४५-४७, ८ दिसम्बर १८२१ नं० ५२-५३ ।

में १० घोड़े और १०० पैदल लाने की शर्त पर दिये गये थे । अंग्रेजी सरकार को यह प्रतीत हुवा कि सन् १८२० के लगभग ओरछा के राजा के भड़काने से उन्होंने उपद्रव किये और झांसी के गांवो पर भी अधिकार कर लिया तथा अंग्रेज एजेन्ट मैल्क के कहने पर भी उन्हें नहीं लौटाया । अंग्रेजी सरकार की राय में जागीरदारों का व्यवहार अनुचित था और इसीलिए गवर्नर जनरल ने जुलाई १८२१ में आदेश दिये कि ककरबई के जागीरदारों के पास केवल ४ गांव रहने दिये जाय और वह भी इस शर्त पर कि वे शेष ३० गांव झांसी को तुरन्त सौंप दें और उसकी अधीनता स्वीकार करलें । साथ ही यह भी सुझाव दिया कि ककरबई का किला जागीरदारों में से ही किसी एक के पास रहने दिया जाय[३१] ।

उपरोक्त अष्टभैयों, टहरौली और ककरबई के जागीरदारों के मामलों में अंग्रेजी सरकार ने यद्यपि गोपालभाऊ के व्यवहार को कठोर बताया था किन्तु फिर भी उनके फैसले झांसी के अधिक पक्ष में थे । इससे झांसी के सूबेदार और अंग्रेजी सरकार के बीच के सम्बन्ध और घनिष्ठ हुए किन्तु ओरछे के राजा को जो तीनों मामलों में मुंह की खानी पड़ी थी उससे निश्चय ही वह झांसी के प्रति अधिक कटु हो उठा ।

रामचन्द्रराव के ये सम्बन्ध इस प्रकार झांसी के - पड़ोसी बुन्देला राज्य दतिया और ओरछा से अपने शासनकाल के लगभग अन्त तक अच्छे नहीं रहे । वैसे ऊपर से तो ये राजा अच्छे सम्बन्धों का ढोंग करते रहे लेकिन साथ ही झांसी के जागीरदार अपने बुन्देला और पवार रिश्तेदारों को झांसी के राजा के विरुद्ध उकसाते रहे । उदाहरण के लिए सन् १८३४ के के प्रारम्भिक महिनों में झांसी के बुन्देला और पवार जागीरदारों को उकसाकर उन्होंने झांसी की स्थिति बड़ी ही अराजकतापूर्ण करदी । इन उपद्रवी तत्वों को उकसाने में दतिया और ओरछा का इतना साफ हाथ था कि बुन्देलखंड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट स्लाइडमैन तक को गवर्नर जनरल को भेजी रिपोर्ट में

---

३१ - फा० पौलि० कन्स० २४ मार्च १८२१ नं० ३७-३८ ।

लिखना पड़ा कि झांसी की अराजकतापूर्ण स्थिति तब तक ठीक नहीं होगी जब तक कि झांसी के जागीरदारों का दमन नहीं होगा और झांसी इन अपने जागीरदारों का दमन झांसी का राजा तब तक नहीं कर सकेगा जब तक कि दतिया और टेहरी के राजा अपने इन सम्बन्धियों और पवारों को उकसाते रहेंगे। उसने सूचित किया कि झांसी के राजा और पवारों के झगड़े के बीच दतिया के राजा द्वारा नियुक्त पंचों ने कोई निर्णय झांसी के राजा के पक्ष में दे दिया था। इस पर दतिया के राजा की पवार रानी ने दतिया के राजा से कहकर उस प्रधान सचिव को व उसके रिश्तेदारों को हथकड़ी, बेड़ियां डलवादीं। इन पवारों और बुन्देला जागीरदारों ने इस प्रकार उपद्रव करके झांसी की स्थिति बहुत खराब करदी। कई गांवों को लूटा गया, जलाया गया और बहुत से व्यक्तियों को तलवार के घाट उतारा गया। स्थानीय ब्रिटिश एजेन्ट का मत था कि " हमारे हस्तक्षेप के बिना झांसी बर्बाद हो जायगी।"[32]

पर समस्या यह थी कि यह मामला राजा का आन्तरिक मामला था और अंग्रेजी सरकार झांसी के राजा और उसके जागीरदारों के सम्बन्धों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। इसीलिए स्लाइमैन को लिखना पड़ा कि " इन उपद्रवों की मूल जड़ झांसी के राजा और उसकी प्रजा (जागीरदारों) के बीच के झगड़े हैं जिनके निपटाने के लिए हम कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते।" किन्तु फिर भी उसने चेतावनी सी देते हुए लिखा कि " मैं जानता हूं कि दतिया और ओरछा का झुकाव झांसी के उपद्रवी जागीरदारों की सहायता का है और अगर इस गठबन्धन को रोका नहीं गया तो झांसी राजा

---

३२ - फा० पौलि० कन्स० १२ जून १८३४ नं० १५०, १५२, फा० पौलि० (ओओटीए० पी० सी०) ८ सितम्बर १८३४ नं० ४० ।
(" Without our interposition the Jhansi would be ruined.)

को बहुत गंभीर चोटे पहुंचने की आशंका है ।[३३] ये उपद्रवी तत्व ग्वालियर के अधीन झांसी से लगे मांडेर में भी उपद्रव करते रहे । जिससे ग्वालियर की रानी बैजाबाई की भी टेढ़ी नज़र झांसी पर पड़ी[३४] ।

झांसी के उपरोक्त उपद्रवों कीशिकायत जब झांसी के राजा और ग्वालियर की सरकार ने ग्वालियर रेजीडेण्ट कैवेन्डिस के द्वारा की तब झांसी की सीमाओं पर इन उपद्रवों की जांच ~~महकाल~~ पड़ताल और उनके दमन के लिए यूरोपियन अधिकारियों की नियुक्ति की गयी[३५] । इसके पूर्व गवर्नर जनरल बुन्देलखण्ड के अंग्रेज पालिटिकल एजेन्ट को स्वयं झांसी जाकर जांच पड़ताल करने का सुझाव प्रेषित कर चुका था[३६] । यहां यह उल्लेखनीय होगा कि झांसी के उपरोक्त उद्गांव, नौनेर, जिगना आदि के ये पवार जागीरदार रामचन्द्रराव के शासनकाल के लगभग अन्तिम वर्षों तक उपद्रव करते रहे और झांसी, पिछोर, करैरा आदि के गांवों को जलाते और लूटते पाटते रहे । रामचन्द्रराव ने सन् १८३४-३५ में इन्हें दबाने के लिए लड़ाई छेड़ी, तब कहीं अपने रिश्तेदार दतिया के राजा के बीच में पड़ने पर उन्होंने रामचन्द्रराव से संधि करली और दतिया का राजा उनका जमानती बन गया[३७] ।

---

३३ - फा० पौलि० कन्स० १२ जून १८३४ नं० १५२ ।

"Without our interposition the JHANSI will be ruined"

("I know that there is a disposition on the part of the Rajas of Datia and Orchha to assist the refractory Jagirdars of Jhansi and that this combination if not checked, is likely to be production of most serious injury to the Jhansi state.")

३४ - फा० पौलि० कन्स० १२ जून १८३४ नं० १५१-५२, १४ अगस्त १८३४ नं० ७३,

फा० पौलि० (ओ०ओ०टी०र० पी०सी०) ६ सितम्बर १८३४ नं० १४० ।

३५ - फा० पौलि० कन्स० १२ जून १८३४ नं० १५१-५२, १० जुलाई १८३४ नं०१६१ ।

३६ - फा० पौलि० कन्स० १२ जून १८३४ नं० १५३ ।

३७ - फा० पौलि० कन्स० १३ अप्रैल १८४० नं० १२४, झांसी गजे० पृ० २०३ ।

६ - रामचन्द्रराव की मृत्यु और फांसी राज्य की बिगड़ती स्थिति -

रामचन्द्रराव का शासनकाल सामान्यत: निर्बल रहा था और जब से वह गद्दी पर बैठा था तब से लेकर उसकी मृत्यु के समय तक फांसी राज्य की स्थिति उपरोक्त उपद्रवों के कारण बड़ी ही डावांडोल सी रही । राज्य की आय १८ लाख से घटकर १२ लाख रह गई[३८] । जागीरदारों के उपद्रवों के कारण देहातों की स्थिति तो और भी सोचनीय हो उठी थी । रामचन्द्रराव जब फांसी की गद्दी पर बैठा तब उसकी आयु लगभग ७ वर्ष की थी और मृत्यु के समय जैसा कि स्लीमैन का कथन है, वह केवल २८ साल का था । वह २५ वर्ष की आयु तक तो अपनी शक्ति लोलुप माता सखूबाई के ही संरक्षण में रहा था और मरने के केवल ३ वर्ष पहले ही उसने शासन अपने हाथ में लिया था । इस प्रकार अपने शासनकाल के अधिकांश समय तक वह अपनी माता के प्रभाव में रहा था, जो ~~कल्ल~~ गोपाल भाऊ, नानाभीकाजी और गंगाधर मुळी तथा नारो गोपाल की सहायता से राज्य कार्य चलाती रही थी । रामचन्द्रराव की मृत्यु पर्यन्त उसकी माता की शक्ति लोलुपता कम नहीं हुई थी और राज्य पर अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए वह अपने पुत्र तक की शत्रु हो उठी थी । और तो और स्वयं रामचन्द्र का ऐसा अनुमान था कि उसकी माता सखूबाई उसकी जान लेने के षड्यन्त्र कर रही है, ताकि वह रामचन्द्र की बहिन के बड़े १० वर्षीय पुत्र को गद्दी पर बिठाकर फिर सत्ता अपने हाथ में ले सके । इसीलिए उसने ऐसा कहा जाता है कि रामचन्द्रराव को धीरे धीरे ज़हर देकर उसका जिगर खराब कर दिया था जिससे अन्त में २० अगस्त १८३५ को उसकी मृत्यु हो गई थी[३६] । रामचन्द्रराव मृत्यु के लगभग १ महिने पूर्व सखूबाई ने उसको मारने का एक और प्रयत्न किया था । स्लीमैन म ने लिखा है कि रामचन्द्रराव ने उसको लिखकर ऐसी आशंका व्यक्त की थी कि उसकी मां उसे ज़हर देकर मार डालना चाहती है।

---

३८ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७२, फांसी गजे० पृ० २३० ।

३६ - फा० पौलि० कन्स० २ नवम्बर १८३५ नं० २२ ।

स्लीमैन आगे लिखते हैं कि अपनी मृत्यु से १ महिने पहले रामचन्द्र ने लिखा था कि जहां वह तैरने जाया करता था, वहां एक दिन भाले गढ़े हुए थे जिनकी नौके ऊपर को थी । भाग्य से उस दिन वह पानी में उतरकर गया और उसका पांव एक भाले से टकरा गया जिससे सारा रहस्य खुल गया[४०]। स्लीमैन को भी ऐसी आशंका थी कि सखूबाई उसे मार डालना चाहती थी क्योंकि वह १८३१ तक कई वर्षों तक सत्ता का उपभोग कर चुकी थी और उसे अपने हाथ में बनाये रखने के लिये लालायित थी । रामचन्द्रराव की २५ वर्षीया युवा पत्नी को भी यही शक था कि उसकी सास ने ही विष देकर उसके पति की हत्या की थी और सदमें में वह कुछ दिनों बाद ही मर गई[४१]।

रामचन्द्रराव के शासनकाल के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि जहां एक और फांसी राज्य अपनी अंग्रेज निष्ठा के कारण ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में चढ़ा रहा था, वहां दूसरी ओर दतिया तथा ओरछा की दुरभि संधियों और अपने ही जागीरदारों के उपद्रवों तथा सखूबाई के महली षड्यन्त्रों से उसकी स्थिति अधिकाधिक खराब होती जारही थी तथा उसके विघटन के लक्षण दिखाई देने लगे थे । फिर दुर्भाग्य से रामचन्द्रराव की मृत्यु के पश्चात् औरस पुत्र के अभाव में जो उत्तराधिकार को लेकर विवाद उत्पन्न हुए, वे रघुनाथराव और बाद में गंगाधर के समय तक चलते रहे । इन सबसे फांसी राज्य में वह स्थिरता नहीं आ पायी जो उसे पनपाने के लिए आवश्यक थी और फांसी का मराठा राज्य बराबर निर्बल होता गया । ऐसी ही बिगड़ती स्थिति में डलहौजी ने उसके अन्त को अपनी राज्य हड़पने की नीति के द्वारा और समीप ला दिया ।

---

४० - रैम्बिल्स ऐण्ड रिक्लैक्शन्स आंफ एन इंडियन आफिशियल भाग १ पृ०२५६
रामचन्द्रराव लक्ष्मीताल में तैरने जाया करता था । इसी तालाब में भाले गढ़वाये गये थे । कहाजाता है कि रामचन्द्रराव को इस योजना की खबर लालू कोदलकर ने दी थी, जिसे बाद में सखूबाई ने मरवा डाला था । लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १५-१६ ।

४१ - रैम्बिल्स ऐण्ड रिक्लैक्शन्स आंफ एन इंडियन आफिशियल भाग १ पृ०२६१

No. VII.

TREATY with ROW RAMCHUND, the MINOR SOUBAHDAR of JHANSIE.

1817.

Wheress a Teaty of defensive alliance was concluded between the British Government and the late Sheo Rao Bhow, Soubahdar of Jhansi, under date the 6th of February 1804, or 10th of Phagoon Boodee 1860 Sumbat, when the said Soubahdar was in the condition of a tributary to His Highness the Pieshwa; and whereas the whole of the rights of ~~the~~ His Highness the Pieshwa over the principality of Jhansi have since that period been transfered to the British Government, in virtue of ~~x~~ a Treaty concluded between that Government and the Pieshwa, under the date 13th of June 1817, corresponding with the 14th Assar 2874 Sumbat, and in consequence of that transfer the relations established by the former Treaty between the British Government and Jhansie have become virtually extinct; and whereas the British Government in consideration of the very respectable character borne by the late Soubahdar Sheo Rao Bhao and his uniform and faithful attachment to the British Government, and in deference to his wish expressed before his death that the principality of Jhansie migh be confirmed in perpetuity to his grandson, Row Ramchund Row, to be conducted during the minority of the said Row Ramchund Row by Row Gopaul Row Bhow, manager nominated by the late Bhow and confirmed by the British Government: On these considerations and in the confident reliance of the continuance of the same friendly disposition on the part of the Government of Jhansie and of its strict adherence to the engagements comprised in this Teaty, the British Government has consented on certain

(ब)

conditions, to constitute Row Ramchund the hereditary Chief of the lands actually held by the late Row Sheo Bhow at the commencement of the British Government in Bundelkhand and now possessed by the Government of Jhansie. The following Articles have accordingly been concluded between the British Government and Row Ramchund Row, under the direction and with the concurrence of his said manager, Gopal Row Bhow.

ARTICLE 1.

T-he Treaty concluded between the British Government and the late Sheo Row Bhow, under date the 6th of February 1804, or 10th of Phagoon Boodee 1860 Sumbut, is hereby confirmed, excepting such parts of it as are altered or rescinded by the provisions of this Treaty.

ARTICLE 2.

The British Government, with a view to confirm the fidelity and attachment of the Government of Jhansie, consents to acknowledge and hereby consititutes Row Ramchund, his heirs and successors, hereditary rulers of the territory enjoyed by the late Row Sheo Bhow at the period of the commencement of the British Government, and now in the possession of Row Ramchund, excepting the Pergunnah of Mote, which being held by the Jhansie Government in mortgage from Rajah * Bahadur will continue on its present footing until a settlement of the mortgage takes place between the parties. The British Government further engages to protect the aforesaid territory of Row Ramchund from the aggression of foreign powers.

ARTICLE 3.

The British Government having by the terms of the fore-

going Article engaged to protect the principality of Jhansie from the aggressions of foreign powers, it is hereby agreed between the contracting parties that whenever the ~~B~~ Government of Jhansie shall have reason to apprehend a design on the part of any foreign power to invade its territories, whether in consequence of any disputes, claims, or on any other ground, it shall report the circumstances of the~~ss~~ case to the British Government, which will interpose its mediation for the adjustment of such disputed claim; and the Jhansie Government, relying on the justice and equity of the British Government, agrees implicity to abide by its award. If the apprehended aggressions shall be referable to any other cause, the British Government will endeavour by representations and remonstrance to avert the design, and if, notwithstanding the Soubahdar's acquiescence in the award of the British Government, the other power shall persist in its hostile designs, and the endeavours of the British Government should fail of success, such measures will be adopted for the protection of the Soubandar's territories as the circumstances of the case may appear to require.

ARTICLE 4.

In consideration of the guarantee and protection afforded by the two foregoing Articles to Row Ramchund, the Chief of Jhansie, that Chief hereby binds himself to employ his troops, at his own expense, whenever required to do so, in co-operation with those of the British Governments, ~~xxx xx~~ on all occasions in which the interests of the two Governments may be mutually concerned. On all such occasions

The Jhansie troops shall act under the orders and control of the Commanding Officer of the British troops.

ARTICLES 5.

Row Ramchund hereby agrees to submit to the arbitration of the British Government all his disputes with other States, and implicity to abide by its award.

ARTICLE 6.

Row Ramchund engages at all times to employ his utmost exertions in defending the roads and passes of his country against any enemies or predatory bodies who may attempt to penetrate through it into the territories of the Honourable Company.

ARTICLE 7.

Whenever the British Government may have occasion to send its troops through the dominions of Row Ramchund, or to station a British force within his territories, it shall be competent to the British Government so to detach or station its troops, and Row Ramchund shall give his consent accordingly. The Commander of the British troops which may thus eventually pass through or permanently occupy a position within the Jhansie territories, shall not in any manner interfere in the internal concerns of the Jhansie Government. Whatever materials or supplies may be required for the use of the British troops during their continuance in the Jhansie territories, shall be readily furnished by Row Ramchund's Officers and subjects, and shall be paid for at the price current of the bazar.

ARTICLE 8.

Row Ramchund hereby binds himself to maintain no correspondence with foreign States without the privity and consent

of British Government.

ARTICLE 9.

Row Ramchund engages to give no asylum to criminals, not to defaulters of the British Government who may abscond and take refuge within his territories; and should the Officers of the British Government be sent in pursuit of such criminals and defaulters, Row Ramchund further engages to afford such Officers every assistance in his power in apprehending them.

ARTIC-LE 10.

This Treaty, consisting of ten articles, having this day been concluded between the British Government and Row Ramchund, through the agency of John Wauchope, Esquire, in virtue of powers delegated to him by the Most Noble the Governor-General on the one part, and Nana Bulwant Row, the vakeel, on the other, Mr. Wauchope and the said vakeel have signed and sealed two copies of the Treaty in English, Persian, and Hindi, one of which, after being ratified by the seal and signature of the Most Noble the Marquis of Hastings, Governor-General, will be returned to said vakeel, and the said vakeel, having obtained the ratification of the Soubahdar to the other copy, engages to deliver it within the same time to Mr. Wauchope.

Signed,xx sealed, and exchanged at Pepree on the seventeenth day of November 1817, corresponding with the twenty-fouth Kartic 1874 Sumbut, and seventh of Mohorum 1233 Hijree.

(Sd.) J.Wachuape,
Suprintendent, Political Affair

Seal.

This treaty was ratified by His Excellency the Governor General in Camp at Pepree, on the Eighteenth Day of Nov. One Thousand Eigh Hundred and Seventeed.

अध्याय - ७

रघुनाथराव और अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत फांसी राज्य

(१८३५ - ४२)

१ - फांसी की गद्दी के उत्तराधिकार का विवाद -

रामचन्द्रराव की मृत्यु के पश्चात् फांसी राज्य की गद्दी किसे मिले, इसको लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। रामचन्द्रराव की मृत्यु नि:सन्तान हुई थी। वंश के पुरुष उत्तराधिकारियों में रामचन्द्र के दोनों चाचा रघुनाथराव और गंगाधरराव दावेदार थे। इनमें रघुनाथराव ज्येष्ठ थे। उधर रामचन्द्रराव की मृत्यु के कुछ ही पहले उसकी माता सखूबाई ने अपनी कन्या के १० वर्षीय पुत्र कृष्णराव को षड्यन्त्र रचकर रामचन्द्रराव का दत्तक पुत्र घोषित कर दिया था। स्लीमैन को इस सम्बन्ध में जो फांसी के मंत्री नारो गोपाल ने सूचना दी थी वह यह थी कि रामचन्द्रराव के मरने के कुछ घण्टे पहले उसकी मां ने कृष्णराव को दत्तक पुत्र के रूप में लिये जाने के लिए मरते हुए राजा की बाहों में डाल दिया था। उसने बताया कि उस समय राजा होश में था या नहीं वह यह नहीं बता सकता, क्योंकि उसने राजा को फिर बोलते हुए नहीं सुना था। रामचन्द्रराव के मरने के बाद उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी सखूबाई ने इसी बालक से करवाई थी और अगले दस दिनों के जो भी क्रिया कर्म होते थे, वे भी उसी से करवाये जाते रहे थे। किन्तु ११ वें दिन रघुनाथराव और उसके मित्रों ने धमकाकर और आगे के क्रिया कर्म बन्द करवा दिये थे। इस प्रकार रामचन्द्रराव के उत्तराधिकार का दावा करने वाले ३ उत्तराधिकारी तो ये थे। इनके सिवाय रामचन्द्रराव की विधवा रानी ने एक और उत्तराधिकार का दावा करने वाला इनमें जोड़ने का प्रयत्न किया। उसकी इच्छा थी कि अपने मृत पति के नाम पर उसे दत्तक पुत्र लेने की अनुमति दी जाय। उसके लिए उसने निवालकर वंश के ही नानाभाऊ गंगाधर के पुत्र -

सदाशिव को गोद लेने की इच्छा प्रकट की, जोकि उस समय ४ वर्ष का था[1]।

इस प्रकार अब फांसी राज्य के ४ दावेदार हो गये थे जिनकी तुलनात्मक स्थिति निम्न वंश वृक्ष से स्पष्ट हो जायगी[2] -

---
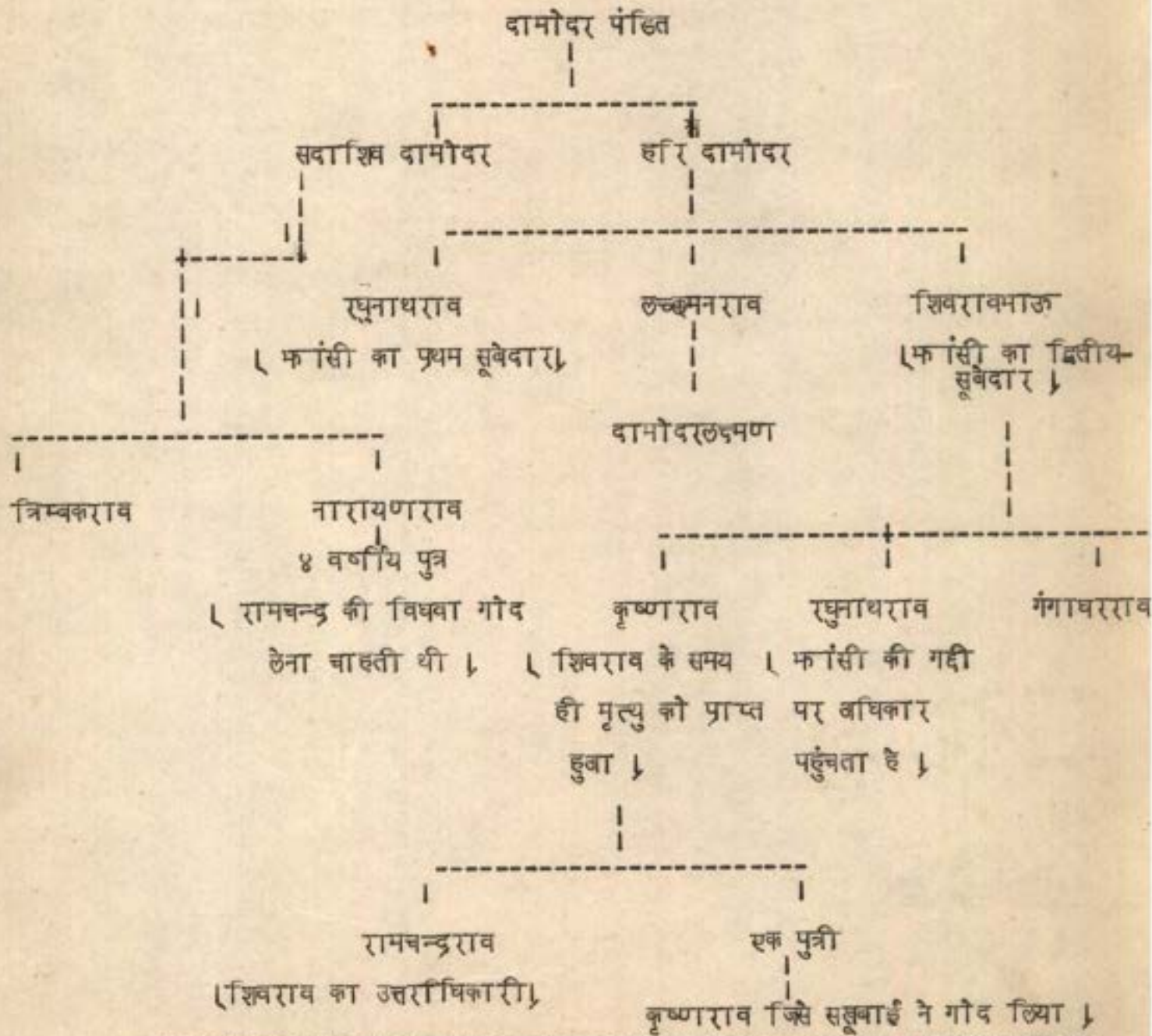
१ - रैम्बिल्स ऐण्ड रिकलेक्शन्स आफ एन इंडियन आफिशियल भाग १ पृ०२५६,६०, फा० पोलि० कन्स० २ नवम्बर १८३५ नं० २२ ।

२ - फा० पोलि० कन्स० २ नवम्बर १८३५ नं० २२ ।

उपरोक्त वंश वृक्ष से स्पष्ट है कि रामचन्द्रराव के निकटतम सपिण्ड सम्बन्धी उसके चाचा रघुनाथराव और गंगाधरराव ही थे और इन दोनों में भी रघुनाथराव के दावे में अधिक जोर था क्योंकि वह ज्येष्ठ था तथा गंगाधर उससे छोटा था । अंग्रेज सरकार और उसके अधिकारियों ने भी रघुनाथराव के दावे को ही स्वीकार किया । बुन्देलखण्ड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट ए० डब्लू० पेन्धी ने भी स्पष्ट मत प्रकट किया कि दोनों रानियां झांसी राज्य की सत्ता हथियाने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर अपने अपने दत्तक पुत्रों के दावों पर जोर डाल रही हैं । जबकि तीसरा दावेदार गंगाधरराव अपने अग्रज रघुनाथराव के दावे के पक्ष में अपने दावे पर अधिक जोर नहीं दे पारहा है क्योंकि रघुनाथराव नि:संतान है और उसकी मृत्यु पर गंगाधरराव को ही झांसी की गद्दी मिलने की पूरी पूरी संभावना है[३] ।

स्लीमैन ने भी रघुनाथराव के दावे का ही समर्थन किया था । उसे पूर्ण विश्वास था कि अंग्रेज सरकार रघुनाथराव के पक्ष में ही निर्णय देगी[४] । रघुनाथराव के विरुद्ध केवल एक ही बात थी जिसकी सूचना स्लीमैन को झांसी के मंत्री नारोगोपाल ने दी थी, वह यह थी कि रघुनाथराव कोढ़ से पीड़ित था और हिन्दू शास्त्र के अनुसार कोढ़ी को राजा नहीं होना चाहिए । किन्तु इस बात को अंग्रेज सरकार ने अधिक महत्व नहीं दिया और रघुनाथराव को झांसी का राजा मान लिया गया[५] ।

---

३ - फा० पौलि० कन्स० २ नवम्बर १८३५ नं० ३२ ।

४ - रैम्बिल्स ऐण्ड रिक्लेक्शन्स आफ एन इंडियन आफिशियल भाग १ पृ०२५८, २६० ।

५ - रैम्बिल्स ऐण्ड रिक्लेक्शन्स आफ एन इंडियन आफिशियल भाग १, पृ०२६०, फा० पौलि० कन्स० २ नवम्बर १८३५ नं० २२-२३, २२ अगस्त १८३६ नं० ४१-४२ ।

रघुनाथराव के गद्दी पर बैठने के बाद भी फांसी की स्थिति संभली नहीं बल्कि और बिगड़ती गई। स्लीमैन जब रामचन्द्रराव की मृत्यु के पश्चात फांसी की स्थिति की जांच करने फांसी आया था तब उसने यह देखकर प्रसन्नता व्यक्त की थी कि रघुनाथराव फांसी में काफी जनप्रिय है और उसने लिखा था कि मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि सभी जगह इस वृद्ध व्यक्ति (रघुनाथराव) को बड़े प्यार सम्मान से लिया गया।[६] पर रघुनाथराव की जनप्रियता का यह दिखावा तभी तक था जब तक कि वह फांसी की गद्दी पर नहीं बैठा था। गद्दी पर बैठते ही उसकी अयोग्यता और दुर्गुण स्पष्ट दिखने लगे थे। एक तो वैसे ही कोढ़ रोग से पीड़ित होने के कारण फांसी के बहुत से लोग उसके सिंहासनारोहण के विरुद्ध थे ही, अब उसकी कामुकता और विलासप्रियता अत्याधिक बढ़ जाने से उसकी जनप्रियता धीरे धीरे लुप्त होने लगी और राज्य और ज्यादा कर्जों में डूबता चला गया। इस प्रकार जैसा कि पारसनीस तक स्वीकार करते हैं कि " रघुनाथराव दुर्व्यसनी और अत्याचारी थे। उनके समय में राज्य की आमदनी घट गई और प्रजा को बहुत दुःख भोगना पड़ा।"[७] रघुनाथराव फांसी के साहूकारों के कर्ज में जो फांसी के लालूबख्शी और ग्वालियर के महाजनों के कर्ज में फंस गया और फांसी राज्य के कई गांव ग्वालियर और ओरछा राज्य में उसने रहन रख दिये।[८] इन सब कर्जों से राज्य की आय बहुत कम हो गई। फांसी राज्य की आय वैसे ही रामचन्द्रराव के काल में १८ लाख से घटते घटते १२ लाख रह गई थी। अब यह आय १२ लाख से घट कर ३ लाख रह गई।[९] फांसी के जिगना, बिल्हैरी,

---

६ - रैम्बिल्स ऐण्ड रिकलेक्शन्स आफ एन इंडियन आफिशियल भाग १ पृ०२५७-५८

७ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १७ । रघुनाथराव की एक गजरा नामक मुस्लिम रखैल स्त्री थी। इसके दो पुत्र थे, अलीबहादुर और शमशेरबहादुर। गजरा को रघुनाथराव ने १५०० की आय का एक गांव दे रखा था और दोनों लड़कों को बाद में ६ - ६ हजार रुपये की जागीरें लगादी गई थीं। (लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १७-१८ की पाद टिप्पणी।)

८ - होलकौम्ब पृ० १२ ।

९ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७१, १७२ ।

नौनेर, उदगांव आदि के पवार बुन्देला ठाकुर भी दतिया और ओरछा से बढ़ावा पाकर उदण्ड हो उठे थे। साथ ही ग्वालियर के सैनिक दल भी फांसी के लहूरा, घवाकर आदि सीमा के गांव में उपद्रव कर रहे थे। और तो और फांसी का सुप्रसिद्ध महाजन लालूवख्शी और फांसी का ग्वालियर दरबार में वकील नरसिंहराव तक बागी हो उठे। ऐसा प्रतीत होता है कि रघुनाथराव ने अपने ऋणदाता लालूवख्शी पर कुछ ज्यादतियां की होंगी, जिनकी वजह से अपनी सुरक्षा के लिए वह ग्वालियर के प्रदेश में भाग गया और वहां दादाजी काजीवाला तथा नरसिंहराव से सांठ गांठ कर ग्वालियर राजा की शह से करैरा के परगने के गांव में लूट-पाट करने लगा। उसने लगभग १३०० सैनिकों को एकत्र कर लिया और फांसी तथा दतिया की सीमाओं पर उपद्रव करने लगा। उसके और अन्य ठाकुरों के ये उपद्रव रघुनाथराव की मृत्यु तक चलते रहे।[१०] ये ठाकुर फांसी के भीतर और सीमा पर लगे गांवों के लूट-पाट कर स्थिति बड़ी अराजकतापूर्ण बनाते रहे।[११] इस प्रकार फांसी राज्य में घोर अव्यवस्था और अराजकता फैल गई। रघुनाथराव इस स्थिति को संभालने में असमर्थ रहा और दतिया ओरछे के राजाओं की दुरभि संधियों से स्थिति बराबर बिगड़ती गई।[१२] संक्षेप में इस प्रकार रघुनाथराव के

---

१० - फा० पौलि० कन्स० १३ अप्रैल १८४० नं० १२४, १७ अक्तूबर १८३८ नं० ५६।
लालूवख्शीके विरुद्ध जब बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी एजेन्ट के पास फांसी और दतिया से शिकायतें पहुंची तब ग्वालियर के ~~[illegible]~~ राजा से कहकर लालूवख्शी को बांदा बुलाया गया, ताकि उसके आरोपों की जांच कर उसे दंडित किया जा सके। पर इस बीच रघुनाथराव की २७ अप्रैल १८३८ को मृत्यु हो गई और फिर फांसी राज्य के मुख्तार गंगाधरराव ने उस पर मुकदमा चलाना उचित नहीं समझा तथा लालूवख्शी फिर गंगाधर के संरक्षण में फांसी आगया।

११ - फा० पौलि० कन्स० ६ जून, १८३६ नं० ६३ ।

१२ - डिस्पैच टू कोर्ट आफ डायरेक्टर्स २० सितम्बर १८३७ नं० २२ ।

३ वर्षों के अल्पकालीन शासन में झांसी की स्थिति दिन प्रति दिन भयंकर रूप से खराब होती गई और २७ अप्रैल १८३८ को वैध संतान के अभाव में मृत्यु होगई।[१३]

२ - उत्तराधिकारी का विवाद और अंग्रेजी सरकार का शासन संभालना -

रघुनाथराव की मृत्यु के पश्चात फिर उत्तराधिकार की समस्या उठ खड़ी हुई क्योंकि रघुनाथराव की मृत्यु नि:संतान हुई थी। वैसे उसके अपनी एक मुस्लिम पत्नी गजरा से अलीबहादुर और शमशेरबहादुर दो पुत्र थे किन्तु वे वैध पुत्र न होने के कारण राज्य के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते थे। इसलिए रघुनाथराव की मृत्यु के बाद अब उत्तराधिकार का विवाद वैसा ही उग्र हो उठा जैसाकि रामचन्द्रराव की मृत्यु के बाद हो उठा था। रामचन्द्रराव की माता सखूबाई अपनी राज्य लिप्सा सहित अभी भी जीवित थी और वह अपने दौहित्र कृष्णराव के दावों को फिर अंग्रेजी सरकार के सामने रखने की तैयारी कर रही थी। यहां स्मरण रहे कि यही वह कृष्णराव था जिसको उसने रामचन्द्रराव का दत्तक पुत्र घोषित कर रामचन्द्रराव के बाद झांसी का राजा बनाने का निष्फल प्रयास किया था। गद्दी का दूसरा दावेदार रघुनाथराव का छोटा भाई और शिवराव भाऊ का तृतीय अंतिम पुत्र गंगाधरराव था। उसने रामचन्द्रराव के मरने के बाद रघुनाथराव के साथ ही गद्दी का दावा किया था किन्तु बाद में जब रघुनाथराव का दावा मान लिया गया था तब उसने अपना दावा आगे नहीं बढ़ाया था क्योंकि रघुनाथराव नि:संतान, वृद्ध और - बीमारी से पीड़ित था। इससे गंगाधरराव को आशा थी कि उसके जल्दी मर जाने पर फिर गद्दी उसी को मिलेगी। रघुनाथराव ने अपनी वसीयतनामें में भी गंगाधरराव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।[१४] झांसी की गद्दी का तीसरा दावेदार रघुनाथराव का अवैध पुत्र अलीबहादुर और चौथी दावेदार उसकी अपनी विधवा पत्नी थी।

---

१३ - मेलसन भाग १ पृ० ६५, भाग ३ पृ० ११६, फा० पौलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२ नं० ६६ ।

१४ - फा० पौलि० कन्स० १ फरवरी १८५६ नं० १०८-१० । सदाशिवनारायण

३ - सखूबाई का असफल विरोध -

उपरोक्त दावेदारों में सखूबाई अधिक सहजोर थीं । वह झांसी के किले में कब्जा करके बैठ गई थी और झांसी के जन-साधारण पर भी उसका प्रभाव अधिक था । रामचन्द्रराव का दीवान नारोगोपाल और झांसी का किलेदार भी उसके पक्ष में हो गये थे । उसने एक सैनिक दल भी तैयार कर लिया था जिसमें बहुत से उदण्ड नागा और ठाकुर थे । रघुनाथराव की मृत्यु के बाद वैसे गंगाधरराव मुख्तार की हैसियत से नाम मात्र को झांसी की देखभाल कर रहे थे, पर झांसी में दुहाई सखूबाई की ही फिरती थी । चूंकि सखूबाई के दत्तक पौत्र कृष्णराव के प्रतिस्पर्धी के रूप में गंगाधरराव का ही दावा सबसे सबल था इसलिए वह गंगाधरराव और समर्थकों की शत्रु हो उठी । लालूबख्शी और लालू कोदलकर गंगाधरराव के मुख्य समर्थक थे । लालूबख्शी झांसी के प्रसिद्ध साहूकारों में से था और लालू कोदलकर गंगाधरराव का मुख्य अधिकारी था ।[१५] एक दिन (१ अक्टूबर १८३८) ये दोनों दोपहर को १ बजे जब दरबार से अपने घर जा रहे थे, तब मार्ग में उन पर हमला कर दिया गया । लालू कोदलकर मार डाला गया और लालूबख्शी का इसके बाद फिर कोई पता ही नहीं चला । इस पर गंगाधरराव ने बुन्देलखण्ड के अंग्रेज एजेन्ट फ्रेज़र से शिकायत की और यह स्पष्ट आरोप लगाया कि उपरोक्त आक्रमण रामचन्द्र की माता सखूबाई ने ही करवाया था । झांसी राज्य की आम स्थिति बहुत खराब हो गई थी और जैसाकि फ्रेज़र ने लिखा था कि गंगाधरराव का झांसी के प्रदेशों पर कोई नियंत्रण था ही नहीं । इसलिए अंग्रेजी सरकार के निर्णयानुसार झांसी का शासन ले लेने का फैसला किया

---

१५ - फा० पोलि० कन्स० ६ फरवरी १८३६ नं० १६ ।

इस पत्र के अनुसार गंगाधरराव को उत्तराधिकार का विवाद निबटने तक फिलहाल झांसी राज्य का अस्थायी शासक स्वीकार कर लिया गया था । इससे स्पष्ट विदित होता है कि अंग्रेजी सरकार का झुकाव गंगाधरराव की ही तरफ अधिक था ।

और सागर के सेनापति मेजर जनरल सर एनबरी को फांसी की स्थिति संभालने के लिए सेना सहित आने को लिखा।[१६] फ्रेजर स्वयं १ नवम्बर १८३८ को एक छोटे से सैनिक दल सहित फांसी आ पहुंचा। फांसी का वातावरण उसे बड़ा अमैत्रीपूर्ण लगा और उसे वहां तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। वहां दूसरे दिन फांसी का वकील उससे मिलने आया और उसे पता चला कि फांसी का किला और नगर रानी के अधिकार में है जो किले में रह रही है। किले के दरवाजों पर सैनिक दल तैनात थे। फ्रेजर ने सखूबाई को सूचित किया कि वह फांसी की व्यवस्था संभालने आ पहुंचा है और फांसी के दरवाजों से सैनिक हटाकर वे उसके अधिकार में सौंप दिये जाय। अन्य दरवाजों से तो फांसी के सैनिक दल हट गये किन्तु किले से लगा हुआ जो खण्डेराव का दरवाजा था, वहां के सैनिकों ने हटने से इन्कार कर दिया।[१७] उन्होंने रानी के उकसावे पर कहा कि वे वहां से तभी हटेंगे जब उनके पिछले सारे वेतनों का भुगतान कर दिया जायगा। फ्रेजर के पास रानी का परामर्शदाता नारोगोपाल और फांसी के किले का किलेदार भी बुलाने पर मिलने आया। पर किसी विशेष निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सका। तब फ्रेजर ने स्वयं किले में जाने का निश्चय किया। नारोगोपाल और किलेदार ने उसे रोकना चाहा किन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। इस बीच किले में लगभग १५०० लोग एकत्र हो गए। फ्रेजर अपने छोटे से दल सहित नगर से होकर किले की ओर बढ़ा। एक गली में लगभग १०० लोगों ने जोकि बन्दूकें, तलवारें और भाले लिये हुए थे, उन्हें घेर लिया। फ्रेजर के हाथी को घायल कर दिया गया और उसे गालियां दी गई। उसके ऊपर कूड़ा-करकट फेंका गया। १, २ गोलियां भी चलीं। इस प्रकार फ्रेजर और उसके दल को नगर से खदेड़ दिया गया। सुरक्षा की दृष्टि से फ्रेजर पीछे हटकर ओरछा चला आया। उसका निश्चित विश्वास था कि यह सब सखूबाई ने कृष्णराव को फांसी का शासक न माने जाने के कारण क्रोधित होकर -

---

१६ - फा० पौलि० कन्स० ६ फरवरी १८३६ नं० १६ ।

१७ - वही ।

करवाया था। उसका यह भी अनुमान था कि गंगाधरराव और रानी में नहीं पटती थी तथा अलीबहादुर तो कुछ करने की हालत में था ही नहीं। रानी ने इस प्रकार जैसे झांसी में अंग्रेजी शासन का सशस्त्र विरोध करने की ठान ली थी।[१८] फ्रेजर के लिखने पर अब सागर कानपुर से सहायता भेजी जाने के आदेश प्रेषित किए गये और सागर से मेजर जनरल एम्स्बरी भी तेजी से झांसी की ओर बढ़ा। शिवपुरी में सिंधिया का एक सैनिक दल भी झांसी जाने के लिए तैयार कर लिया गया और किले को लेने में मदद करने के लिए इलाहाबाद से उच्चपदीय इंजीनियर भी भेजे जाने के आदेश दिये गये।[१९] अब सखूबाई को होश आया। पहले तो उसने गवर्नर जनरल को फ्रेजर के साथ हुई घटना और उसके व्यवहार की शिकायत करते हुए पत्र भेजा। जिसके प्रति उत्तर में गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी ने उसे सूचित किया कि झांसी अब अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत है। इसलिये उसके पत्र को गवर्नर जनरल के आदेशों के लिए प्रेषित कर दिया गया है।[२०] पर संभवत: इस पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। सखूबाई ने बांदा के नवाब जुल्फिकारअली बहादुर को अपना विवरण देते हुए उसे अपनी ओर कर,एजेन्ट से हस्तक्षेप करने का आग्रह किया। पर बांदा के नवाब ने उसे एजेन्ट के - निर्देशानुसार चलने की सलाह दी। सखूबाई ने दिसम्बरके अन्त में जब अंग्रेजी सेनायें झांसी की ओर बढ़ आई थीं, तब फेजर को भी शांत करने के लिए क्षमा-याचना की, किन्तु फ्रेजर उससे प्रभावित नहीं हुआ और उसने रानी को तुरन्त किला सौंप देने का आदेश ही दुहराया।[२१] मेजर जनरल एन बरी ने अपनी सेना सहित झांसी आकर किला घेर लिया और ३ जनवरी १८३९ को सखूबाई को दूसरे दिन सुबह तक किला खाली करने के आदेश दिये गये। सखूबाई

---

१८ - फा० पौलि० कन्स० ६ फरवरी १८३९ नं० १६, २७ अप्रैल १८४२ नं० ६५।

१९ - फा० पौलि० कन्स० ५ दिसम्बर १८३८ नं० ८६, ६ फरवरी १८३९ नं०१६।

२० - फा० पौलि० कन्स० ९ जनवरी १८३९ नं० २०१, २०२ ।

२१ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३९ नं० ४० ।

ने ४ दिन का समय मांगा किन्तु यह समय नहीं दिया गया और अन्त में ५ जनवरी की प्रात: को सखूबाई ने नगर और किला दोनों ही अंग्रेजों को सौंप दिये।[२२] किला सौंपने के पूर्व सखूबाई ने अपने रहने के लिए किसी उचित सुरक्षित स्थान की मांग की। इस पर एजेन्ट ने उसके रहने के लिए बरुआसागर में एक निवास स्थान की व्यवस्था करने का प्रस्ताव रखा। इस पर सखूबाई ने यह कहकर विरोध किया कि वह सिंधिया का है इसलिए उसका वहां रहना उचित न होगा।[२३] वास्तव में बरुआसागर में सखूबाई के किसी सम्बन्धी के यहां उसके रहने का प्रबन्ध किया गया था। पर जब सखूबाई वहां रहने को तैयार नहीं हुई तब बाद में उसे ११ जनवरी १८३६ को मुरार (ग्वालियर) भेज दिया गया।[२४]

४ - कमीशन की नियुक्ति -

झांसी में जो उपरोक्त उपद्रव सा हुआ था उसका कारण यह था कि झांसी में जन-साधारण में यह धारणा हो गई थी कि झांसी के राज्यवंश को हटाकर जैसे झांसी को स्थायी रूप से अंग्रेजी शासन में मिलाया जा रहा था।[२५] जबकि वास्तविक स्थिति यह थी कि जब तक झांसी के

---

२२ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३६ नं० ४०, २७ अप्रैल १८४२ नं० ६५।

२३ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३६ नं० ४०, २७ अप्रैल १८४२ नं० ६५।
बरुआसागर पर वैसे प्रभुत्व सिंधिया का ही था। पर बरुआसागर को झांसी राज्य के अन्तर्गत ले लिया गया था और इसके/सिंधिया को झांसी से इसके लिए दस हजार रुपये सालाना दिये जाने लगे थे।
फा० पौलि० कन्स० १० जनवरी १८३६ नं० ४१, २ नवम्बर १८४२ नं०२३६।

२४ - फा० पौलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२ नं० ६५।

२५ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३६ नं० ४०।

उत्तराधिकार का प्रश्न हल न हो और राज्य में सुव्यवस्था स्थापित न करदी जाय, केवल तब तक के लिए उसे अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत लिया गया था[२६]। अस्तु, जैसे ही अंग्रेज अधिकारियों ने झांसी का शासन संभाला वैसे ही उपरोक्त धारणा दूर करने और उत्तराधिकार के विवाद को निपटाने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की गई। यह कमीशन ३ सदस्यों का था। इसके सदस्य थे - बुन्देलखण्ड में नियुक्त अंग्रेज एजेन्ट साइमन फ्रेज़र, ग्वालियर के रेजीडेण्ट लेफ्टीनेन्ट कर्नल स्पीयर्स और जालौन के सुपरिन्टेन्डेण्ट कैप्टिन रौस। इस कमीशन का गठन गवर्नर जनरल के बुन्देलखण्ड के एजेन्ट फ्रेजर को लिखे १२ जनवरी १८३६ के एक आदेश के अन्तर्गत किया गया था, इस आदेश में कमीशन को निर्देश दिये गये थे कि वे गंगाधरराव सहित झांसी राज्य के अन्य दावेदारों के दावों की जांच पड़ताल कर शीघ्र से शीघ्र अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें[२७]।

कमीशन को झांसी की गद्दी के जिन ४ उत्तराधिकारियों के दावों पर विचार करने को कहा गया था वे थे, कृष्णराव, अलीबहादुर, रघुनाथराव की विधवा और रघुनाथराव का छोटा भाई गंगाधरराव। इसमें कृष्णराव रामचन्द्रराव का कथित दत्तक पुत्र था, जिसका दावा पहले ही रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् अस्वीकार किया जा चुका था। अलीबहादुर, रघुनाथराव की मुस्लिम उपपत्नी का अवैध पुत्र था, जिससे उसका दावा निर्बल पड़ गया था। रघुनाथराव की विधवा का दावा इसलिए कमजोर पड़ गया था क्योंकि रघुनाथराव का सपिण्ड - सम्बन्धी और उसका निजी भाई गंगाधरराव एक दावेदार था। चूंकि रघुनाथराव को रामचन्द्र के मरने के पश्चात् झांसी की गद्दी का हकदार माना गया था। अस्तु इसी तर्क पर गंगाधरराव का दावा सबसे सबल था और इसलिए गवर्नर जनरल की

---

२६ - वही। इस पत्र में ऐसा साफ उल्लेख है कि अंग्रेजी सरकार के इरादे रामचन्द्र की माता सखूबाई को दबाकर शिवरावभाऊ के जीवित पुत्र अर्थात् गंगाधरराव को गद्दी पर बिठाना था।

२७ - फा० पौलि० कन्स० १० अप्रैल १८३६ नं० ४८, १३ फरवरी १८३६ नं० ४१, २७ अप्रैल १८४२ नं० ६४ ।

अपनी राय में रघुनाथराव की मृत्यु के बाद फांसी की गद्दी पर हिन्दू रीति के अनुसार सबसे पहला दावा गंगाधरराव का ही था। बुन्देलखण्ड के अन्य राजे-रजवाड़े भी गंगाधरराव को उत्तराधिकारी मानते थे[२८]। पर गंगाधरराव का दावा उचित होते हुए भी उसका अपना व्यक्तिगत चरित्र और अयोग्यतायें उसमें बाढ़े आती थीं। इसीलिए गवर्नर जनरल ने यह सुझाव दिये थे कि उसके चरित्र की उचित जांच पड़ताल की जाय[२९]। इस कमीशन ने सारे सम्बन्धित कागज़ातों और पत्र व्यवहार की जांच की तथा गवाहों आदि के बयान लिये[३०]। इन सब पर विचार करने के पश्चात् कमीशन के सदस्यों ने गंगाधरराव के सिवाय सबके दावे अस्वीकार कर दिये और उनकी सिफारिश पर कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने गंगाधरराव को शिवरावभाऊ का एक मात्र जीवित पुरुष वंशज मानकर फांसी का राजा स्वीकार कर लिया। लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि चूंकि फांसी का राज्य अभी भी अव्यवस्थित है और उसकी आय घटकर आधे से भी कम रह गयी है तथा खालसा के प्रदेश कर्ज़दारों के पास रहन रख दिये गये हैं, इसलिए ब्रिट्रिश सेना अभी भी फांसी में रहे और ब्रिट्रिश एजेन्सी राज्य का शासन चलाती रहे। राजा को एक निश्चित वार्षिक धन-राशि दी जाने की बात कही गई, जिसे कि बाद में जैसे जैसे आर्थिक स्थिति अच्छी हो वैसे वैसे - बढ़ाने का सुझाव दिया गया। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने यह भी निर्देश दिये कि जैसे ही फांसी राज्य की स्थिति ठीक हो जाय वैसे ही राज्य उसे लौटा दिया जाय। इन्हीं के आदेशों के अन्तर्गत फांसी में कैप्टिन रौस को अंग्रेज एजेन्ट नियुक्त किया गया और उसका वेतन१६००-०० रुपया वार्षिक निर्धारित कर दिया गया। कैप्टिन रौस बुन्देलखण्ड में गवर्नर जनरल के एजेन्ट के अधीन था[३१]।

---

२८ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३९ नं० ४२, १२ दिसम्बर १८३८ नं०८१।

२९ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३९ नं० ४२, २७ मार्च १८३९ नं० ४६, ६ फरवरी १८३९ नं० १६ ।

३० - फा० पौलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२ नं० ६४, ६५ ।

३१ - फा० पौलि० डिस्पैच फिरौम कोर्ट आफ डायरेक्टर्स, १ अप्रैल १८४० नं० १४, फा० पौलि० कन्स० १४ सितम्बर १८४२ नं० ५८ ।

गंगाधरराव इस प्रकार रघुनाथराव के बाद झांसी का शासक बना पर अभी वह नाम मात्र का शासक था । वास्तविक शासन अंग्रेजी एजेन्ट कैप्टिन रौस के ही हाथों में रहा और किला भी अंग्रेजों के ही अधिकार में बना रहा । गंगाधरराव नगर में अपने महल में रहते रहे और उसने कई बार आग्रह किया कि किला उसे रहने के लिए दिया जाय, क्योंकि उसका तर्क था कि रघुनाथराव के सिवाय झांसी के सभी सूबेदार किले में रहते रहे हैं और उसका विचार था कि किले पर अधिकार न होने से उसकी प्रतिष्ठा में बट्टा लगता है । पर अंग्रेज अधिकारी बड़े सतर्क थे और हालांकि उनकी सैनिक छावनी किले से १ मील ही दूर थी पर फिर भी किले में गोला बारूद की मैगज़ीन होने से उन्हें सुविधा थी । ऐसा सुरक्षित स्थान छावनी में न होने के कारण उन्होंने किला सौंप देने में अनिच्छा प्रकट की । इसलिए झांसी का किला अंग्रेजों के ही अधिकार में बना रहा और गंगाधरराव को बुन्देलखण्ड में अंग्रेज एजेन्ट फ्रेज़र की सिफारिश पर सम्भवत: बरुआसागर का किला दे दिया गया[32] । कैप्टिन रौस के निर्देशन में झांसी में पहले से अच्छी शासन व्यवस्था स्थापित हो गई और झांसी राज्य की आय भी १ साल में ३ लाख से बढ़कर साढ़े सात लाख रुपये हो गई[33] । किले और नगर की सुरक्षा की भी व्यवस्था करदी गई और नगर में स्थानीय सुरक्षा के लिए पुलिस रखी गई[34] । झांसी में इस प्रकार सुरक्षा की व्यवस्था करने के साथ ही रौस ने कुरार, पिछोर, मयापुर, उदगांव, नोनेर, जिगना, बिल्हैरी आदि मऊ के उपद्रवी ठाकुरों को भी दबाने की योजना बनाई और बुन्देलखण्ड की अंग्रेज सेना (बुन्देलखण्ड लीजन) के सेनापति वीटसन की सहायता से उनका दमन कर दिया गया । ओरछा और दतिया के राजा भी इस शक्ति प्रदर्शन से भय खाकर चुप बैठ गये[35] । इन सब कार्यवाहियों के बीच रौस ने

---

३२ - फा० पौलि० कन्स० १४ सितम्बर १८४२ नं० ५८ ।

३३ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७१ ।

३४ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३६ नं० ४० ।

३५ - फा० पौलि० कन्स० १३ अप्रैल १८४० नं० १२३, १२४, डिस्पैच फ्रॉम डायरेक्टर्स २३ मार्च १८४१ नं० १० ।

अलीबहादुर से करैरा का किला खालीकरवाकर झांसी में सम्मिलित कर लिया और चिरगांव, टोड़ीफतेहपुर, बिजना, घुरवई आदि के उपद्रवी अष्टभैया जागीरदारों का भी प्रभावशाली ढंग से दमन किया[३६]।

५ - झांसी का राज्य गंगाधरराव को सौंपा जाना -

इस प्रकार दो ही तीन वर्षों में अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत झांसी राज्य की स्थिति काफी सुधर गई और उसमें शांति और सुरक्षा स्थापित हो गई। अंग्रेज अधिकारियों की कड़ी देख-रेख में लगता है गंगाधरराव की भी आदतें सुधर गई और झांसी के राज्य का वास्तविक स्वामी बनने की उत्सुकता ने उसमें प्रशासकीय योग्यतायें प्रस्फुटित करदीं। इस प्रकार झांसी राज्य की सुधरी हुई स्थिति और गंगाधरराव मे नवीन विकसित प्रशासकीय योग्यताओं ने अंग्रेजी सरकार को इसके लिए प्रेरित किया कि वह झांसी का राज्य गंगाधरराव को सौंप देने पर सहानुभूति पूर्वक विचार करे। इसी बीच सम्भवत: गंगाधरराव भी किला और झांसी का राज्य प्राप्त करने के लिए गवर्नर जनरल से पत्र व्यवहार कर रहा था[३७]। अस्तु अब अंग्रेजी सरकार ने पहली जनवरी १८४३ से अथवा उसके बाद ही किसी अन्य सुविधाजनक तिथि से झांसी का राज्य कुछ शर्तों पर गंगाधरराव को सौंपने का निश्चय किया और उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त के गवर्नर स्लीमैन ने ये प्रस्तावित शर्तें झांसी के ब्रिटिश एजेन्ट कैप्टिन रौस को अपने २६ अगस्त - १८४२ के एक पत्र में लिख भेजी। ये शर्तें संक्षेप में इस प्रकार थीं -

१ - वह बुन्देलखण्ड लीजन के आधे खर्च के लिए दो लाख कलदार वार्षिक ~~देय~~ दे अथवा इतनी ही आय के प्रदेश अंग्रेजी सरकार को सौंप दे। इस लीजन की आधी सेना उसके प्रदेशों में ही रखी जायगी और उसकी सेवा के लिए उपलब्ध रहेगी। इसमें सुझाया गया था कि इस सेना के खर्च के लिए बेतवा और धसान के बीच के

---

३६ - फा० पौलि० कन्स० १३ फरवरी १८३६ नं० ४०, १६ जुलाई १८४१ नं० १२।

३७ - फा० पौलि० कन्स० २ अगस्त १८४१ नं० १३०-३३ ।

प्रदेश बरुवासागर को छोड़कर ले लिये जाय । इन दोनों परगनों में पंच वर्षीय माल गुजारी व्यवस्था थी, जिसमें से दो साल गुजर चुके थे । शेष ३ वर्षों की औसत आय १८४२ में २३५१५५ होगी ।

२ - यहकि सूबेदार पंच वर्षीय व्यवस्था के शेष ३ साल भी चलाता रहेगा और अगर कोई विवाद उठा तो उसे अंग्रेजी सरकार या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी के सामने प्रस्तुत करेगा ।

३ - जिनको अंग्रेजी सरकार ने पेन्शन दी है उनको पेंशन देता रहेगा और कर्ज़ों का भुगतान भी बराबर किश्तों में करता रहेगा ।

४ - अगर राजा अंग्रेजी शासन में नियुक्त किसी अधिकारी को निकालना चाहेगा तो उसे ६ माह का अग्रिम वेतन और उसके निवास स्थान तथा कार्यालय का उचित मुआवज़ा देगा ।

५ - राजा पर जो अंग्रेजी सरकार का ४ लाख का कर्ज़ है उसे वह ५० हजार की सालाना किश्तों में ८ साल में चुका देगा ।

६ - उसे जब भी अंग्रेजी सेना की आवश्यकता होगी और यदि उस पर उसके तथा सेना के सेनापति के बीच कोई मतभेद होगा तो मतभेद को लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के एजेन्ट के निर्णय के लिए प्रेषित किया जायगा[३८]।

गंगाधरराव के पास इन शर्तों को प्रेषित कर दिया गया । संधि के उपरोक्त मसविदे पर उसने अपने निम्नलिखित संशोधन या प्रस्ताव बुन्देलखण्ड के ब्रिटिश एजेन्ट को १२ सितम्बर १८४२ को भेजे -

१ - पहला फांसी का किला दिये जाने के सम्बन्ध में था ।

२ - वह चाहता था कि बुन्देलखण्ड लीज़न का आधे खर्च का भुगतान वह नगद करे और अगर प्रदेश उससे लिये जाय तो उन प्रदेशों की आय में से २ लाख कलदार - लेकर ~~xxxxxxxxxxxx~~ जो बचे वह फांसी राज्य को दे दी जाय ।

३ - पंच-वर्षीय व्यवस्था चलती रहेगी, लेकिन अगर कोई अधिकारी कोई मांग करे तो उसकी अपील बुन्देलखण्ड के एजेन्ट के पास की जा सकेगी ।

---

३८ - फा० पौलि० कन्स० २ नवम्बर १८४२ नं० २३६ ।

४ - जो कैदी हों उनको सज़ा पूरी होने तक बन्दी रखा जा सकेगा ।

५ - पेन्सनों, कर्ज़ों और वजीफों का भुगतान किया जाता रहेगा, किन्तु ये सेवाओं के आधार पर निश्चित किये जायेंगे । चूंकि राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, इसलिए राज्य की बड़ी और गम्भीर जरूरतों का भी ध्यान रखना पड़ेगा । राज्य पर जो अंग्रेजों के कर्ज़ हैं उनका भुगतान राज्य की आय में से अनुपातिक रूप से किया जायगा ।

६ - जिन अधिकारियों को निकाला जायगा उनमें से केवल उन्हीं यूरोपीयनों और उनकी हिन्दुस्तानी सहायकों को ६ महिने का अग्रिम वेतन दिया जा सकेगा, जिनकी सेवायें ३ साल की हो चुकी होंगी । लेकिन उनके बंगलों की कीमत नहीं दी जा सकेगी । जो लोग स्वयं स्तीफा देंगे उन्हें ये अनुदान नहीं दिये जायेंगे । अन्य हिन्दू और मुसलमान अधिकारियों को भी यूरोपियनों की तरह अनुदान नहीं दिये जायेंगे ।

७ - बुन्देलखण्डी अंग्रेजी सेना की आधी सेना झांसी के प्रदेशों में रहेगी और राज्य की रक्षा के लिए बिना हिचकिचाहट के तैयार रहेगी । अगर हर मौके पर लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के एजेन्ट की अनुमति मांगी गई तो उससे अनावश्यक देर होगी । चूंकि राज्य के साधन सीमित हैं इसलिए राज्य में और सैनिक नहीं रखे जा सकते ।

८ - मऊरानीपुर में यदि भूमि के लिए आवश्यकता हुई तो उसे दिया जायगा । किन्तु अंग्रेजी सेना झांसी में स्थापित छावनी से गुजर सकेगी और जो सेना झांसी की छावनी से गुजरेगी उसका सेनापति नागरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगा । इस सेना को जो रसद दी जायगी उसकी तत्कालीन कीमत का भुगतान करेगा ।

९ - यह कि झांसी का राजा केवल अंग्रेजी एजेन्ट के नियंत्रण में रहेगा, किसी अन्य अधिकारी के नहीं ।[३९]

---

३९ - फा० पौलि० कन्स० १४ जनवरी १८४३ नं० ६३३ ।

६ - अंग्रेजों की गंगाधरराव से १८४२ की संधि -

संधि के उपरोक्त दोनों प्रस्तावित मसविदों के आधार पर अन्त में एक मसविदे को तैयार कर लिया गया और उसे २७ दिसम्बर १८४२ को संधि का अन्तिम रूप दे दिया गया । इस संधि की धारायें इस आशय की थीं -

१ - यहकि १ जनवरी १८४३ को या उसके पश्चात् जितनी शीघ्र सम्भव होगा गंगाधरराव को फांसी का राज्य सौंप दिया जायगा । फांसी का राज्य निम्नलिखित प्रदेशों को निकालकर सौंपा जायगा । यह प्रदेश बुन्देलखण्ड लीजन के आधे खर्च के लिए अंग्रेजी सेना को दे दिये गये हैं और सम्वत् १८९९ (१८४२ई०) में इनकी आय फांसी के रुपयों में २,५५,८९१ या कम्पनी के रुपयों में २,२७,४५८ कूती गई ।

अंग्रेजी सेना के खर्च के लिये फांसी द्वारा दिये गये प्रदेश

नाम	सं० १८९९	सं० १९००	सं० १९०१
दभुवा और तलांव	१४६०६०	१५०४१५	१५३४५४
गुरसई	१८१३१	१९२०५	२००५६
ऐरच	७१४८	७५१२	६६७२
सिरसा- गुदौसा	१०४०२	१०४०२	१०४०२
पूंछ - पहाड़गांव	१२३५४	१२६२७	१२९०३
बामुतुआ	१४४४३	१५४६२	१६२५६
बुंगरा	१६०२१	१९८२१	२०६३३
गरौठा	२८३३२	३०३४५	३१८०४
फांसी के रुपये -	२५५८९१	२६५७८९	२७५४८०
१२'८ प्रतिशत घटाये -	२८४३३		
या कम्पनी के रुपये -	२२७४५८		

२ - झांसी के जमींदारों से पंच वर्षीय व्यवस्था की गई थी, जिसमें से अभी तीन वर्ष बाकी थे। झांसी का राजा इस व्यवस्था के अन्तर्गत इन समझौतों को पूरा करेगा और इस विषय पर सभी विवादों को बुन्देलखण्ड में गवर्नर - जनरल के एजेन्ट या किसी अन्य ऐसे अधिकारी के फैसले के लिए जिसे कि सरकार ने इस काम के लिए नियुक्त किया है, प्रस्तुत करेगा।

३ - झांसी जेल में जो कैदी बन्दी हैं उन्हें उनके कारावास की अवधि के समाप्त होने के पहले बिना बुन्देलखण्ड में गवर्नर जनरल के एजेन्ट से परामर्श लिये नहीं छोड़ा जायगा।

४ - झांसी राज्य के सभी पेन्शन पाने वालों को और राज्य के कर्ज़दारों को जिनके कि दावे हमारी सरकार के अधिकारी झांसी के राजा से मिलकर तय कर चुके हैं, उनका भुगतान किश्तों में निश्चित समय पर किया जाता रहेगा। लोगों को भूमि, राज्यकोष से अनुदान या सेवाओं के लिए अनुदान दिये जाते रहे हैं। वे इस शर्त पर दिये जाते रहेंगे कि वे सेवायें करते रहें जिनके लिए उन्हें वे प्रदान किये गए थे। उनके मामलों में निर्णय राजा ही करता रहेगा।

पर समझा जाता है कि राजा उन सभी कर्ज़ों और पेंशन के दावों का भुगतान करेगा जिन्हें कि हमारी सरकार के अधिकारियों ने अभी तय नहीं किया है। लेकिन अंग्रेजी सरकार हस्तक्षेप नहीं करेगी।

५ - राजा हर उस अधिकारी को जिसने झांसी सरकार के शासन में ३ वर्षों तक सेवा की है और जिसकी सेवायें वह समाप्त करेगा, उसे ६ महिने का वेतन अनुदान में इस शर्त पर देगा कि वह जालौन या दूसरे हस्तांतरित प्रदेशों में न नौकरी नहीं करे।

६ - राजा अंग्रेजी सरकार के कर्ज़ को ५० हजार रुपये की वार्षिक किश्तों में अदा करेगा। यह किश्तें इससे कम नहीं होंगी।

७ - बुन्देलखण्ड लीजन को झांसी और जालौन जिलों की रक्षा के लिए स्थायी रूप से कम से कम उतनी शक्ति में जितनी वह अभी है रखी जायगी। लेकिन इस सेना का वितरण इसके सेनापति (आफीसर कमांडिंग) या बुन्देलखण्ड में हमारी

(अंग्रेजी) सरकार के प्रतिनिधि पर निर्भर होगा । राजा को जब भी इस सेना की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी तब लीज़न का कमान्डर अगर उचित समझेगा तो बिना (अंग्रेजी सरकार के) प्रतिनिधि को पूछे ही उसकी सहायता करेगा । लेकिन यदि किसी समय ऐसी सहायता की मांग पूरी करना वह उचित नहीं समझेगा तो वह सरकार के प्रतिनिधि को जिन परिस्थितियों में वह सहायता मांगी गयी है उनको बतायेगा और मांग पूरी न करने के अपने कारणों से सूचित करेगा तथा जब तक आदेश प्राप्त न हो जाय सहायता रोके रखेगा ।

८ - यहकि राजा सैनिक छावनी के लिए अपने प्रदेशों के किसी भाग में जिसे इस काम के लिए (अंग्रेजी) सरकार चुने भू-भाग प्रदान करेगा । लेकिन ऐसी छावनी में सेना का सेनानायक सरकार (झांसी की) के नागरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगा और न सैनिकों को झांसी राज्य की प्रजा को त्रस्त करने की अनुमति देगा । सैनिकों के इस्तेमाल के लिए आस-पास के प्रदेशों से जो भी रसद की आवश्यकता होगी वह झांसी सरकार के अधिकारियों के द्वारा प्राप्त की जायगी और उसकी तत्कालीन प्रचलित कीमतों पर भुगतान किया जायगा ।

झांसी के राजा और अंग्रेजी सरकार के बीच हुई पहले की संधियों की धारायें अब भी यथावत रहेंगी और इन राजाओं को स्वागत के समय जो सलामियां दी जाती रहीं हैं, वैसी ही जैसीकि दतिया, ओरछा और समथर के राजाओं को दी जाती हैं, दी जाती रहेंगी ।

इस संधि पर झांसी के राजा गंगाधरराव ने २७ दिसम्बर १८४२ को अपनी मोहर लगाकर हस्ताक्षर किये । अंग्रेजी सरकार की ओर से गवर्नर जनरल के एजेन्ट डब्लू० एच० स्लीमैन ने इस पर हस्ताक्षर किये और इसकी पुष्टि गवर्नर जनरल लार्ड एलिनबरा (१८४२-४४) ने २० - जनवरी १८४३ को की।[४०] इस संधि ने गंगाधरराव को झांसी के कठपुतली राजा के स्थान पर झांसी का वास्तविक शासक बना दिया और सही अर्थों में उनका

---

४० - ऐचिसन भाग ५ पृ० ७०-७२, फा० पौलि० कन्स० १४ जनवरी १८४३ नं०७६४
संधि के मूलस्वरूप के लिए अध्याय में संलग्न परिशिष्ट नं० १ देखें ।

राज्यकाल इसके बाद ही प्रारम्भ हुआ ।

Appendix - 1.

No. VIII.

TRANSLATION of ARTICLES of the new ENGAGEMENT entered into with RAJAH GANGADHAR RAO? CHIEF of JHANSI, and signed and sealed by him on the 27th of Dec. 1842.

1st. That on the 1st January 1843, or as soon after as possible, the State of Jhansi shall be made over to him, Gangadhar Rao, with the exception of the undermentioned lands, which are to be assigned to the British Government for the payment of half the cost of the Bundelkhand Legion; and are assessed for the year Sumbat 1899 at 2,55,891 Jhansie Rupees, or 2,27,458 Company's Rupees.

Lands to be ceded by Jhansie for the payment of the Legion.

No.	Name.	Sumbat 1899	1900	1901
	Duboos and Talgow	146060	150415	153454
	Gurwse	18131	19205	20056
	Erich	7148	7512	9972
	Sersa Godass	10402	10402	10402
	Poonch Pahergow ...	12354	12627	12903
	Bumunooa	14443	15462	16256
	Bugeyra	19021	19821	20533
	Ghuratah..........	28332	30345	31804
	Jhansie Rupees ..	255891	265789	275480
	Deduct 12.8 per cent	28433	....	....
	or Company's Rupees	227458	....	....

(७)

2nd.- The Chief is to fulfil all the engagements which have been entered into with the landholders for the remaining three years of the quinquennial settlement, and to submit all references arising out of this subject to the decision of the Agent, Governor-General in Bundelkhand, or any Officer who may be appointed for the purpose by Government.

3rd - That the prisoners confined in the Jhansie Jail under sentence of imprisonment are not to be released till the periods of their sentence expire without consulting the Agent of Governor-General in Bundelkhand.

4th - That all pensioners of the Jhansie State whose claims have been already decided by the Officers of our Government, and all creditors of that State whose claims have been decided by the Officers of our Government in concert with the Chief of Jhansie, be punctually paid by instalments. All those who receive grants of land, payments from the treasury, or assignments upon the customs for services to be performed, are to enjoy the same only upon condition of performing the duties for which they have been assigned; and the Chief to be left sole judge in their cases.

It is understood that the Chief will pay all just debts and claims to pensions which have not yet been adjusted by the Officers of our Government; but our Government is not to interfere.

5th - That the Chief shall pay to every public Officer who has served us in the administration of the Jhansie Government for a period of three years, and whose services

he now dispenses with a donation of six months' salary, provided they do not find employment in Jalone or the ceded lands.

6th - That the Chief pay off the debt to the British Government by annual instalments of not less than fifty thousand Rupees.

7th - That the Bundelkhand Legion be kept permanently to at least its present strength for the protection of the Jhansie and Jalone districts, but the distribution of this force is to rest with the Officer Commanding, or the representative of our Government in Bundelkhand. The Officer Commanding the Legion is to comply with the requisitions of the Raja for the aid of troops whenever he thinks them proper, without reference to such representative; but should he at any time not deem it proper, to comply with such requisitions, he will state the circumstances of the call for aid, and his reasons for not complying with it, to the representative of the Government, and suspend compliances till his orders are received.

8th -The the Chief will assign lands for a military cantonment in any part of his territories which the Government may select for the purpose; but the Officer Commanding t-he troops in such cantonments is not to interfere with civil administration of the Government, or permit the troops to oppress the subjects of the Jhansie State. What supplies for the use of the troops may be required from the country around are to be procured through the Officers of the Jhansie Government, and paid for at the current prices of the day.

(९)

The Articles of former Treaties between the Jhansie Chiefs and the British Government are to remain still in force; and all the salutes heretofore given to those Chiefs and courtesies of reception which are the same as those given to the Chiefs of Orchha, Duttia, and Sumptur, to be continued.

Signed and sealed by the Rajah of Jhansie, Gangadhur Rao, on the 27th December 1842.

W.H.Sleeman,
Agent, Governor-General.

Approved by Governor-General on 20th January 1843.

अध्याय - ८

झांसी का अन्तिम सूबेदार,गंगाधरराव

(१८४२ - ५३)

वैसे तो गंगाधरराव को अंग्रेजी सरकार बहुत पहले ही (१८३६) झांसी का राजा मान चुकी थी, किन्तु उपरोक्त संधि के पूर्व लगभग ३ वर्षों तक वह केवल नाम मात्र का झांसी का राजा रहा था और स्थानीय शासन अंग्रेज अधिकारी चलाते रहे थे । इस संधि के बाद गंगाधरराव झांसी का राजा ही नहीं बल्कि वास्तविक शासक भी बन गया और अपनी मृत्यु (२१ नवम्बर १८५३) तक झांसी का शासन करता रहा । वैसे तुलनात्मक दृष्टि से उसका इन ११ वर्षों का शासनकाल सामान्यत: ठीक ही रहा और झांसी राज्य में शांति, सुरक्षा बनी रही तथा आर्थिक दृष्टि से भी झांसी की स्थिति पहले की अपेक्षा अच्छी ही रही । गंगाधरराव ने जब अंग्रेजों से शासन संभाला तब उसकी आयु लगभग ४० वर्ष की थी। उसकी पहली पत्नी रमाबाई मर चुकी थी और उसके कोई संतान न थी[१]। अस्तु गंगाधरराव ने मनुबाई या लक्ष्मीबाई से विवाह रचाया और यह विवाह उसके शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना बन गया ।

१ - लक्ष्मीबाई का वंश और जन्म -

पुण्यस्मरणीया महारानी लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपन्त तांबे के पूर्वज महाराष्ट्र में सतारा के निकट बाई नामक ग्राम के निवासी थे । वे करहाड़े ब्राह्मण थे । उनकी पीढ़ियों से पूना के पेशवाओं से बड़े ही अच्छे सम्बन्ध चले आ रहे थे । मोरोपन्त के पितामह कृष्णराव तांबे बाई के एक माल गुजारी विभाग के अधिकारी थे । उनके पुत्र बलवन्त

---

१ - फा० पोलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२ नं० ६६, तहमान्कर० पृ० २० ।

पेशवा की कृपा से उत्तम पद पर नियुक्त थे । इन बलवन्त के मोरोपन्त और सदाशिव नामक दो पुत्र थे, और जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि मोरोपन्त को लक्ष्मीबाई के पिता होने का गौरव प्राप्त था[२] ।

मोरोपन्त पेशवा बाजीराव द्वितीय के भाई चिमाजी अप्पा के विशेष कृपापात्र थे । जब अंग्रेजी सरकार ने सन् १८१७ ई० में पेशवाई समाप्त कर बाजीराव को ८ लाख की पेंशन देकर बिठूर में बसा दिया था तभी चिमाजी अप्पा पेशवा के साथ न रहकर काशी चले आये थे । मोरोपन्त भी उन्हीं के साथ काशी चले आये और उन्हीं की सेवा में रहने लगे थे[३] । मोरोपन्त की पत्नी भागीरथी ने यहीं काशी में एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया । इसका नाम मनुबाई रखा गया । यही मनुबाई कालान्तर में रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई[४] ।

पारसनीस के अनुसार मनुबाई का जन्म कार्तिक बदी १४, सं० १८९१ तदनुसार १६ नवम्बर १८३५ ई० को हुआ था[५] । उनके ही अनुसार फांसी के गंगाधरराव से मनु का विवाह सन् १८४२ ई० के बैशाख में हुआ था । अर्थात् मनुबाई की आयु तब लगभग ७ वर्ष रही होगी, जो पारसनीस के अपने ही कथन से तर्क संगत प्रतीत नहीं होती । क्योंकि वे आगे लिखते हैं

---

२ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १, ऐतिहासिक घराण्याचा वंशावली पृ०५२, चिपणूकर० पृ० ५ ।

३ - (पारसनीस) लक्ष्मीबाई पृ० १, २, सेन० पृ० २७६, बाजीराव सैकिंड एण्ड ईस्ट इंडिया कम्पनी (गुप्ता) पृ०२०२ सर देसाई० ३ पृ० ५०६ ।

४ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २, सावरकर० पृ० ६, चिपणूकर० पृ० ६, सेन० पृ० २७६ ।

५ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २, ~~अंगे० पृ० २~~, सावरकर० पृ० २८, मिढे० पृ० ३०, सेन० पृ० २७६, ऐतिहासिक घराण्याचा वंशावली पृ० ५२ ।

कि `..... मनु कोरी बालिका ही नहीं रही । प्रकृति ने जो नियम निर्धारित किये हैं वे समय पर फलीभूत हुए बिना नहीं रहते । तात्पर्य यह है कि बाल्यावस्था के पश्चात् युवावस्था के चिन्ह मनुबाई में दिखाई देने लगे । तब मोरोपन्त को कन्या के विवाह की चिन्ता होने लगी ।`[६] पारसनीस के इस कथन से यह सहज़ ही अनुमान होता है कि लक्ष्मीबाई विवाह के समय ७ वर्ष की अबोध बालिका न रहकर विवाह योग्य हो चुकी थी । इसी कारण मोरोपन्त चिन्तित हो उठे थे । यदि लक्ष्मीबाई की आयु विवाह के समय केवल ७ वर्ष होती, तो मोरोपन्त के चिन्तित होने का कोई कारण ही नहीं उठता था । `मांझा प्रवास` का लेखक गोडसे लिखता है कि ` इस तरह बड़े राज-ठाठ और सुख में पली हुई वह लड़की ११ - १२ वर्ष ( की अवस्था ) में ही पहाड़ सी दिखने लगी थी । इस कारण मोरोपन्त को बड़ी लज्जा आती थी ।`[७] सारांश यह है कि आयु से अधिक स्वस्थ होने और बड़ी लगने के कारण लक्ष्मीबाई मोरोपन्त की चिन्ता का कारण बन गई थी । यदि मनु केवल ७ वर्ष की ही होती तो फिर मोरोपन्त को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता ही न थी ।

लक्ष्मीबाई की जन्म-तिथि विवादग्रस्त है । तहमान्कर लक्ष्मीबाई का विवाह १८४२ में होना तो स्वीकार करते हैं, किन्तु वे उनका जन्म १८३५ ई० में होने पर शंका व्यक्त करते हैं । इस शंका का कारण बताते हुए वह लिखते हैं कि मनु ब की अधिक आयु के कारण ही मोरोपन्त चिन्तित थे । फिर ` के ` और ` मैकफर्सन ` का भी मत है कि मृत्यु के समय उनकी आयु लगभग ३० वर्ष की थी । अस्तु इसी सबको ध्यान में रखकर तहमान्कर लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८२७ में या उसके लगभग हुआ मानते हैं ।[८]

स्मिथ का भी मत तहमान्कर से मिलता जुलता ही है । उनका कहना है कि लक्ष्मीबाई का विवाह सामान्य बालिकाओं से अधिक

---

६ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ५

७ - ब गोडसे० पृ० ५५ ।

८ - के० भाग ३ पृ० ३६१, तहमान्कर० पृ० २३, फा० पौलि० कन्स० ३१ - दिसम्बर १८५८ नं० ४२८३ ।

उम्र में हुआ था और इसीलिए उनका अनुमान है कि रानी का विवाह १४-१५ वर्ष की आयु में हुआ होगा तथा मृत्यु के समय (१८ जून १८५८) उनकी आयु लगभग ३० वर्ष की रही होगी । किन्तु अन्त में स्मिथ यह भी लिखते हैं कि गदर के समय जिस समय १४ वीं हुज़ार रेजीमेण्ट ने भाग लिया था, उसकी जो १४ वीं लाइट ड्रैगून थी उसके अनुसार रानी की आयु तब २४ साल की थी।[६] किन्तु अनुमान में कुछ कमी-ज्यादा भी हो सकती है।

झांसी के रानी के आधुनिक उपन्यासकार बाबू - वृन्दावनलाल वर्मा ने उनके जीवन पर कुछ शोधं सी कर उनके परिणामों का उपभोग अपने उपन्यास में किया है। किन्तु वे भी लक्ष्मीबाई की जन्म-तिथि पर तनिक भी प्रकाश नहीं डाल सके हैं और उन्होंने पारसनीस द्वारा दी गई जन्म-तिथि (१९ नवम्बर, १८३५ ई०) को ही स्वीकार कर लिया है। उन्होंने पारसनीस द्वारा दी गई विवाह की तिथि को स्वीकार न कर उनका विवाह १३-१४ वर्ष की अवस्था में होना बताया है। उनके अनुसार विवाह के समय मनु १३-१४ वर्ष की और गंगाधरराव ४० वर्ष से कुछ ऊपर थे।[१०] यदि हम बाबू वृन्दावनलाल वर्मा का अनुसरण करें और उनकी जन्म-तिथि - १८३५ ई० में मानकर विवाह १३-१४ वर्ष में हुआ मान लें, तो फिर यह विवाह १८४८-४९ में ही होना चाहिए था। पर यह ठीक नहीं है। रानी लक्ष्मीबाई का विवाह बैशाख १८४२ में हुआ था। जिसकी पुष्टि गंगाधरराव द्वारा प्रेषित अपने विवाह के एक निमंत्रण से भी होती है। यह निमंत्रण पत्र इस प्रकार है," श्री महाराज कोमार श्री कुंवर रंधीरसिंघजू देव ऐते श्री महाराजाधिराज श्री पंडित श्री राव गंगाधरराव बहादुरजू के बांच्ये आपर उहांके समाचार भले चाहिजे इहा के समाचार भले हैं आपर इहा षास विवाह है बैसाख सुदि ६ सोमे की सीमांत पूजन सुदि ८ बुधे को देव अस्थापन सुदि १० गुरीऊ को गोधूल समय लग्न परकमा है सु नेवते आइवी पाती समाचार लिषत रहिवी

---

६ - स्मिथ० पृ० ११ ।

१० - वर्मा० पृ० ३४ ।

चैत्र सुदि ७ १८६६ नमोर के रुपैया २ पठवार हैं।[११] यहां इस ओर - ध्यानाकर्षित किया जा सकता है कि लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपन्त, चिमाजी और अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ही बाजीराव द्वितीय के दरबार में अपनी पुत्री को लेकर बिठूर चले आये थे और चूंकि चिमाजी की मृत्यु सन् १८३२ में हुई थी,[१२] इसलिए अनुमान होता है कि लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८३२ ई० के पहले ही हुआ होगा। फिर ऐसा भी कहा जाता है कि जिस समय मोरोपन्त तांबे चिमाजी की मृत्यु के पश्चात् बिठूर आये तब लक्ष्मीबाई की आयु ३-४ साल की थी। इस बात की पुष्टि गोडसे के इस कथन से होती है कि जिस समय तांबे की पत्नी मरी उस समय उनकी लड़की की आयु ४ वर्ष की थी।[१३]

ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे चिमाजी अप्पा और लक्ष्मीबाई की माता भागीरथी बाई का देहान्त थोड़ा ही आगे पीछे हुआ होगा, और अपने इन दोनों प्रियजनों की मृत्यु से व्यथित होकर मोरोपन्त ने उनकी कष्टदायक स्मृति से जुड़ी काशी को छोड़कर बिठूर चले आने का निश्चय किया होगा। तब फिर लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८२७-२८ में होना केवल सम्भव ही नहीं बल्कि निश्चित सा ही लगता है। हुज़ार रेजीमेण्ट के लाइट ड्रैगून का यह उल्लेख कि रानी की आयु मृत्यु के समय २४ वर्ष की थी, केवल उनके अनुमान पर ही आधारित था। भारतीय स्त्रियों की आयु का ठीक अनुमान अंग्रेज सैनिकों के लिए, सो भी युद्ध के समय लगाना आसान न

---

११ - इस पत्र की मूल प्रति बढ़ौनी के ठाकुर श्रीनारायणसिंह जी बुन्देला के पास सुरक्षित है।

१२ - सेन० पृ० २६०, पाद टिप्पणी ८, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ३, किमण्ड चिपलूकर० पृ० ६, तहमान्कर० पृ० २३, सावरकर० पृ० २८ ।

१३ - गोडसे० पृ० ५५, चिपलूकर० पृ० ६, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ३, वर्मा० पृ० २७ ।

था, और इसलिए ड्रेगन के उपरोक्त उल्लेख को विशेष गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता। अतस्व यही युक्ति संगत प्रतीत होता है कि लक्ष्मीबाई का जन्म १८२७-२८ में ही कभी हुआ होगा।

२ - बचपन और विवाह -

लक्ष्मीबाई के माता-पिता ने उसका नाम गंगाजी के नाम पर मणिकर्णिका रखा था, पर वे लाड़ में उसे मनु कहते थे। मनु की माता भागीरथी बड़ी ही धर्मपरायण स्त्री थीं। वे नित्य विश्वेश्वर के मंदिर जाया करती थीं। मनु भी उनके साथ हो लेती थी। इस प्रकार बचपन से ही उसमें धार्मिक संस्कार पड़ने लगे थे। किन्तु मनु अपनी माता की छत्रछाया में अधिक दिनों तक न रह सकी। जब वह केवल चार वर्ष की ही थी तभी भागीरथी उसे अनाथ छोड़कर स्वर्ग पधार गई। मोरोपन्त ने किसी तरह यह आघात फेलकर मनु को माता का अभाव खटकने नहीं दिया, पर फिर भी उनका मन काशी में न जम सका। अपने संरक्षक चिमाजी अप्पा और प्रिय पत्नी भागीरथी की अकाल मृत्यु ने काशी से उन्हें जैसे विरक्त सा कर दिया। फिर चिमाजी की मृत्यु से उनका सहारा भी जाता रहा। इसलिए मानसिक आघातों के साथ ही आर्थिक अभावों से पीड़ित होकर मोरोपन्त पेशवा बाजीराव द्वितीय के पास आश्रय ढूंढ़ने बिठूर चले आये। वृद्ध पेशवा ने उन्हें उचित संरक्षण दिया और ४ वर्ष की मनु तो उनके लिए जैसे जीती जागती गुड़िया सी बन गई। मनु की सहज बाल सुलभ चपलता और मनहारिणी छवि से प्रमुदित होकर बाजीराव ने उसका नाम छबीली रख दिया। मणिकर्णिका मनु से छबीली बनी और भाग्य अब उसे फांसी की रानी लक्ष्मीबाई बनाने का मार्ग प्रशस्त कर रहा था।[१४]

छबीली बिठूर में पेशवा के दत्तक पुत्र नानासाहब के भतीजे राव साहब और उनके मित्र सेवक तात्याटोपे के साथ खेलकर तारुण्य की ओर जैसे पेंगे भरती रही। पूजा-पाठ में जो काशी से पुरानी रुचि थी कम होने

---

१४ - गोडसे० पृ० ५५, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ३, तहमानकर० पृ०२३, २५, चिपलूकर०पृ० ६, सावरकर० पृ० २८, मिडे० पृ० ३१ ।

लगी । उसे अब बालोचित खेलों में अधिक आनन्द आने लगा । नाना साहब रावसाहब व तात्याटोपे के साथ वह पतंग उड़ाती, होड़ लगाकर दौड़ती और घुड़सवारी, बन्दूक और तलवार चलाने में उनसे बराबरी का दावा करती । छबीली की थोड़ी बहुत उस युग के उपयुक्त पढ़ाई लिखाई भी हुई । मराठी, संस्कृत और हिन्दी का काम चलाऊ ज्ञान उसने प्राप्त किया और रामायण जैसे धर्म ग्रन्थों का भी उसने पठन-पाठन किया[१५]। किन्तु छबीली की स्वाभाविक रुचि पढ़ाई-लिखाई की ओर न होकर पुरुषोचित कार्य की ओर अधिक थी । यहां तक कि लड़कों की कुश्ती देखने और मलखम्ब मांजने में भी उसे संकोच का अनुभव नहीं होता था[१६]। पेशवा बाजीराव और मोरोपन्त भी इस मातृ- प्रेम से वंचित बालिका पर कठोर अनुबन्ध न लगाकर उसे थोड़ी अधिक ही स्वतंत्रता देते रहे । फिर सुन्दर और चपल होनेके कारण उसे सहज ही कोई किसी बात के लिए मना नहीं कर पाता था । इससे यह अनुमान होता है कि छबीली में बालोचित हठ औरआत्मविश्वास का वह अंकुर सहज ही जम गया होगा, जो झांसी की रानी बनने पर और अधिक विकसित हो उठा था । चूंकि पेशवा बाजीराव द्वितीय की पेशवाई समाप्त कर उसे बिठूर में रख दिया गया था, इसलिए बिठूर का वातावरण अंग्रेज विरोधी होना स्वाभाविक ही था और इस वातावरण में अंग्रेज विरोधी भावनायें मनु के मन में बचपन से ही अंकुरित हो उठी होंगी, तथा जब उस पर स्वयं आ बीती तो इन्हीं भावनाओं ने विस्फोटक रूप धारण कर लिया ।

छबीली के स्त्रियों और बालिकाओं की संगति में कम रहने के कारण उसमें बालिकाओं की लाज और संकोच की भावना थोड़ी दबती सी गई और नारी सुलभ संकोच शीलता और झिझक का स्थान हठ और पुरुषोचित दृढ़ता ने ले लिया । उदाहरण के लिए कहा जाता है कि

---

१५ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० ४, वर्मा० पृ० २७, गोड्से० पृ० ५५ ।

१६ - गोड्से० पृ० ५५, तहमान्कर० पृ० २६, वर्मा० पृ० २८ ।

एक दिन नानासाहब और रावसाहब हाथी पर सवार होकर घूमने निकले । मनु ने भी हाथी पर सवार होने के लिए हठ किया । बाजीराव ने नानासाहब को मनु को हाथी पर बैठाने का संकेत किया, किन्तु नानासाहब ने पिता के संकेत की ओर कोई ध्यान नहीं दिया । इधर मनुबाई जिद पर अड़ी हुई थी । बेटी का हठ देखकर मोरोपन्त क्रोधित होकर बोले, " क्या तेरे - भाग्य में हाथी बदा है ? क्यों निरर्थक हठ करती है ? " मनु ने तड़ाक से उत्तर दिया कि " हां ! मेरे भाग्य में एक छोड़ १० हाथी बदे हैं ।"[१७] बाल्यावस्था की अबोधता में मनु के मुख से निकला हुआ यह वाक्य भविष्य में अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ । छबीली के मुक्त, स्वच्छन्द और संकोच हीन बाल्य जीवन ने उसके शारीरिक विकास में सहज योगदान दिया और बालकों के खेलों ने उसको सामान्य बालिकाओं से कहीं अधिक स्वस्थ और विकसित बना दिया, जिससे वह अपनी उम्र की बालिकाओं से आयु में अधिक दिखने लगी । " मांझा प्रवास " का लेखक गोडसे भी लिखता है कि " इस तरह बड़े राज-ठाठ और सुख में पली हुई वह लड़की ११ - १२ वर्ष की आयु में पहाड़ सी दिखने लगी ।"[१८] गोडसे ने ११-१२ वर्ष की छबीली की सहज सुन्दरता का वर्णन इस प्रकार किया है, " शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह वह दिनों दिन अधिक सतेज होती गई । लड़की का रंग बड़ा गोरा था । वह दुबली पतली और ऊंचे कद की थी । चेहरा लम्बा, सीधी नाक, ऊंचा ललाट और आंखें कमल की तरह विशाल थीं ।"[१९] ऐसी सुन्दर और सतेज कन्या को देखकर किस पिता को चिन्ता न हो जाती । इसलिए अभी तक छबीली के हाथ पीले न कर पाने के कारण मोरोपन्त को बड़ी लज्जा आती थी ।[२०]"

मोरोपन्त ने अब और देर न कर मनु के लिए वर की खोज प्रारम्भ करदी । किन्तु बिठूर के आस-पास वे कोई उपयुक्त ब्राह्मण

---

१७ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० ४, तहमान्कर० पृ० २६, सिंह० पृ०३१ ।

१८ - गोडसे० पृ० ५५ ।

१९ - गोडसे० पृ० ५५, वर्मा० पृ० २८ ।

२० - गोडसे० पृ० ५५ ।

वर न ढूंढ सके । इसलिए अब उन्होंने निकटवर्ती स्थानों जैसे गुरसरायं, जालौन आदि में खोज की किन्तु जैसाकि गोड्से लिखता है कि " भविष्य तो छबीली को रानी के रूप में देख रहा था, इसलिए कहीं लग्न जमीं ही नहीं ।[२१] भाग्यवश एक दिन फांसी से तात्या दीक्षित नामक एक ब्राह्मण बाजीराव से मिलने बिठूर आये । मोरोपन्त ने इस अवसर का लाभ उठाकर अपनी पुत्री की जन्मपत्री उन्हें दिखाते हुए मनु के लिए कोई योग्य वर ढूंढने का आग्रह किया । दीक्षित जी मनु की जन्मपत्री देखकर बहुत प्रभावित हुए[२२] । उन्हें जैसे फांसी के विधुर राजा गंगाधरराव का ख्याल हो आया और वे मन ही मन एक मनसूबा बांधते हुए - फांसी लौट आये । यहां गोड्से के नीचे उद्धृत उल्लेख से ऐसा अनुमान होता है कि जैसे तात्या दीक्षित फांसी के राजा गंगाधरराव के इशारे पर ही मनु को देखने बिठूर आये थे । गोड्से लिखता है कि " बाबा (गंगाधरराव) के कड़े स्वभाव के कारण कोई भी उन्हें अपनी लड़की देने को तैयार न होता था । कुछ दिनों बाद बाबा साहब को एक कारकून द्वारा यह खबर लगी कि ब्रह्मावर्त में श्रीमन्त की होमशाला में एक ताम्बे नामक भिक्षुक ब्राह्मण है । उनकी कन्या सुन्दर और सुशील है तथा विवाह के योग्य है[२३] । सम्भवत: यह कारकून तात्या दीक्षित ही थे । गंगाधर ने तुरन्त ही कुछ लोगों को बात पक्की करने के लिए बिठूर रवाना किया । संक्षेप में दोनों पक्षों की गयी और तात्या दीक्षित की मध्यस्थता से मनु का विवाह गंगाधर से होना निश्चित हुआ । मोरोपन्त ने दो एक हल्की सी ~~शेत~~ शर्तें रखीं, जो गंगाधर ने तुरन्त ही स्वीकार करलीं । ये शर्तें थीं कि विवाह के व्यय का वहन गंगाधरराव करेंगे और विवाह फांसी में होकर होगा । फिर चूंकि मोरोपन्त के कोई पुत्र संतान न थी इसलिए उनके दूसरे विवाह का खर्च भी फांसी से ही दिया जायगा । अन्तिम शर्त यह थी कि मोरोपन्त फांसी में स्थायी रूप से रहेंगे और उनकी गणना फांसी के प्रमुख

---

२१ - वही ।

२२ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ५-६ ।

२३ - गोड्से० पृ० ५४ ।

सरदारों में की जायगी।[२४] यह सब तय हो जाने पर मोरापन्त छबीली को लेकर फांसी चले आये। शहर में उन्हें कोठीकुवां के पास ठहरने के लिए एक अच्छा - भवन दिया गया।[२५] शुभ मुहूर्त में विवाह हुआ और महाराष्ट्रीय प्रथा के अनुसार वधू का नाम बदलकर लक्ष्मीबाई रखा गया। विवाह की प्रथायें गणेश मन्दिर और कोठीकुवां वाले भवन में सम्पन्न हुई।[२६] विवाह के समय की एक घटना की स्मृति फांसी निवासियों के हृदय में आज भी सुरक्षित है। कहा जाता है कि जिस समय भंवरे पड़ रही थीं और वर-वधू के दुपट्टों की गांठ बांधी जा रही थी, उस समय बालिका वधू ~~मनुत्ते~~ चपलता से पुरोहित जी से कह ही बैठी, "पुरोहित जी जरा गांठ खूब मजबूत बांधना।"[२७] कहना न होगा यह गांठ फांसी के लिए कितनी मजबूत प्रमाणित हुई।

३ - लक्ष्मीबाई का वैवाहिक जीवन -

विवाह के उपरान्त लक्ष्मीबाई पति के कटु स्वभाव और कठोर शासन के कारण सुखी न रह सकीं। फिर गंगाधरराव की प्रारंभ से ही नाटकों में रुचि थी और उसका अधिकांश समय इन नाट्य मंडलियों में ही व्यतीत होता था। उसे अभिनय करने का भी चाव था। पुरुष के अभिनय से ही संतुष्ट नहीं होता था वरन् कभी कभी स्त्रीवेश में भी अभिनय करता था।[२८] इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा पति कैसा रहा होगा ? गंगाधरराव के चरित्र तथा आयु की भयंकर असमानता निश्चय ही लक्ष्मीबाई के वैवाहिक जीवन में कटुता घोलते रहे होंगे। इससे स्वतंत्र और चपल मनु के स्वच्छन्द, उन्मुक्त और स्वाभाविक गुणों पर राख जमती गई होगी। फिर अधेड़ गंगाधर

---

२४ - गोड्से० पृ० ५६, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ६ वर्मा० पृ० २६, तहमान्कर० पृ० २७।
२५ - वर्मा० पृ० ५६।
२६ - वही पृ० ६२।
२७ - वही पृ० ६२, ६६, ७०, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ६, तहमान्कर०२८
२८ - वर्मा० पृ० ८-६ ।

की ईर्ष्यालु प्रकृति ने तरुण लक्ष्मीबाई पर जो बंदिशें लगा रखी थीं, उन्होंने भी लक्ष्मीबाई के चारित्रिक गुणों पर जंग सी लगा दी होगी । किन्तु बाबू वृन्दावनलाल वर्मा जैसे गंगाधरराव के वे व्यसनों पर पर्दा डालने का प्रयास करते हुए लिखते हैं कि " ऐसी उग्र स्त्री के लिए तो ऐसा ही पति चाहिए था ।[२९] समकालीन लेखक विष्णु गोडसे गंगाधर के रनिवास में लक्ष्मीबाई की स्थिति का उल्लेख करते हुए बड़े ही सारगर्भित शब्दों में लिखता है कि " विवाह हो जाने पर लक्ष्मीबाई सुखी न हुई । पति बड़े कड़े स्वभाव का था और उसका शासन भी कठोर था । उसे जरा भी स्वतंत्रता नहीं दी गई । महल के बाहर निकलने की तो बात ही न की जाय, महल के अन्दर भी बाई साहब अधिकतर ताले में रहती थीं । सशस्त्र स्त्रियां हर समय पहरा दिया करती थीं । पुरुषों की तो वहां हवा भी न पहुंचने पाती थी । ऐसे जुल्म जोर के कारण छुटपन में सीखे हुए उसके चमत्कारी गुण तो छूटने ही लगे थे, कुछ दुर्गुण भी आने लगे थे ।[३०] किन्तु ये दुर्गुण क्या थे इनके विषय में गोडसे ने मौन रहना ही उचित समझा । सब मिलाकर यह प्रतीत होता है कि लक्ष्मीबाई का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था और यही कारण था कि गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् वे सामान्य हिन्दू विधवा की तरह जीवन से विरक्त नहीं हुई बल्कि उनके बचपन के बिठूर के दरबार में अंकुरित गुण फिर से जैसे पनप उठे । रानी की जैसी साज-सज्जा का वर्णन गोडसे करता है[३१] उससे और कुछ भी अनुमान लगाया जाय पर यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि गंगाधरराव से लक्ष्मीबाई का वैसा लगाव रहा होगा जैसा कि किसी भी युवती का किसी स्नेहपूर्ण संवेदनाशील युवक पति के प्रति होता है । और इसमें आश्चर्य ही क्या था ? बल्कि उपरोक्त तथ्यों से तो यह स्वाभाविक ही लगता है । संक्षेप में कहा जा सकता

---

२९ - वही पृ० ३४ ।

३० - गोडसे० पृ० ५६ ।

३१ - वही पृ० ६५-६६ ।

है कि लक्ष्मीबाई का वैवाहिक जीवन एक सोने का पिंजड़ा मात्र था ।

किन्तु समय अपनी गति से घूमता रहा और पति-पत्नी के सम्बन्ध किसी तरह चलते रहे । रानी धीरे धीरे अपने पति के स्वभाव गुणों और दुर्गुणों की आदि होती गई और समय के साथ-साथ गंगाधर का रुख भी उनके प्रति नर्म, सदय और स्नेहपूर्ण होता गया । ७-८ वर्ष के दाम्पत्य जीवन और साहचर्य ने उन्हें एक दूसरे के प्रति और अधिक सहनशील और सद्भावना पूर्ण बना दिया । फलस्वरूप गंगाधर यदा कदा रानी को प्रसन्न करने के लिए उत्सुक रहने लगे । इसीलिए जब रानी ने उनसे अपनी जन्म-भूमि काशी और अन्य तीर्थ स्थलों के दर्शन करने की अभिलाषा व्यक्त की तो गंगाधर ` न `नकरसके । राजसी ठाठ-बाट से सम्वत् १९०७ (१८५० ई०) के माघ महिने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन लक्ष्मीबाई सहित तीर्थाटन को निकल पड़े । उन्होंने काशी के साथ साथ प्रयाग, गया आदि तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया और सामर्थ्य भर दान दक्षिणा देकर यश पुण्य अर्जित किया ।[३२]

गंगाधरराव का क्रोध समय कुसमय नहीं देखता था । काशी पहुंचने पर राजेन्द्र बाबू नामक एक युवक ने गंगाधर को उचित सम्मान नहीं दिया । गंगाधर का क्रोध भड़क उठा और उसने उसे कोड़ों से पिटवाया । राजेन्द्र बाबू ने अंग्रेज सरकार से याचना की किन्तु वहां से उत्तर आया कि गंगाधरराव बहुत बड़े राजा हैं, यदि तुम्हें उनको खड़ी ताजीम देना स्वीकार न था तो घर बैठे रहते ।[३३]

झांसी लौटने के पश्चात यहां बड़ा भारी आनन्दोत्सव मनाया गया । उसी वर्ष राजा रानी की तीर्थ यात्रा भी सफल हुई और अगहन सुदी ११, सं० १९०८ (१८-५१ ई०) को लक्ष्मीबाई ने पुत्र को जन्म दिया ।[३४]

---

३२ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २२, वर्मा० पृ० ८२, तह्मान्कर० पृ०२८

३३ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २२, वर्मा० पृ० ८२ ।

३४ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३, वर्मा० पृ० ११०, तह्मान्कर० पृ० २८, मि०० पृ० ३२, चिपळूणकर० पृ० १० ।

इस समाचार के प्राप्त होते ही झांसी निवासियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई क्योंकि झांसी की राज्य गद्दी रामचन्द्रराव की मृत्यु (अगस्त - १८३५) के पश्चात् औरस पुत्र के अभाव में भाइयों को ही प्राप्त होती चली आरही थी । गंगाधर के विषय में जनता की जो धारणायें थीं उनमें भी परिवर्तन आया । इस अवसर पर नगर नव-वधू की तरह सजाया गया । अब गंगाधर के कटु स्वभाव में भी अन्तर आया और अब उसका अधिकांश समय बालक के समीप ही व्यतीत होने लगा । किन्तु दैव को झांसी निवासियों की प्रसन्नता अधिक न भाई और ३ माह पश्चात् ही बालक की मृत्यु से नगर में मातम छा गया[३५] ।

४ - गंगाधरराव की बीमारी, पुत्र गोद लेना और मृत्यु -

पुत्र की मृत्यु से महाराज के मन को भी बड़ा सदमा लगा । अब उनके स्वभाव में और कठोरता आगई । अन्तर द्वन्द्व के कारण गंगाधर के मन में क्रोध की मात्रा और अधिक बढ़ गई और यह क्रोध रानी और दरबारियों पर उतरने लगा । जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि रानी को घोड़े की सवारी और कुश्ती आदि से बचपन से ही चाव था । विवाह के पश्चात् भी वे किले के भीतर वाले महल में घुड़ सवारी और कसरत का अभ्यास करती थीं । किन्तु अब गंगाधर ने किले के भीतर वाले महल में चारों ओर ऊंची ऊंची कनातें लगवादीं जिससे रानी को घोड़े की सवारी में अड़चन आने लगी । मलखम्ब और कुश्ती का प्रबन्ध उन्हें अपने भीतर वाले कक्ष के मोटे मोटे कालीनों की पर्तों पर करना पड़ा, किन्तु उन्होंने अभ्यास नहीं छोड़ा । गंगाधर ने रानी की दासियों को भी बदलने का प्रयास किया किन्तु सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई को वे न हटा सके[३६] । उनका स्वभाव और अधिक कठोर और उग्र हो उठा । उन्होंने अपराधियों को नये नये तरीकों से

---

३५ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३, चिपळूकर० पृ० १०, तहमान्कर० पृ०२८ वर्मा० पृ० ११५, गौर० पृ० ३३६ ।

३६ - वर्मा० पृ० ८४ ।

दंडित करना प्रारम्भ कर दिया।[३७]

पहले के अनियंत्रित जीवन, पुत्र के वियोग और क्रोध के दुष्परिणाम शीघ्र ही गंगाधर के शरीर पर दृष्टिगोचर होने लगे। इसने उनके शरीर में विष सा घोल दिया और सन् १८५२ में जो बीमार हुए तो फिर स्वस्थ न हो सके। औषधोपचार से उनके स्वास्थ्य में कुछ अन्तर आया और सन् १८५३ में फांसी में महालक्ष्मी का बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर अपनी कुलदेवी महालक्ष्मी के प्रति भक्ति व्यक्त करने के लिए गंगाधर ने थोड़ा सा परिश्रम किया। इससे उनका स्वास्थ्य और भी अधिक खराब हो गया।[३८]

चूंकि औषधियां अपना असर नहीं दिखा रही थीं और गंगाधर की दशा दिन पर दिन सोचनीय होती जा रही थी, इसलिए उन्होंने अपने मंत्रियों नरसिंहराव अप्पा, लाला लाहौरीमल, और लल्ली - फतेहचन्द से दत्तक पुत्र लेने के विषय में विचार विमर्श किया। उन्होंने अपने ही गौत्र और सम्बन्धी वासुदेव के पुत्र आनन्दराव को गोद लेने का निश्चय किया। आनन्दराव गंगाधर के पूर्वज रघुनाथराव की छटवीं पीढ़ी में से था।

---

३७ - वही पृ० ८६ ।

३८ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३ ।

यह नीचे दिये हुए वंश वृक्ष [३६] से स्पष्ट हो जायगा -

---

३६ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५४, १६२ ।

आनन्दराव की आयु इस समय ५ वर्ष थी और वह सुन्दर और होनहार था । इसलिए रानी ने भी उसका समर्थन किया । उस समय फांसी के पालिटिकल एजेन्ट एलिस और सेनाधिकारी मार्टिन फांसी से ६ कोस दूर सागर (बरुआसागर) में थे । गंगाधर के मंत्रियों ने तुरन्त ही उन्हें बुला भेजा और २० नवम्बर १८५३ को प्रात: १० बजे एलिस मार्टिन और फांसी के प्रमुख दरबारियों के समक्ष विनायकराव पंडित द्वारा हिन्दू धर्मानुसार गोद लेने की रस्म सम्पन्न हुई । इसके बाद ही बालक का नाम बदलकर दामोदर गंगाधरराव रख दिया गया[४०]।

इस दत्तक समारोह के समाप्त होते ही गंगाधर ने फांसी के पोलिटिकल एजेन्ट एलिस को एक खरीता प्रेषित किया । इसमें उन्होंने अंग्रेज सरकार के प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करते हुए अनुरोध किया कि उनके द्वारा गोद लिये दामोदरराव को उनका उत्तराधिकारी मान लिया जाय और जब तक रानी जीवित रहे तब तक वही राज्य की स्वामिनी और बालक की संरक्षिका समझी जाय तथा राज्य की व्यवस्था उसी के अधीन रहे[४१]।

एलिस ने २० नवम्बर, १८५३ की सन्ध्या को फांसी के स्वास्थ्य अधिकारी डा० ऐलन के साथ महल की ओर प्रस्थान किया । मार्ग में ही उन्हें एक सवार मिला जिसने राजा की मूर्छित होने की खबर दी । एलिस और ऐलिन ने अभी पहले सवार से वार्ता में लगे हुए थे कि दूसरे सवार ने आकर कहा कि राजा ने उन्हें शीघ्र महल बुलवाया है । वे जब तक महल में पहुंचे तब तक गंगाधर की स्थिति इतनी सोचनीय हो गई थी कि उन्हें ऊपरी मंजिल से उतारकर -

---

४० - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५३, १५४, १६०, १६१, १६३, १७२, १७७, १८०, पालिटिकल डिस्पैच टू डायरेक्टर्स ४ मार्च १८५४ नं० २१, रहीम० पृ० २०६, तहमान्कर० पृ० ३०, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २५, फारिस्ट० भाग ४ पृ० २, बेल पृ० २०२, गौरे० पृ० ३३८, गोडसे० पृ०५७, सेन० पृ० २७४, वर्मा० पृ० १२० ।

४१ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५४, १७७, रहीम० पृ० २०६ ।

नीचे रनिवास के समीप ले जाया गया था । डा० ऐलिन ने उनसे अपनी औषधि लेने का बहुत आग्रह किया, पर गंगाधरराव अंग्रेजी औषधि लेना धर्म विरुद्ध समझते थे, इसलिए पहले तो उन्होंने औषधि लेने से एकदम इन्कार कर दिया किन्तु बहुत समझाने बुझाने पर अन्त में इस पर राजी हो गये कि उसे वे गंगाजल में मिलाकर पी लेंगे । डा० ऐलिन ने तुरन्त ही अपने बंगले पर लौटकर अंग्रेजी दवा भेजी । लेकिन इसी बीच गंगाधर के हिन्दू धर्म संस्कार प्रबल हो उठे और उन्होंने वह दवा पीने से साफ इन्कार कर दिया[४२]। उस दिन स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही गई और दूसरे दिन अर्थात् २१ नवम्बर, सोमवार को बहुत ही सोचनीय हो गई । वैद्य, हकीमों की दवायें और प्रजा की प्रार्थनायें काम न आईं । विधि की वक्र दृष्टि लक्ष्मीबाई पर पड़ चुकी थी । रानी के पुण्य समाप्त हो गये थे । उसी दिन मध्यान्ह को लगभग १ बजे झांसी का अन्तिम शासक अपनी तरुण पत्नी और अबोध दत्तक पुत्र दामोदर को असहाय छोड़कर चल बसा । लक्ष्मीबाई का सुहाग दीप बुझ गया । झांसी में श्मशान जैसी शान्ति छा गई किन्तु संस्कार और परम्परायें प्रबल थीं । शोक सन्तप्त बालक दामोदरराव ने उनके अन्तिम संस्कार सम्पन्न किये[४३]।

५ - गंगाधरराव का चरित्रांकन -

गंगाधरराव जन साधारण में बाबा साहब के नाम से प्रसिद्ध थे । उनका शासन कठोर था और कहीं कहीं वे अत्याधिक क्रूर भी हो उठते थे । पर तत्कालीन स्थिति में राजसत्ता का आतंक जमाने और शांति सुरक्षा स्थापित करने के लिए यह आवश्यक था । गोडसे उनकी शासन व्यवस्था का आंकलन सा करता हुआ लिखता है कि ` गंगाधर बाबा का राज्य के नौकरों और प्रजा पर

---

४२ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५४, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २८-२९, तहमान्कर० पृ०२९-३० वर्मा० पृ० १३२ ।

४३ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५३, १५४, १६३, १७१, १७२, १७९, १८०, रहीम० पृ० २०६, होलकोम्ब० पृ०११, मार्टिन० पृ०४५९, वैल ~~समफ~~ पृ०२०२, झांसी गजे० पृ० २०४, भिडे० पृ० ३७, सावरकर० पृ० ४१, मार्क्विस आफ डलहौजी पृ० १३९, फा० पोलि० कन्स० २३ जून १८५४ नं० ११७, सेन० पृ०२७४ वर्मा० पृ० १३३ ।

बड़ा रौबदार था । उनकी यह आशा थी कि रोज का काम ठीक समय पर होना चाहिए । किसी काम में विलम्ब होते ही वे स्वयं कोड़ा लेकर शासन करते थे । न्याय के कामों में भी वे बड़े कठोर थे[४४] । शहर या राज्य में चोरी बहुत ही कम होती थी । कहा जाता है कि बाबा साहब ने चोरों की इतनी अच्छी व्यवस्था की थी कि लोग अपने घरों के किवाड़ खुले छोड़कर सो जाते थे । हर एक ठिकाने पर उसकी सुरक्षा के लिए एक एक जिम्मेदार आदमी रख छोड़ा था । यदि वहां चोरी हो जाय तो उस आदमी को माल की नुकसानी भरनी पड़ती थी । कई बार ऐसा भी हुआ कि चोरी का नुकसान राज्य खजाने से पूरा किया गया । पकड़े जाने पर चोर को धर्म शास्त्र के अनुसार ही उसके दोनों हाथ काटकर सजा दी जाती थी । गुण्डे लोग तो गंगाधर के नाम से थर-थर कांपते थे । प्रजा को न्याय देने में वे पल भर का भी विलम्ब नहीं करते थे । फांसी का राज्य न्याय और विचार पूर्वक चलता था । गोरे - साहब लोग भी गंगाधर बाबा से सदैव सतर्क रहकर बड़प्पन संभाला करते थे । किन्तु बाबा साहब की गारदन साहब से बातें हुईं, तो बाबा साहब ने कहा कि " मैं एक छोटा सा मांडलिक राजा हूं और अंग्रेज बहादुर के आगे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण उत्तर के देशों में जितने छोटे बड़े राजे-रजवाड़े हैं, उन सब ने हाथों में चूड़ियां पहन रखी हैं । देखिये आप लोग दूसरे देश के रहने वाले हमारे देश में आकर हमीं लोगों से कर लेते हैं । यह क्या आश्चर्य की बात नहीं है[४५] । बाबा साहब के राज्य में प्रजा सब तरह से सुखी थी और अंग्रेजों के दरबार में उनका बड़ा मान था ।

---

४४ - बाबू वृन्दावनलाल वर्मा लिखते हैं कि न्याय वे तत्काल करते थे, उल्टा सीधा जैसा समझ में आया मनमाना । दण्ड उनके कठोर और अत्याचार पूर्ण होते थे कट्टे में पैर डालना, उमेठना, हाथ-पांव कटवाना, अंगारों से अंग जलवाना, बिच्छुओं से कटवाना आदि उनके दण्डों में शामिल थे । वर्मा० पृ०८६,१०३ ।

४५ - गो०से० पृ० ५३-५४ ।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि गंगाधरराव में प्रशासकीय गुणों का विकास जैसे सत्ता संभालने के बाद हुआ । उसके पहले तो वे अपनी अयोग्यता और चारित्रिक निर्बलताओं के लिए इतने बदनाम थे कि रघुनाथराव की मृत्यु के पश्चात गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड ने उनका दावा स्वीकार करते हुए भी उनके चरित्र की जांच पड़ताल केलिए गुप्त आदेश दिये थे।[४६] स्लीमैन भी जब दिसम्बर १८३५ के मध्य झांसी आया था तब उसने भी गंगाधरराव की बदनामी का उल्लेख किया था और रघुनाथराव और उसकी तुलना करते हुए रघुनाथराव की प्रसंशा की थी तथा उसके बारे में लिखा था कि छोटा भाई गंगाधरराव बिल्कुल विपरीत है।[४७] और तो और रघुनाथराव की पत्नी ने तो अंग्रेज सरकार को इतना तक लिख भेजा था कि " गंगाधरराव में ऐसे दुर्गुण हैं जिनके बारे में लिखने में उसे शर्म आती है।[४८]" उनकी इस बदनामी का कारण उनके कुछ शौक थे, जैसे भीड़ भगतियों, खसियों इत्यादि के हंसी मज़ाक और आमोद प्रमोद में उनका काफी समय जाता था । नाटकशाला में तो रात का अधिकांश समय प्राय: बीतता ही था।[४९] उन्हें नाटक खेलने में बड़ी रुचि थी । वेश्यायें, गायिकायें और नर्तकियायें उनके नाटकों में काम करती थीं । पर स- इससे भी जैसे उनका जी नहीं भरता था और वे स्वयं स्त्रियों की भूमिका में उतर पड़ते थे।[५०]

गंगाधरराव के चरित्र का एक कलात्मक पहलु भी था । " वे साहित्य और ललित कलाओं के पूरे रसिक थे । सुखलाल काशी उनका चित्रकार था । पढ़ा लिखा कम किन्तु कलम और कूंची का आचार्य । गायक-वादक, खासकर

---

४६ - फा० पौलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२ नं० ६५ ।

४७ - रैम्बिल्स एण्ड रिकलैक्सन्स आफ एण्ड इंडियन आफीशियल भाग १ पृ०२६०।

४८ - फा० पौलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२नं० ६५ ।

४९ - वर्मा० पृ० ३३ ।

५० - वर्मा० पृ० ६, ३३ ।

ध्रुवपद, वीणा और पखवाज़ के उस्ताद और रीतिकाल और भक्ति रस की ओर वाले कवि गंगाधरराव की महफिल को आबाद करने लगे। उन्होंने दूर दूर से हस्त लिखित ग्रन्थ इकट्ठे करवाये और विशाल पुस्तक भण्डार से अपने पुस्तकालय को भर दिया। वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन, तंत्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण तथा काव्य आदि के इतने ग्रन्थ उनके पुस्तकालय में थे कि लोग दूर दूर से उनकी प्रतिलिपि के लिए आने लगे। नाटकों का उन्हें विशेष शौक था। वे संस्कृत नाटकों का अनुवाद हिन्दी और मराठी में करवाया करते थे और उनका अभिनय भी करवाते थे। शहर के महल के ठीक पीछे पश्चिमी दिशा में नाटकशाला थी।[५१]

गंगाधरराव शासक के रूप में असफल नहीं रहे थे। शासन के प्रारम्भ में उन्हें कुछ उपद्रवी जागीरदारों, ठगों, डाकुओं आदि का सामना करना पड़ा, किन्तु झांसी में स्थित अंग्रेजी सेना की सहायता से वे स्थिति संभालने में समर्थ हुए।[५२] गंगाधरराव ने सौभाग्य से कुछ अच्छे व योग्य व्यक्तियों को राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया था। जैसे उदाहरण के लिए राघव रामचन्द्र संत झांसी के राज्यमंत्री थे और दरबार के वकील नरसिंह राव थे। अपने इन दरबारियों और अंग्रेजी सेना के अधिकारियों की सहायता से ये झांसी में शांति और सुव्यवस्था स्थापित करने में सफल हुए। उन्होंने जिन जिन स्थानों पर ठाकुरों और बुन्देलों ने उपद्रव मचा रखा था वहां थोड़ी थोड़ी फौज भेजकर उसका यथोचित प्रबन्ध किया। इस प्रकार कार्य करने से झांसी प्रान्त में चारों ओर शांति ही शांति दिखाई देने लगी।[५३]

गंगाधरराव शान शौकत के शौकीन थे और उनका सामान्य रौबदाब भी अच्छा था। अंग्रेजी सरकार से अच्छे सम्बन्ध थे ही जिससे स्थानीय अधिकारी भी उनका सम्मान करते थे। बुन्देलखण्ड के राजे-रजवाड़े भी

---

५१ - वर्मा० पृ० ८ ।

५२ - तहमान्कर० पृ० १७ ।

५३ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २० ।

उन्हें यथोचित आदर देते थे और सम्मान से उन्हें काका साहब कहते थे[५४]।

संक्षेप में सब मिलाकर गंगाधरराव का ११ वर्षों का शासन अच्छा ही रहा था। वह राज्य कार्य में काफी व्यक्तिगत दिलचस्पी लेते थे और सार्वजनिक जनहित के कार्यों में बहुत ध्यान देते थे। इसलिए उनका शासन कठोर होने पर भी "निसन्देह जनप्रिय था[५५]।

---

५४ - वही पृ० २०-२२ ।

५५ - झांसी गजे० पृ० २०४ ।

अध्याय - ६

झांसी का अंग्रेजी साम्राज्य में विलीनीकरण और झांसी में अंग्रेजी शासन (१८५३-५७)

१ - दामोदर को मान्य कराने के रानी के प्रयत्न -

मेजर मालकम ने जब गंगाधर की मृत्यु और उसके द्वारा दत्तक पुत्र ले लिये जाने का समाचार डलहौजी को भेजा, तब वह अवध प्रान्त के दौरे पर था इसलिए झांसी के विषय में शीघ्र ही कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। इस बीच रानी ने भी दामोदर को गंगाधर के दत्तक पुत्र और राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता प्राप्त कराने के लिए प्रयत्न शुरु कर दिये और एक खरीता डलहौजी को भेजा। इस खरीते में उसने झांसी तथा ब्रिटिश सरकार के बीच मधुर सम्बन्धों का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए डलहौजी से दामोदर को दत्तक पुत्र और झांसी राज्य के शासक के रूप में मान्यता देने का आग्रह किया। रानी ने अपने आग्रह के पक्ष में तर्क देते हुए निम्न तथ्यों की ओर डलहौजी का ध्यान आकर्षित किया -

१ - दतिया का वर्तमान राजा विजयबहादुर (१८३६-५७) न तो दतिया के पूर्व महाराजा पारीछत (१८०१-३६) का औरस पुत्र था और न उसे दत्तक ही लिया गया था। कहा जाता था कि बालक विजयबहादुर को पारीछत ने सड़क के पास पड़ा पाया था और उसे वहां से लाकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, जो वैध नहीं था। फिर भी अंग्रेज सरकार ने उसे मान्यता देकर दतिया का राजा स्वीकार कर लिया था।

२ - दूसरा उदाहरण रानी ने ओरछा का दिया। ओरछा के राजा तेजसिंह (१८३४-४१) ने अपना औरस पुत्र न होने के कारण सुजानसिंह (१८४१-५४) को गोद लिया था। अंग्रेज सरकार ने उसे भी मान्यता प्रदान कर राजा मान लिया था।

३ - रानी ने एक अन्य उदाहरण जालौन का देते हुए लिखा कि जालौन के राजा बालाराव की मृत्यु (१८३२ ई०) के पश्चात् अंग्रेजों ने उसके दत्तक पुत्र को उसका उत्तराधिकारी तथा जालौन का राजा स्वीकार कर लिया था[१]।

उक्त सभी उदाहरण बुन्देलखण्ड के थे और इसीलिए रानी सोचती थी कि अंग्रेज सरकार ने दत्तक पुत्र स्वीकार करने की जो नीति दतिया, ओरछा और जालौन के प्रति अपनाई थी वही नीति, झांसी जैसे अंग्रेज भक्त राज्य के प्रति भी अपनाई जायेगी और दामोदर को उदारता पूर्वक राज्य का उत्तराधिकारी और झांसी का राजा मान लिया जायगा।

२ - <u>ऐलिस का सहानुभूति ~~पूर्ण~~ पूर्ण रुख</u> -

झांसी के असिस्टेन्ट पॉलिटिकल एजेन्ट ऐलिस का भी यही अभिमत था। इसीलिए उसने अपने २४ दिसम्बर, १८५३ के एक पत्र में माल्कम को अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा कि " हमारी - झांसी के राजा और ओरछा के राज्य से भी सहयोग और मित्रता की संधि है और मैं दोनों की शर्तों में किसी ऐसे अन्तर का पता नहीं लगा सका जिससे एक राज्य को दत्तक पुत्र लेने का विशेष अधिकार हम न दें और दूसरे को इसकी अनुमति दे दें[२]। ("We have a treaty of alliance and friendship with the Rajah of Jhansi as well as the Urchha State, and that I cannot discover any difference in the terms of the two which would justify our ~~xxxxxx~~ with holding the privilege of adoption from one state and allowing it to the other.")

---

१ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १६३, १७७ ।

२ - वही नं० १६६ ।

ऐलिस ने आगे अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा कि," कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के दिनांक २७ मार्च, १८३६ के प्रपत्र के पैरा ६ में देशी रियासतों के गोद लेने के अधिकार को बहुत ही स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है और यह उस उदार स्वतंत्रता की भावना के विपरीत होगा जिसने इन आदेशों को प्रेरित किया था कि उन परिवारों (राज्य वंशो) को, जिन्हें अंग्रेजी सरकार की सेवायें करने के पुरस्कार स्वरूप स्वयं हमने जन्म दिया है, यह अधिकार इस आधार पर न दिया जाय कि वे वैसी प्राचीन नहीं है जैसीकि दूसरी है।"

("The right of the Native States to make adoptions is most clearly acknowledged in the paras of despatch No. 9, of 27 March 1839 from the Court of Directors and it would be opposed to the spirit of enlightened liberty which dictated those orders, if the privilege was to be ~~not~~ now refused to families created by ourselves as a reward for the services rendered to the British Government on the grounds that they were not of so ancient in origin as others."3)

किन्तु ऐलिस की दत्तक पुत्र स्वीकार करने के पक्ष में यह राय डलहौजी और डायरेक्टरों को न रुचि और वे ऐलिस के इस दृष्टिकोण से केवल असहमत ही नहीं हुए बल्कि उन्होंने इसे अनावश्यक और अनुपयुक्त ~~और~~ सिफारिश (कहा) और उन्हें लगा कि " उसने रानी के मस्तिष्क में सरकार के झांसी राज्य को जब्त करने के सम्बन्ध में लिये गये निर्णय के अन्तिम होने के बारे में सन्देह रहने दिया।..... हमें उसका व्यवहार बड़ा ही असंतोषजनक

---

३ - वही ।

लगा है।" "He had allowed doubt to remain in the mind of the Rani about the finality of the decision of Government regarding the lapse of the State of Jhansi .... We have viewed his conduct with much dissatisfaction."

तथा उन्होंने निश्चय किया कि " राज्य का शासन चलाने के लिए एक अलग अधिकारी को भेजकर मेजर ऐलिस से झांसी के सभी मामलों को ले लिया जाय।
"To relieve Major Ellis of all charges of Jhansi affairs by the deputation of a separate Officer to conduct the administration of the State."[४]

किन्तु इसे शीघ्र ही लागू नहीं किया गया।

३ - गद्दी के अन्य दावेदार -

इस प्रकार एक ओर ऐलिस, मालकम और डलहौजी तथा कोर्ट आफ डायरेक्टरों में झांसी को लेकर विचार विमर्श चल रहा था, दूसरी ओर झांसी की गद्दी के अन्य दावेदार भी उठ खड़े हुए थे। ये दावेदार मुख्यत: दो थे, एक कृष्णराव और दूसरा सदाशिवनारायण।

उपरोक्त दोनों दावेदारों में कृष्णराव झांसी के पूर्व महाराजा रामचन्द्रराव का दत्तक पुत्र था। रिश्ते में वह उसका सगा भान्जा भी था। लेकिन यहां स्मरण रहे कि रामचन्द्रराव की मृत्यु (२० अगस्त १८३५)

---

४ - फा० पोलि० कन्स० १२ मई १८५४ नं० ७६, ७६, डिस्पैच टू कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ७ नवम्बर १८५४ नं० ६५, डिस्पैच फ्रांम कोर्ट आफ डायरेक्टर्स १ अगस्त १८५५ नं० १७ ।

के पश्चात् अंग्रेजी सरकार ने इस कृष्णराव को उसका उत्तराधिकारी तथा झांसी का शासक स्वीकार नहीं किया था और शिवरावभाऊ के द्वितीय पुत्र अर्थात् रामचन्द्रराव के चाचा रघुनाथराव को ही झांसी का शासक बना दिया था। इस कृष्णराव ने अपना दावा छोड़ा नहीं था। उसने सन् १८३८ में रघुनाथराव की मृत्यु के पश्चात् फिर दूसरी बार अपना दावा प्रस्तुत किया था। किन्तु इस बार भी उसे निराशा ही हाथ लगी थी और शिवराव का अन्तिम पुत्र गंगाधरराव का दावा झांसी पर स्वीकार कर लिया गया। यहां स्मरण रहे कि गंगाधर कृष्णराव को दत्तक लेने वाले रामचन्द्रराव का चाचा और रघुनाथराव का भाई था। किन्तु कृष्णराव हताश नहीं हुआ था और गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् फिर तीसरी बार उसने झांसी की गद्दी का दावा किया था।

झांसी की गद्दी का दूसरा दावेदार सदाशिवनारायण, झांसी के शासकों के निवालकर वंश की ही दूसरी शाखा का वंशज था। झांसी के प्रथम निवालकर शासक रघुनाथहरि के पितामह के दो पुत्र थे। एक दामोदर और दूसरा खण्डेराव। दामोदरराव के तीन पुत्र थे - राधोपन्त, सदाशिवपन्त और हरिपन्त। दामोदर अपने पुत्रों सहित महाराष्ट्र के बहादुरपुर गांव में रहते थे। बहादुरपुर में गुजारा न हो सकने के कारण दामोदर अपने पुत्रों सहित मल्हारराव होल्कर की सेवा में चले आये। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर होल्कर ने उन्हें महाराष्ट्र में पारोल की जागीर प्रदान की। इसी पारोल की जागीर से ही निवालकर वंश का दूसरा उपनाम पारोलकर हो गया था[5]।

---

5 - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च, १८५४ नं० १६४, मि० पृ० २७-२८ ।

(दामोदरराव का प्रथम पुत्र राघौपन्त किसी युद्ध में मारा गया और द्वितीय पुत्र सदाशिवपन्त पारौल में ही रहा । उसका तृतीय पुत्र हरिपन्त अपने द्वितीय पुत्र रघुनाथ सहित पेशवा की सेवा में चला आया था । रघुनाथ की सेवाओं से प्रसन्न होकर पेशवा ने उसे सन् १७७० ई० में बुन्देलखण्ड में उपद्रव दबाने के लिए भेजा और वहीं से फांसी का सूबेदार बना दिया ।[६] इस तरह रघुनाथराव के वंश की जो शाखा फांसी में जमीं वह निवालकर और कभी कभी पारौलकर कहलाने लगी । संक्षेप में गंगाधर हरिपन्त की शाखा के अन्तिम वंशज थे और सदाशिवनारायण पारौल की शाखा का वंशज था ।) यह बात निम्नलिखित वंश वृक्ष से पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है -

---

६ - मि०ह० पृ० २७ -२८ ।

---
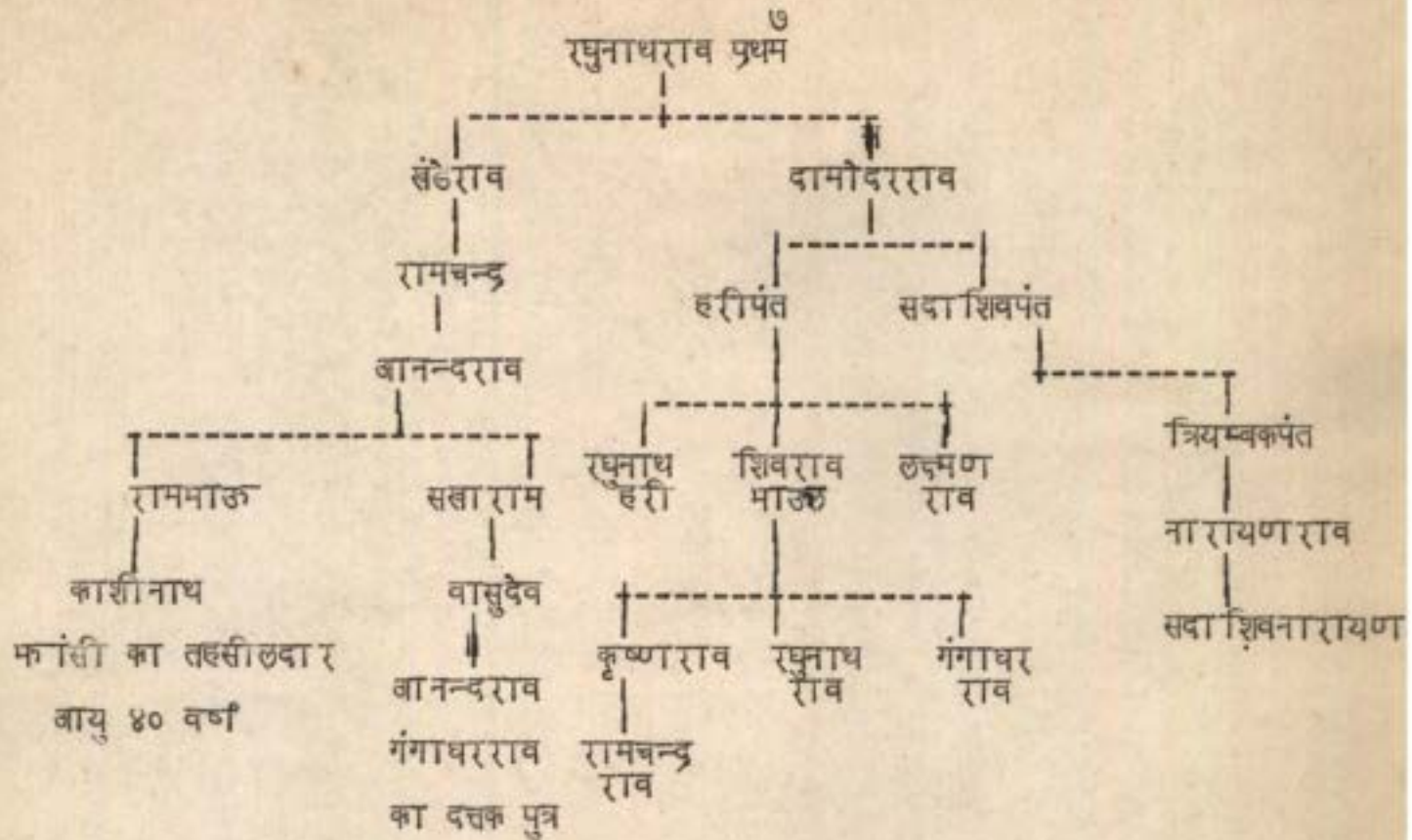
७ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५४, १६२ ।

उपरोक्त वर्णन और वंश वृक्ष से यह स्पष्ट है कि गंगाधरराव और सदाशिवनारायण एक ही वंश के सपिंड सम्बन्धी थे और चूंकि गंगाधर का कोई औरस पुत्राधिकारी न होने के कारण वंश की शाखा उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गई थी, ~~इसलिए~~ इसलिए निकटतम तीसरी पीढ़ी के सपिण्ड सम्बन्धी होने के कारण सदाशिव का फांसी की गद्दी पर अधिकार पहुंचता था । बुन्देलखण्ड के एजेन्ट मालकम ने भी इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर अपने ३१ दिसम्बर, १८५३ के पत्र में कृष्णराव के दावे का विरोध और सदाशिवनारायण का समर्थन निम्न शब्दों में किया था कि " उसकी (कृष्णराव की) वर्तमान अपील विचार करने लायक नहीं दिखती ।..... ~~यह~~ अगर स्वर्गीय राजा के पुरुष उत्तराधिकारी के दावे स्वीकार किये जायं तो इन आधारों पर यही व्यक्ति गद्दी का दावा करने के लिए वास्तविक रूप से निकटतम सम्बन्धी रह गया है ।"

"His (Krisnna Rao) present appeal appears to be deserving of no consideration......... If the claims of heir male of the late Rajah are admitted, this individual is actually the nearest relative left to claim the Gadi on these grounds."[८]

डलहौजी के निजी सचिव जे० पी० ग्रान्ट ने भी मालकम के मत की पुष्टि करते हुए अपनी टिप्पणी में लिखा कि " सदाशिव-नारायण के सम्बन्धियों में किसी ने उत्तराधिकार में भाग नहीं पाया है, लेकिन अगर राजा के पुरुष उत्तराधिकारी के दावे माने जाय तो इन आधारों पर गद्दी पर दावा करने के लिए वास्तविक रूप से यही व्यक्ति निकटतम संबंधी

---

८ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च, १८५४ नं० १६४ ।

है ।" " None of the members of Sadashiv Narain have shared in the succession but if the claims of the heirs male of the Rajan are admitted this individual is actually the nearest relative left to claim the Gadi on these grounds."[६]

४ - ग्रान्ट का नोट -

इस समय तक (फरवरी १८५४) डलहौजी भी कलकत्ते लौट आया था । अब फांसी के विषय में विचार विमर्श होना था, इसलिए डलहौजी के निजी सचिव जे० पी० ग्रान्ट को फांसी के विषय में नोट तैयार करने को कहा गया । ग्रान्ट ने फांसी और अंग्रेज सरकार के सम्बन्धों का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुए, दत्तक पुत्र स्वीकार न कर ग्रान्ट ने अपने नोट में फांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लेने पर जोर दिया । उसने लिखा कि, फांसी के सूबेदार शिवरावभाऊ के साथ १८०४ ई० में अंग्रेज सरकार के जो संधि हुई थी वह " वास्तव में अंग्रेजी सरकार ने पेशवा की ओर से की थी, जिसकी नाम मात्र सत्ता के जोर पर बुन्देलखण्ड में हमारे अभियान चलाये गए थे और पूरे किये गये थे ।" "was in fact concluded by the British Government on the part of the Peshwa under sanction of whose nominal authority indeed our operations and measure in Bundelkhand were under taken and concluded."

ग्रान्ट ने आगे कहा कि सन् १८१२ में जब शिवरावभाऊ ने अपने पौत्र रामचन्द्रराव के पक्ष में इस संधि के नवीनीकरण किये जाने की मांग की

---

६ - वही नं० १७१

थी तब अंग्रेजी सरकार ने शिवराव की यह मांग इसलिए स्वीकार नहीं की क्योंकि " इससे पेशवा के अधिकारों पर, जिसके कि अधीन सूबेदार था, अतिक्रमण होता था ।" ("It would encroach on the rights of the Peshwa whose subject, the Subedar was")

और गवर्नर जनरल ने कहा कि " अंग्रेज सरकार, बिना पेशवा की अनुमति के झांसी की सूबेदारी को वंशानुगत घोषित करने के लिए बाध्य नहीं है ।" ("The British Government were not ~~insisting~~ insisted to declare the Subedaree of Jhansi 'to the hereditary without the consent of the Peshwa.")

('strictly personal')

इसलिए १८०४ की संधि को " मुख्य रूप से व्यक्तिगत " ( ) माना गया था ।[१०] शिवरावभाऊ स्वतंत्र राजा न होकर पेशवा के " आमिल " के तौर पर झांसी का शासन चला रहे थे । अत: स्पष्ट है कि झांसी के सूबेदार पेशवा के आश्रित थे और उन्हें झांसी का राज्य वंशानुगत उत्तराधिकार के आधार पर देने का अधिकार पेशवा को ही था । इसीलिए जब शिवरावभाऊ की मृत्यु (६ दिसम्बर, १८१४) के पश्चात् उनके पौत्र रामचन्द्रराव ने ब्रिटिश सरकार से खिलअत प्राप्त करनी चाही थी, तब अंग्रेज सरकार ने खिलअत देना इसलिए स्वीकार नहीं किया था क्योंकि वह झांसी के राज्य को पेशवा के अधीन मानती थी ।[११]

---

१० - वही नं० १७१ ।

११ - वही

फिर ग्रान्ट ने तर्क दिया कि पेशवाओं के अधिकार समाप्त हो जाने के पश्चात् नवम्बर १८१७ में अंग्रेज सरकार तथा शिवरावभाऊ के पौत्र रामचन्द्रराव के बीच जो संधि हुई थी उसके अनुसार झांसी का राज्य रामचन्द्रराव और उसके वंशजों को दिया गया था । किन्तु अभी भी रामचन्द्रराव `सूबेदारों` की श्रेणी में आता था । रामचन्द्रराव की सेवाओं से प्रसन्न होकर सन् १८३२ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम वेन्टिक ने उसे राजा की उपाधि से विभूषित किया था[१२]।

उसने आगे लिखा कि रामचन्द्रराव की मृत्यु (२० अगस्त, १८३५) के पश्चात् झांसी की गद्दी प्राप्त करने के लिए चार दावेदार उठ खड़े हुए थे, किन्तु झांसी का राज्य शिवरावभाऊ के द्वितीय पुत्र और मृत राजा के चाचा रघुनाथराव को दिया गया । यहां स्मरण रहे कि रामचन्द्रराव ने अपनी मृत्यु के पूर्व दत्तक पुत्र लिया था, किन्तु रामचन्द्रराव के इस दत्तक पुत्र का दावा स्वीकार न कर रघुनाथराव को राजा घोषित किया गया था । रघुनाथराव की मृत्यु (२७ अप्रैल, १८३८ ई०) के पश्चात् शिवरावभाऊ के अन्तिम पुत्र गंगाधरराव को झांसी का राज्य दिया गया[१३]।

फिर रानी ने जो दतिया, ओरछा और जालौन के उदाहरण देते हुए डलहौजी से दामोदर को मान्यता दिये जाने की मांग की थी, उसके विषय में ग्रान्ट का कहना था कि चूंकि पेशवा के बुन्देलखण्ड में प्रवेश के पूर्व ही ओरछा और दतिया के राज्य स्वतंत्र थे, इसीलिए अंग्रेज सरकार ने इन राज्यों की विशेष स्थिति को ध्यान में रखकर ही उनके शासकों के दत्तक पुत्रों को मान्य कर उन राज्यों का राजा घोषित किया था[१४]।

---

१२ - वही ।

१३ - वही ।

१४ - वही ।

जालौन के विषय में ग्रान्ट का मत था कि यह न तो ओरछा और दतिया की श्रेणी में आता था और न ही फांसी की। जालौन के राजा की मृत्यु (सन् १८३२) के पश्चात् उसके दत्तक के शासनकाल में जालौन राज्य की स्थिति बिगड़ती गई। इसलिए यह एक तरह से ब्रिटिश राज्य में मिला सा लिया गया था।[१५]

५ - डलहौजी का फांसी को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाने का निर्णय -

ग्रान्ट के गंगाधरराव के दत्तक पुत्र दामोदर को स्वीकार न करने के उपरोक्त तथ्यों को मानते हुए डलहौजी ने मेटकाफ का २८ अक्टूबर, १८३७ का एक मिनट भी उधृत किया।[१६] इस मिनट में भारतीय राज्यों को दो भागों में बांटा गया था। एक तो थे पूर्ण सत्ताधीश राज्य और दूसरे थे सनद राज्य। पूर्णसत्ताधीश राज्यों के विषय में मेटकाफ का मत था कि " चूंकि ऐसे राज्य सार्वभौम सत्ताधारी हैं, इसलिए औरस पुत्र न होने पर उन्हें दत्तक लेने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए तथा अंग्रेज सरकार को भी ऐसे दत्तकों को हिन्दू कानून के अनुसार मान्यता देनी चाहिए।"[१७]

किन्तु " जिन जागिरदारों ने किन्हीं राजाओं से जागिरें प्राप्त कीं उनके उत्तराधिकारियों को नियत करने का अधिकार उन्हीं राजाओं को होगा, जिन्होंने उन्हें जागिरें दी होंगी।" तथा "ऐसे जागिरदारों का औरस पुत्र के अभाव में दत्तक या अन्य कोई वारिस नहीं हो सकता और जब कोई जागिर औरस पुत्र के अभाव में लावारिस हो जाय तब वह जागिर उसके प्रदान करने वाले जागिरदार को जिसकी अधीनता में वह था, वापस हो जायगी।"[१८]

उक्त मिनट के अनुसार डलहौजी का तर्क था कि फांसी की जागिर पूना के पेशवाओं द्वारा निवालकर सूबेदारों को दी जाती

---

१५ - वही ।

१६ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७२ ।

१७ - वही ।

१८ - वही ।

रही थी । जब सन् १८१७ में झांसी के राज्य पर पेशवा के अधिकार अंग्रेजी सरकार को प्राप्त हो गये, तो झांसी के राजा अंग्रेजी सरकार के जागिरदार हो गये थे । इसी आधार पर डलहौजी ने झांसी को अंग्रेजी आश्रित राज्य माना और झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लेने का निश्चय किया।[१९]

दतिया औरछा के विषय में डलहौजी ने भी ग्रान्ट के तर्क का समर्थन और गंगाधरराव के दत्तक पुत्र को झांसी का शासक मानने का विरोध करते हुए लिखा कि " यह (झांसी), कभीभी स्वतंत्र नहीं था । यहां तक कि टेहरी (औरछा), का राज्य जितना स्वतंत्र माना जाता है, उतना भी नहीं । वास्तव में झांसी टेहरी का ही एक भाग था जिसे प्रधान पेशवा ने किसी सूबेदार को दिया था ।"[२०] स्मरण रहे कि यह सूबेदार - नारोशंकर ही था जिसका कि पहले उल्लेख किया जा चुका है ।

डलहौजी का झांसी के विपक्ष में आला तथ्य यह था कि ब्रिटिश सरकार ने १८०४ ई० में शिवरावभाऊ से जो संधि की थी उसमें भी झांसी के सूबेदार को पेशवाके अधीन माना गया था और जब सन् १८१२ में शिवरावभाऊ ने रामचन्द्रराव को झांसी का राजा तथा उत्तराधिकारी मानने की मांग की थी तब अंग्रेज सरकार ने यह कहकर टाल दिया था कि " पेशवा की अनुमति के बिना झांसी का राज्य यहां के सूबेदारों को वंशानुगत परम्परा के आधार पर नहीं दिया जा सकता ।"[२१] लेकिन जब पेशवा ने अपने अधिकार अंग्रेजों को हस्तांतरित कर दिये तब रामचन्द्रराव को ~~मान्य~~ मान्यता दी गई । अंग्रेज सरकार ने शिवरावभाऊ की मित्रता को ध्यान में रखकर रामचन्द्रराव, उसके वारिसों, वंशजों और उत्तराधिकारियों को झांसी के उन प्रदेशों का वंशानुगत शासन दिया था जो शिवरावभाऊ के पास बुन्देलखण्ड में प्रवेश के समय थे ।[२२]

---

१९ - वही ।

२० - वही ।

२१ - वही ।

२२ - वही ।

इस प्रकार रामचन्द्रराव को वंशानुगत उत्तराधिकार के आधार पर झांसी का राज्य तो दिया गया था किन्तु सन् १८३२ के पूर्व यहां के सूबेदार को ` राजा ` की उपाधि से विभूषित नहीं किया गया था। इसलिए उनकी स्थिति बुन्देलखण्ड के अन्य राजाओं से निम्न थी।[२३]

गंगाधरराव का कोई पुरुष उत्तराधिकारी नहीं था और न ही रामचन्द्रराव के वंश में कोई उत्तराधिकारी रह गया था जिसे झांसी का वंशानुगत शासन सौंपा जा सकता था। गंगाधर ने जिस बालक को गोद लिया था वह उसका दूर का सम्बन्धी था और इससे पूर्व गंगाधर ने कभी भी दत्तक लेने का विचार प्रकट नहीं किया था। इसीलिए गवर्नर जनरल के बुन्देलखण्ड में स्थित एजेन्ट ने डलहौजी को सूचित किया था कि गंगाधर के अचानक दत्तक पुत्र लेने के विचार सुनकर प्रत्येक दरबारी को आश्चर्य हुआ।[२४]

यद्यपि जालौन जैसी आश्रित रियासत में दत्तक को स्वीकार किया गया था किन्तु डलहौजी का विचार था कि दत्तक पुत्र को ~~स्वीकार~~ मान्यता दी जाने पर भी उसके साथ `विलित राज्य` (Annexed State) की तरह ही व्यवहार किया जा रहा था। उसका कहना था कि झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लेने से ब्रिटिश सरकार को कोई लाभ नहीं होना है। बल्कि ऐसा झांसी की जनता के हित को ध्यान में रखकर किया गया है। रानी के जीवन यापन के लिए उदारता पूर्वक व्यवस्था की जायगी और झांसी का राज्य उत्तरी पश्चिमी प्रान्त में सम्मिलित कर लिया जायगा। डलहौजी का गंगाधर के दत्तक के विषय में विचार था कि ` गोद लेना व्यक्तिगत अधिकारों को प्रदान करने के लिए तो ठीक था, पर राज्य हस्तातरित करने के लिए नहीं।[२५] "The adoption was good for the conveyance of the private rights though not for the transfer of the principality."

---

२३ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७२, २३ जून १८५४ नं० १३७।

२४ - वही ।

२५ - वही नं० १८१, १८२, वेल० पृ० २०३ ।

इस प्रकार ७ मार्च १८५४ को झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाने का निर्णय लिया गया और बुन्देलखण्ड स्थित गवर्नर जनरल के एजेन्ट मालकम को इसकी सूचना भेजदी गई। मालकम ने झांसी के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट ऐलिस को १५ मार्च १८५४ को झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लेने के आदेश भेजे।[२६] जिस समय ऐलिस ने झांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिये जाने का समाचार रानी को दिया, उस समय रानी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि " मेरी झांसी नहीं दूंगी।" किन्तु रानी असहाय विधवा थी, विवश होकर उसे डलहौजी के आदेश के सम्मुख झुकना पड़ा और दामोदर का हक ना मंजूर हो गया।

६ - विलीनीकरण की आलोचना -

इस तरह झांसी के दत्तक पुत्र को स्वीकार न कर उसे अंग्रेजी राज्य में मिला लेने पर अंग्रेज इतिहास कार बेल (BELL) ने डलहौजी की कटु आलोचना की है। उसके अनुसार पेशवा के अधिकार सन् १८०४ में ही समाप्त हो गए थे, जब शिवराव भाऊ से अंग्रेज सरकार की संधि हुई थी। उस समय झांसी के सूबेदार ने अंग्रेजों से स्वतंत्र रक्षात्मक संधि की थी, इसलिए उसकी स्थिति वैसी ही हो गई थी जैसी कि ओरछा और दतिया की थी। दतिया और ओरछा के राजा इस समय मुगल बादशाह बहादुरशाह के अधीन थे और बहादुरशाह ने अपने अधिकार अभी कम्पनी को हस्तांतरित नहीं किये थे +, और न ही वे अंग्रेजों की सनदों से जन्मे थे। फिर उनसे स्वतंत्र राज्यों की तरह व्यवहार किया जारहा था। इसी प्रकार बेल (BELL) का तर्क है कि झांसी के राजा

---

२६ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७३-१७५, डिस्पैच टू कोर्ट आफ डायरेक्टर्स २६ अप्रैल १८५४ नं० ३६, ४ मार्च १८५४ नं० २१ ।

अंग्रेजों के जागीरदार नहीं थे क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों से कोई जागीर नहीं पाई थी। १८ वीं सदी के अन्त में पेशवा की सत्ता वैसे ही उठ चुकी थी जैसे कि दिल्ली के मुगल बादशाह की। यहां स्मरण रहे कि जब सन् १८०४ में अंग्रेजों की सेवायें करने के बदले में जो रक्षात्मक और परस्पर सहायता की संधि शिवरावभाऊ की अंग्रेजों से हुई थी, उसमें उसे पेशवा का जागीरदार नहीं माना गया था। वह (संधि) उन्होंने वैसे ही की थी जैसे झांसी के राजा की वैसी स्थिति हो जैसीकि ओरछा और दतिया की थी। यहां ध्यान रहे कि १२ साल बाद सन् १८१७ में पेशवा ने अपने मम नाम मात्र के अधिकार अंग्रेजों को हस्तांतरित किये थे और इस संधि में भी १८०४ की संधि का उल्लेख किया गया था[२७]। इससे अनुमान होता है कि अंग्रेज इस संधि के पूर्व झांसी को वैसा ही समझते थे जैसाकि ओरछा दतिया और पन्ना को समझते थे, और जैसा कि बेल का कथन है कि १८१७ की संधि के समय दोनों ही पक्षों ने यह नहीं सोचा था कि कभी ऐसा भी समय आयगा, जब झांसी राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा और झांसी का उत्तराधिकार हिन्दू शास्त्रानुसार तय ह नहीं होगा[२८]। मुख्य बात यह थी कि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार दत्तक पुत्र औरस पुत्र की भांति ही समझा जाता था, जबकि अंग्रेजी कानून में दत्तक लेने जैसा कोई विधान था ही नहीं। डलहौजी, मेटकाफ, ग्रान्ट की गल्ती यह थी कि वे अंग्रेजी दृष्टिकोण की कसौटी पर भारतीय परम्पराओं को कस रहे थे और हिन्दू विधि शास्त्र को जानते हुए भी अपने स्वार्थों के कारण उसकी अवहेलना कर रहे थे। अजीब सी बात थी कि दामोदर को गंगाधर की व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिए और उसका वंश चलाने के लिए तो उत्तराधिकारी मान लिया गया था, किन्तु झांसी की गद्दी पर उसका दावा स्वीकार नहीं किया गया था[२९], जो न तो न्यायोचित था और न ही तर्क संगत। फिर यदि हम

---

२७ - बेल० पृ० २०३ । 54

२८ - बेल० वही । 55

२९ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १८१, १८२, बेल० पृ० २०३ ।

56

मेटकाफ के इस तर्क को भी लें कि झांसी सनद राज्य था इसलिए उसके राजा द्वारा लिये गए दत्तक पुत्र को मान्यता नहीं दी गई, तो इस और ध्यान आकर्षित किया जा सकता है - जैसा कि रानी ने इंगित किया था - कि जालौन को सनद राज्य मानते हुए भी वहां के दत्तक पुत्र को मान्यता दे दी गई थी। झांसी के प्रति भी यही रवैया अपनाया जा सकता था किन्तु वैसा नहीं किया गया था, क्योंकि उनके जालौन के तजुर्बे अच्छे नहीं थे। लार्ड आकलैण्ड का विचार था कि दत्तक पुत्र के शासन-काल में जालौन में अवनति हुई थी।[30] सम्भवत: झांसी के भी अल्पवयस्क दत्तक पुत्र के शासनकाल में यही हाल होगा, इसी आशंका मात्र पर झांसी में दत्तक पुत्र को स्वीकार न किया जाना झांसी राज्य के साथ ही रानी और दामोदर के प्रति भी अन्याय ही था। फिर भी कहना न होगा कि हम इस अन्याय के ऋणी हैं क्योंकि इसने हमें रानी लक्ष्मीबाई जैसी राष्ट्रीय वीरांगना प्रदान कर झांसी को विश्व इतिहास में सम्मानप्रद स्थान दिलाया।

७ - रानी और दत्तक पुत्र की स्थिति -

झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने का निर्णय लेते समय डलहौजी ने निश्चय किया था कि रानी के जीवन यापन के लिए उदारता पूर्वक व्यवस्था की जायगी। अत: झांसी को ब्रिटिश राज्य में मिलाये जाने के साथ ही मेजर माल्कम ने लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में भारत सरकार की स्वीकृति के लिए निम्न प्रस्ताव रखे -

१ - रानी को झांसी के खजाने से या जहां से वे पसन्द करें ५०००-०० रु० मासिक पेंशन दी जाय।

२ - झांसी का महल रानी को रहने के लिए दिया जाय और वह उसकी निजी सम्पत्ति समझी जाय।

---

३० - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० ८७१ ।

३ - रानी और उसके सेवकों पर ब्रिटिश अदालत का कोई अधिकार न रहे ।

४ - गंगाधर की अन्तिम इच्छा के अनुसार उसकी निजी सम्पत्ति, राज्य के जवाहरात आदि रानी को दिये जायं । उसके सम्बन्धीयों और अनुचरों की एक सूची तैयार की जाय तथा उनके निर्वाह की व्यवस्था की जाय ।[३१]

डलहौजी ने मालकम के अन्तिम प्रस्ताव को छोड़कर बाकी ३ प्रस्ताव स्वीकार कर लिए । उसने अपने २५ मार्च १८५४ के पत्र में मालकम को सूचित किया कि गंगाधर का दत्तक दामोदर राज्य का उत्तराधिकारी तो नहीं माना जा सकता किन्तु उसकी निजी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना जा सकता है ।[३२]

इस प्रकार गंगाधर की निजी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसके दत्तक को घोषित किया गया और लक्ष्मीबाई अपने पति की सम्पत्ति से भी वंचित हो गई । अब झांसी के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट ऐलिस ने झांसी के खंजाने से ६ लाख रुपये निकलवाकर दामोदर के नाम अंग्रेजी खंजाने में जमा कर दिये तथा यह निश्चित किया गया कि जब दामोदर बालिग हो जायगा, तब उसे उक्त धनराशि ब्याज सहित दी जायगी ।[३३] रानी के लिए आजीवन पांच हजार रुपये माहवार पेंशन निश्चित की गई किन्तु गंगाधर की मृत्यु के पश्चात् भास्करभीकाजी, राधोकिशन, कृष्णराव और विशनुभाऊ आदि साहूकार गंगाधर पर अपने कर्जे के सिलसिले में उठ खड़े हुए । इसलिए रानी को जो पेंशन दी गई थी वह भी गंगाधर के कर्जे के कारण कुछ दिनों के लिए बन्द करदी गई ।[३४]

---

३१ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७६ ।

३२ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १८१, १८२, २५ जून १८५४ नं० ११७

३३ - मर लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ६६ ।

३४ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७६, ३ जुलाई १८५७ नं० २३-३१, डिस्पैच टू कोर्ट आफ डायरेक्टर्स २२ मार्च १८५८ नं० १८ ।

८ - झांसी अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत -

झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने की घोषणा १३ मार्च, १८५४ को करदी गई । इसमें झांसी की जनता को सूचित किया गया कि गवर्नर जनरल ने गंगाधर के दत्तक पुत्र को स्वीकार नहीं किया है और इसलिए अंग्रेजी सरकार ने झांसी राज्य को अपने अन्तर्गत लेकर ऐलिस के अधीन रख दिया है । झांसी के पूरे राज्य भर में इस घोषणा को प्रसारित किया गया और १ मई १८५४ से माल गुजारी अंग्रेज सरकार को देने के आदेश दिये गए[३५] ।

इस प्रकार फिलहाल झांसी राज्य को ऐलिस के अधीन रख दिया गया । उसे निर्देश दिये गए कि झांसी के भूतपूर्व सुपरिन्टेन्डेण्ट मेजर रौस/जो नियम अधिनियम बनाये थे, उन्हीं के अनुसार शासन करे । झांसी के सामान्य शासन में कोई बड़ा हेर-फेर नहीं किया गया और वह पहले जैसा स्थानीय तरीके से ही चलता रहा । झांसी को पहले बुन्देलखण्ड के अंग्रेजी प्रदेशों के कमिश्नर इर्स्किन के अधीन कर दिया गया, किन्तु फिर बाद में शासन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए, झांसी राज्य के शासन को उत्तरी पश्चिमी प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के लेफ्टीनेंट गवर्नर को सौंप दिया गया[३६] । अब झांसी और जालौन एक ही अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डेण्ट) के अधीन कर दिये गये जिसे जालौन और झांसी का सुपरिन्टेन्डेण्ट कहा जाने लगा । कैप्टन गार्डन को झांसीके उपअधीक्षक या डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट के पद पर नियुक्त किया गया । वैसे उसे जालौन और झांसी के सुपरिन्टेन्डेण्टों के निर्देशों के अनुसार कार्य

---

३५ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७६, १८० ।

३६ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७५, १७६, १८२, १८३, ५ मई, १८५४ नं० १२७ - २६, २० दिसम्बर, १८५५ नं० ४५-४६, डिस्पैच टू कोर्ट आफ डायरेक्टर्स २६ अप्रैल १८५४ नं० ३६, डिस्पैच फ्रांम कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ७ नवम्बर १८५४ नं० ६५ ।

करने को कहा गया था, पर उस पर पूर्ण नियंत्रण जबलपुर के कमिश्नर का ही था। कैप्टन स्कीर्न को राजनैतिक अधिकारी नियुक्त किया गया और किले के सैनिक दल का नायक कैप्टन डनलप को बनाया गया। गंगाधरराव के -काल के अस्थाई सैनिकों को ६ महिने का अग्रिम वेतन देकर निकाल दिया गया। राजवंश के पुराने सैनिकों को पेंशनें बांध दी गई और जिन्हें योग्य समझागया उन्हें विशेषकर मालगुजारी के नये विभाग में रख लिया गया[३७]।

गंगाधरराव की मृत्यु के समय झांसी राज्य में ६ परगनें थे। ये थे झांसी, पिछौर, करैरा, मऊ, बिजीगढ़ और पंडवाहा। इनमें कुल मिलाकर ६६६ गांव थे। इन परगनों में सन् १८५६ में जालौन के ३ परगनें गरौठा, मोंठ, चिरगांव तालुका सहित और भांडेर भी शामिल कर दिये गये थे। परगना गरौठा में १२२ गांव थे, मोंठ और चिरगांव में १०४ गांव और भांडेर में १४७ गांव थे। बिजीगढ़ के कुछ गांव पंडवाहा परगना में जोड़ दिये गए और कुछ को गरौठा में जोड़ दिया गया। इस प्रकार अब जो झांसी जिला बना उसमें कुल १२२० गांव थे। जो विभिन्न परगनों में इस प्रकार बटे हुए थे - झांसी में १६५ गांव, पिछौर में १६५ गांव, मोंठ में १०४ गांव, पंडवाहा में ८० गांव, करैरा में २५६ गांव, भांडेर में १४७ गांव, गरौठा में १२२ गांव और मऊ में १२१ गांव[३८]।

झांसी राज्य के परगनों को अंग्रेजी शासन में मिला लिये जाने के बाद ही उनकी मालगुजारी व्यवस्था में सुधार किये जाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी क्योंकि स्थानीय मालगुजारी के अधिकारियों का मत था कि भूतपूर्व राजा के काल में लोगों पर मालगुजारी

---

३७ - फा० पोलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १५३, १७९-१८२, ५ मई १८५४ नं० १२७-१२९।

३८ - बुन्देलखण्ड गजे० भाग १ पृ० २३७ ।

का असहाय बोझ चला आरहा था । इसलिए १८५४ में कैप्टन गार्डन को इन परगनों की मालगुजारी का बंदोबस्त करने का काम सौंपा गया और उसके आंशिक कार्य के आधार पर अंग्रेजी सरकार ने १ जुलाई १८५६ से एक तीन साला या उससे अधिक समय के लिए जब तक पूरा व्यवस्थित बंदोबस्त न हो जाय, एक अस्थाई बंदोबस्त लागू करने की अनुमति दे दी । कैप्टन गार्डन ने १८५७ का विप्लव शुरु होने के पहले ही मऊ, पंडवाहा और झांसी की मालगुजारी का बंदोबस्त पूरा कर लिया था और इनके ३०६ गांवों की मालगुजारी की आय २४७८६० रु० निर्धारित की थी, किन्तु विप्लव शुरु होन जाने से यह कार्य अधूरा ही रह गया और झांसी में विप्लव के सिलसिले में जो उपद्रव और युद्ध हुए उनमें अधिकांश कागज पत्र और ब्यौरे नष्ट हो गए[३९]। इसलिए राजा गंगाधरराव की मृत्यु (२१ - नवम्बर, १८५३) और झांसी में विप्लव शुरु होने (जून १८५७) के बीच के ४ वर्षों के झांसी के अंग्रेजी शासन की हमारी सूचना बड़ी ही सीमित और संक्षिप्त है ।

झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के बावजूद भी रानी आशावान बनी रही और उसे अंग्रेजों की न्यायप्रियता में अभी तक विश्वास था । उसने अपने अंग्रेज वकील जांनलैंग को लन्दन भेजा । उसकी अपील पर ६० हजार रुपये खर्च हुए किन्तु रानी डलहौजी के निर्णय को बदलवाने में सफल न हो सकी और २ अगस्त १८५४ को डायरेक्टरों ने भी झांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की आज्ञा दे दी[४०]।

जब झांसी का राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तब रानी की आयु का १, १ दिन बड़े कष्ट से व्यतीत होने

---

३९ - झांसी गजे० पृ० १३६ , १३७ ।

४० - फा० पौलि० कन्स० २३ जून १८५४ नं० ११८, १८ अगस्त १८५४ नं०६४ ६६, सेन० पृ० २७५, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ६६ ।

लगा । किन्तु इस समय वे फांसी की जनता के बहुत करीब आयीं । वह उनके दु:खों में साथ देती थीं तथा उनकी उपस्थिति जनता के उत्साह वर्द्धन के लिए अत्यन्त आवश्यक थीं । इस बीच वे सिर के बाल उतरवाने के लिए काशी जाना चाहती थीं किन्तु अंग्रेज सरकार ने उन्हें काशी जाने की अनुमति नहीं दी[41] । इसी समय उनके जीवन में एक और घटना घटित हुई । जब रानी के दत्तक पुत्र की अवस्था ७ वर्ष की हुई तब उन्होंने उसका यज्ञोपवीत करना चाहा । इस अवसर पर व्यय करने के लिए उन्होंने दामोदर के नाम जमा ६ लाख रुपये में से १ लाख रुपये की मांग की किन्तु अंग्रेज सरकार ने ये रुपये देने के लिए ४ भले व्यक्तियों की जमानत चाही । रानी को अपने ही रुपये प्राप्त करने के लिए लाला बीमा वाले, मगन गंधी मोती खत्री और श्याम चौधरी नामक प्रतिष्ठित व्यक्तियों की जमानत देनी पड़ी । जमानत मिलने पर ही ब्रिटिश सरकार ने १ लाख रुपये दिये[42] । इस तरह दामोदर का यज्ञोपवीत सम्पन्न हुआ ।

फांसी में ब्राह्मण राज्य होने के कारण एक लम्बे अर्से तक गौ हत्या निषिद्ध थी, किन्तु अब अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत नवम्बर १८५४ से यह फिर शुरु करदी गई । रानी और फांसी निवासी इससे अत्यन्त क्रोधित और असंतुष्ट हुए और उन्होंने इसके विरुद्ध अपील भी की किन्तु इस पर ध्यान तक नहीं दिया गया[43] । रानी का क्रोध उस समय और भड़का, जब निवालकर परिवार की कुलदेवी लक्ष्मी मंदिर के खर्चे के लिए लगे हुए दो गांव को भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिये जाने का निश्चय किया गया । लक्ष्मी मंदिर फांसी के पूर्व में स्थित है । गंगाधर के एक पूर्वज ने इस मंदिर के खर्चे के लिए दो गांव अलग कर दिये थे । गंगाधर की मृत्यु के पश्चात् फांसी के डिप्टी कमिश्नर गार्डन का विचार था कि ये गांव लक्ष्मी मंदिर के खर्चे के लिए ही रखे जाये[44] । किन्तु अंग्रेजों को केवल फांसी

---

४१ - गौड़से० पृ० ७२ ।

४२ - वर्मा० पृ० २१७, सेन० पृ० २७५, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ०७१-७२

४३ - गौड़से० पृ० ७२, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ८८, मेलसन०भाग३,पृ०१२१, होल्कर० पृ० १५, डब्लु० मेलसन० पृ० १६,फ्रीम्यूटिनी रिकर्ड्स (फांसी डि० जिल्द ८८, भाग २७, नं० ७, १८५४ ।

४४ -

का राज्य लेने पर ही संतोष नहीं हुआ था । उनकी गिद्ध दृष्टि उक्त गांव पर भी लगी हुई थी । इसलिए गार्डन की सिफारिश के बावजूद भी इन गांवों को अंग्रेजी राज्य में मिला लिये जाने का निर्णय लिया गया ।[४५] रानी ने इन्हें मंदिर के खर्चे के लिए सुरक्षित रखने के अनेक प्रयत्न किये किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । इससे अंग्रेजों की न्यायप्रियता के प्रति रानी के मन में जो आस्था सी थी, वह धीरे धीरे समाप्त होने लगी और उसके स्थान पर उनके हृदय में असंतोष की वह अग्नि जो फांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में ~~मिलने-का~~ मिलाये जाने पर सुलगनी प्रारम्भ हुई थी, अब और तेज होने लगी । इधर इन गांवों को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के पूर्व ही फांसी में सन् १८५७ का विप्लव प्रारम्भ हो गया ।[४६]

---

४५ - गोड्से० पृ० ७२, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ८६, डब्लु० मेलसन पृ० १६, सेन० पृ० २७५ ।

४६ - डब्ल्यू० मेलसन० पृ० १६ ।

अध्याय - १०

झांसी में १८५७ के `विद्रोह` का प्रारम्भ

१ - `विद्रोह` की भूमिका -

सन् १८५७ के विप्लव के समय झांसी में बंगाल पैदल सेना की १२ वीं पलटन, १४ वीं अस्थाई घुड़सवार सेना और तोपखाना था। १२ वीं पलटन का मुख्य सेनाधिकारी कैप्टन डनलप तथा १४ वीं घुड़सवार सेना का मुख्य अधिकारी कैम्पबेल था। झांसी नगर के परकोटे के बाहर ही अंग्रेज छावनी की सीमा शुरु हो जाती थी। इसके पूर्व तथा पश्चिम में पहाड़ियां तथा दक्षिण की ओर सिविल स्टेशन में अंग्रेज अधिकारियों के निवास-स्थान थे। यहीं एक `तारे` की शक्ल का बना हुआ छोटा सा दुर्ग था जो स्टार फोर्ट के नाम से प्रसिद्ध था। इसी स्टार फोर्ट में अंग्रेजों का खजाना तथा तोपखाना भी था[१]।

भारत के अन्य स्थानों की तरह मई १८५७ में झांसी में भी यह बात फैली कि `कारतूसों में गाय और सूवर की चर्बी का प्रयोग किया जाता है।` इसी समय झांसी के डिप्टी कमिश्नर लेफ्टीनेन्ट गार्डन को यह सूचना मिली कि रानी के एक सेवक तथा सिपाहियों के बीच वार्तायें चल रही थीं और वह बलवे के लिए झांसी के सैनिकों को उकसा रहा था। संभवत: यह व्यक्ति लक्ष्मणराव था, जोकि रानी का दीवान था और जिसे कैद करने के लिए बाद को अंग्रेज सरकार ने १०००/ रु० का इनाम भी घोषित किया था[२]। एक कोई भोलानाथ नामक व्यक्ति भी यही कार्य कर रहा था[३]। झांसी

---

१ - डब्ल्यु० मैलसन० पृ० १६ हौल्कौम पृ० १७-१८, के० भाग ३ पृ० ३६२, सेन० पृ० २७७, झांसीगजे० पृ० २१० की पाद टिप्पणी २७२, स्मिथ पृ० ६३, मैलसन० भाग ३ पृ० १२१। उपरोक्त स्टार फोर्ट अभी भी झांसी छावनीमें किले से लगभग १।। मील दक्षिण पूर्व में (जाट रेजीमेंट के अधिकार में) स्थित है।

२ - फा० पो० लि० कन्स० १६ सितम्बर १८५६ नं० १८६, ११ फरवरी १८५६, नं० ३६-३८, सावरकर० पृ० २२८, रेविन्यू डिपार्टमेण्ट १८५७, भाग २१ नं० ४।

३ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १६, रेविन्यू डिपार्टमेण्ट १८५७ भाग २१ नं० ५ ।

के डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय के हेड क्लर्क स्काट ने भी कुछ भारतीयों से मिलकर थोड़े से विश्वसनीय सूत्रों का पता लगाया था और उसे भी फांसी में विद्रोह होने की आशंकायें हो चली थीं । उसे यह भी आभास था कि रानी और सैनिकों के बीच सांठ गांठ चल रही थी।[४]

किन्तु दूसरी ओर फांसी के सुपरिन्टेन्डेण्ट - (राजनैतिक अधिकारी) स्कीन का रानी तथा हिन्दुस्तानी सैनिकों पर पूर्ण विश्वास था । स्कीन के इस विश्वास का लाभ उठाकर रानी ने उससे यह बहाना करके कि उसे भी अंग्रेजों की तरह सैनिकों से डर है, अपने लिए एक सैनिक टुकड़ी रखने की अनुमति प्राप्त करली[५] । इसी समय रानी ने वे तोपें भी निकलवाली थीं जो गंगाधर की मृत्यु के पश्चात् जमीन में गाड़ दी गई थीं ।[६] किन्तु स्कीन को अभी भी रानी पर तनिक भी शक न था । जैसा कि उसके १८ मई के आगरा के लैफ्टीनेंट गवर्नर काल्विन को लिखे एक पत्र से प्रतीत होता है । स्कीन ने इस पत्र में काल्विन को सूचित किया था कि " फांसी के आस पास उपद्रव उठने का कोई भय अब तक दिखाई नहीं पड़ता । मैंनहीं समझता कि इस पास पड़ोस में आशंकित होने का कोई कारण है । मुझे यह कहने में खुशी होती है कि यहां के सैनिक दृढ़ बने हुए हैं और मेरठ और दिल्ली में जो अत्याचार हुए हैं, उनके प्रति वे असीम घृणा व्यक्त करते हैं ।[७] " पन्ना और चरखारी के राजा तो अंग्रेज भक्त थे ही, जबकि ओरछा

---

४ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १६ ।

५ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १७, होल्कॉम पृ० १६, होम्स० पृ० ४६१, के० भाग ३ पृ० ३६४, स्मिथ० पृ० ६८, मैलसन० पृ० १२२ ।

६ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३२६ । इस्किन के अनुसार रानी के पास ५ तोपें थीं जो कुछ वर्ष पूर्व महल में गाड दीगई थीं और अब निकलवा ली गई थीं । इन तोपों में से दो तोपें ७ जून १८५७ को विद्रोहियों ने रानी से प्राप्त की थीं । स्कीन के खानसामा के अनुसार इनमें एक कड़क बिजली नामक सुप्रसिद्ध तोप भी थी । यही तोपें ८ जून को अंग्रेजों के विरुद्ध प्रयोग में लाई गई थीं । मैलसन० भाग ३ पृ० १२२, होल्कॉम पृ० १६ ।

७ - के० भाग ३ पृ० ३६२ ।

छतरपुर और अजयगढ़ के राजा नाबालिग थे और समथर का राजा पागल होने के कारण उन्नाव के किले में कैद था।[८]

मई के अन्त तक फांसी के सदर अमीन टी० एन्ड्रूज (T. ANDREWS) डिप्टी कलेक्टर आर० एन्ड्रूज (R. ANDREWS) को विद्रोह होने का निश्चय हो चला था। इसीलिए ये एन्ड्रूज बन्धु फांसी के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट गार्डन के पास गये और उससे यथा शीघ्र किले तथा मैगजीन की सुरक्षा की व्यवस्था करने का आग्रह किया। गार्डन ने उनके इस आग्रह को इसलिए स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसका मत था कि इस जल्दबाजी से सैनिकों में अंग्रेजों के प्रति अविश्वास की भावना फैल जायगी, जिसके परिणाम घातक हो सकते थे। अस्तु तुरन्त ही कुछ नहीं किया गया।[९] संक्षेप में फांसी के मुख्य अंग्रेज अधिकारियों को ३० मई तक फांसी के सैनिकों से यकायक विद्रोह की आशंका नहीं थी। इस बात की पुष्टि स्कीन के ३० मई को लिखे उस पत्र से होती है जो उसने कौलविन को लिखा था। इस पत्र में स्कीन ने सूचित किया था कि यहां सब ओर शांति बनी हुई है। सैनिक दृढ़ हैं। लेकिन स्पष्टत: नगर के इन धनी मानी लोगों और ठाकुरों में बड़ी बेचैनी सी है, जिनकी कि किसी भी शासन के प्रति कभी भी सद्भावनायें नहीं रही हैं। कहा जाता है कि वे कुछ करने की बातें करने लगे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि (हमारी) सफलता के समाचार मिलने पर यहां सब यथावत सुस्थिर हो जायगा।[१०]

२ - `विद्रोह` का प्रारम्भ -

स्कीन के कोलविन को पत्र लिखने के तीसरे ही दिन अर्थात् १ जून को लगभग ४ बजे शाम को षड्यन्त्रकारियों ने छावनी में

---

८ - फा० सी० कन्स० ३० अक्टूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, के० भाग ३ पृ० ३६२-६३, हौल्कोंम पृ० १६, हौम्स० पृ० ४६१, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ८०-८१।

९ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १८।

१० - के० भाग ३ पृ० ३६३, हौल्कोंम पृ० १६-२०, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ८१।

स्थित अंग्रेज अधिकारियों के दो बंगलों को जलाकर नष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने इस दुर्घटना के कारणों की जांच की किन्तु कुछ पता नहीं चला। पर इससे उनकी बेचैनी अवश्य बढ़ गई।[११] वे चुपचाप अपनी सुरक्षा के उपाय करने में लग गए। वे अब दिन को तो अपने बंगलों में रहते थे, किन्तु रात होते ही सुरक्षा की दृष्टि से किले में सोने चले जाते थे। किले के अन्दर तम्बू लगा दिये गए थे, ताकि आवश्यकता पड़ने पर अधिक से अधिक लोग किले के भीतर शरण ले सकें।[१२]

लेकिन फिर भी ऊपर से प्रमुख अधिकारियों ने अपनी व्यग्रता प्रकट होने नहीं दी। यहां तक कि स्कीन ने कोलविन को ३ जून को अपने पत्र में फिर आश्वस्त करते हुए लिखा कि हम सब यहां सुरक्षित हैं।[१३] कहना न होगा कि यही तूफान आने के पहले की स्तब्धता थी।

अंग्रेज अभी १ जून की घटना के प्रभाव से मुक्त भी नहीं होने पाये थे कि ५ जून, शुक्रवार को दिन में लगभग १ बजे ५०-६० सिपाहियों ने विद्रोह कर स्टार फोर्ट पर अधिकार कर लिया। इसमें तोपखाना और खजाना था। खजाने में इस समय लगभग ५ लाख रुपया था।[१४]

---

११ - फा० सी० कन्स० ३० अक्टूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, डब्ल्यू० मेलसन० पृ० १८, होलकोंम पृ० २०, स्मिथ० पृ० ६६, फार्रेस्टि० पृ० २१०, के० भाग ३ पृ० ३६४, मेलसन० भाग ३ पृ० १२२ ।

१२ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६ ।

१३ - के० भाग ३, पृ० ३६३-६४, होलकोंम पृ० २०, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ८१ ।

१४ - फा० सी० कन्स० २६ जून १८५७ नं० ६२, १०३, ३१ जुलाई १८५७ नं०३२६, ३० अक्टूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, १८ दिसम्बर १८५७ नं० २२७, २५ सितम्बर १८५७ नं० ३४३-४५, पार्लियामेन्ट्री पेपर १८५७ नं० ३, १८२, १६३, जालौन गजे० पृ० १३५ ।

इस घटना का समाचार पाते ही समस्त अंग्रेज अपने परिवारों सहित सुरक्षा की दृष्टि से किले में चले आये।[१५] किन्तु बंगाल सेना की १२ वीं पलटन का मुख्य सेनाधिकारी कैप्टन डनलप छावनी में ही रहा। गार्डन ने दतिया तथा ओरछे के राजाओं से सहायता प्राप्त करने के लिए दो जमादारों को भेजा। इसी समय रात्रि को लगभग ८ बजे कैप्टन डनलप ने छावनी से गार्डन को एक पत्र भेजा। अब गार्डन स्कीन और डा० मैक्गन (MACEGAN) छावनी की ओर चल पड़े। स्टार फोर्ट अभी भी विद्रोहियों के अधिकार में था और रात में छावनी में रहना निरापद न था। इसलिए स्थिति का जायजा लेकर स्कीन, गार्डन और डा० मैक्गन तो रात को लगभग ११ बजे किले को लौट आये किन्तु साहसी डनलप छावनी में ही रहा।[१६]

कैप्टन स्कीन तथा गार्डन ने ६ जून को सबेरे डनलप से छावनी में पुन: भेंट की। इस भेंट में आपस में क्या विचार विमर्श हुआ इसकी कोई जानकारी नहीं है। गार्डन ने दतिया ओरछे के राजाओं, गुरसराय के राव, नौनेर के ठाकुर रघुनाथसिंह तथा उदगांव के ठाकुर जवाहरसिंह को शीघ्र सहायता भेजने के लिए सन्देश भेजे। दतिया से उन्हें किसी सहायता की ~~अवश्यक~~ आशा नहीं थी क्योंकि वहां के राजा विजयबहादुरसिंह (१८३६-५७) की मृत्यु अभी हाल ही में हुई थी और वहां अव्यवस्था फैली हुई थी। अत: ग्वालियर और कानपुर में भी सहायता के लिए सन्देश भेजे गये।[१७]

---

१५ - फा० सी० कन्स० ३० अक्टूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, २६ जून १८५७ नं० १०७, ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६, ३२६, ३५४, २५ सितम्बर १८५७ नं० ३४३-४५, पार्लियामेन्ट्री पेपर १८५७ नं० १६३, फोरेस्ट भाग ४ पृ० ३, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १८, के० भाग ३ पृ० ३६४।

१६ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १८, होलकौम्ब० पृ० २०-२१, स्मिथ० पृ० ६६, टौम्स० पृ० ४६१, के० भाग ३, पृ० ३६४, मैलसन० भाग ३ पृ० १२२।

१७ - फा० पौलि० कन्स० ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २८१, ३० दिस० १८५८ नं० २८०-८८ जमादार मदारबक्स का ब्यान, डब्ल्यू० मैलसन पृ० १८, होलकौम्ब० पृ० २० फांसी गजे० पृ० २११ के० भाग ३ पृ० ३६५।

इधर डनलप बचे हुए विश्वसनीय सैनिकों की सहायता से विद्रोही सैनिकों का दमन करने की ताक में था । स्मरण रहे कि स्टार फोर्ट की बारूद पहले ही विद्रोहियों के हाथ पड़ चुकी थी, इसलिए उसने दिन में लगभग २ बजे गार्डन को किले से गोला बारूद भेजने को कहला भेजा । किन्तु गार्डन ने किले की गोला बारूद छावनी में नहीं भेजी क्योंकि उसे भय था कि कहीं वह विद्रोहियों के हाथ न पड़ जाय और उसका उपयोग अंग्रेजों के विरुद्ध ही किया जाय[१८]। इसी बीच किले में शरण पाये हुए अंग्रेज भी सुरक्षात्मक उपायों में जुट चुके थे । उन्होंने डिप्टी कलेक्टर आर० एन्ड्रूज को जेल में रखी बारूद लाने के लिए भेजा किन्तु जेल दरोगा बख्शीशअली भी अपने सिपाहियों सहित विद्रोही सैनिकों से जा मिला था । अत: एन्ड्रूज थोड़ी ही बारूद प्राप्त कर सका और जेल के रक्षकों ने उसे अधिक बारूद देने से साफ इन्कार कर दिया[१९]। इसी दिन (६ जून) पूर्वाह्न को जब डनलप, कैम्पबेल, टेलर तथा टर्नबुल परेड के मैदान पर आये, तभी झांसी निवासियों का एक बड़ा सा जुलूस दो झण्डों सहित नगर के मुख्य दरवाजे सैंयरगेट से होता हुआ छावनी की ओर बढ़ा । विद्रोह के बाद के झांसी के कमिश्नर मेजर पिंकनी के अनुसार इसमें रानी के मुख्य अनुचर झुन्कुंवर[२०] और खुदाबख्श आदि भी थे । छावनी के सैनिक अपनी बैरिकों से निकल कर परेड के मैदान में जमा हो चुके थे । जैसे ही उपरोक्त जुलूस परेड के मैदान में पहुंचा वैसे ही अशानअली (ASHANALI) नामक एक विद्रोही नेता ने पूर्व योजनानुसार मुसलमान सैनिकों से नमाज़ पढ़ने को कहा । यह विद्रोह का संकेत था । इसके साथ ही झांसी के समस्त हिन्दुस्तानी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया । १२ वीं बंगाल पैदल सेना के केवल दो हवलदारों ने अंग्रेज अधिकारियों का साथ दिया किन्तु सैनिकों ने इन अधिकारियों तथा हवलदारों को

---

१८ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ०१८, फांसीगजे० पृ० २११ ।

१९ - डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १८ ।

२० - फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० १४६-४७ ।

गोलियों से भून डाला । डनलप तथा टेलर परेड के मैदान पर ही मारे गये । केम्पबेल तथा टर्नबुल घायल हुए, किन्तु किले की ओर भागे । टर्नबुल के पास घोड़ा नहीं था अत: उसने पेड़ पर चढ़कर जान बचानी चाही किन्तु सिपाहियों ने उसे देख लिया और गोली से उड़ा दिया । केवल केम्पबेल घोड़े पर सवार होने के कारण बच निकला और उसने किले में शरण ली । उसके आते ही किले का प्रवेश द्वार बन्द कर दिया गया ।[21] कन्डेक्टर रेली भी छावनी से बचकर बरुआसागर की ओर भाग गया ।[22] यहां नहर विभाग के सर्वेक्षक साहबराय से मिलकर उसने उसे अपनी घड़ी और घोड़ा दिया और उससे एक हिन्दुस्तानी पोशाक लेकर पैदल ही भाग निकला । वह आंखों से ओझल हुआ ही होगा कि दो बागी सवार तेजी से उसका पीछा करते हुए वहां आये और उसके घोड़े को पहचान लिया । बागी सैनिक साहबराय और बरुआसागर के थानेदार को बन्दी बनाकर झांसी ले आये ।[23]

अब झांसी के विद्रोही सैनिकों ने जेल दरोगा बख्शीश अली के नेतृत्व में जेल से कैदियों को मुक्त किया और एजेन्सी कोठी को छोड़कर समस्त कार्यालय, कचहरी, सार्वजनिक दफ्तरों के अभिलेख आदि जलाकर नगर की ओर प्रस्थान किया । विद्रोही सैनिकों ने कुछ हिन्दुस्तानियों के मकानों में भी आग लगादी । उनके क्रोध के शिकार बंगाली ही अधिक बने क्योंकि बंगाली सबसे अधिक अंग्रेज भक्त बने रहे थे । यहां तक कि एक बंगाली

---

२१ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६, २८ मई १८५८ नं० २०६, २०७, पार्लियामेन्ट्री पेपर १८५७ नं० २, डब्ल्यू० मेलसन० पृ० १६, होलकोम्ब० पृ० २१, स्मिथ० पृ० ७०, झांसी गजे० पृ०२११, मेलसन०भाग३ पृ० १२३, होम्स० पृ० ४६१, ~~के० भाग २ पृ० २२२~~ । इस जुलूस में रानी भी सम्मिलित थीं ।

२२ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६, डब्ल्यू० मेलसन० पृ०१६, होलकोम्ब० पृ० २१ ।

२३ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६ ।

पोस्ट आफिस राइटर ने एक अंग्रेज फ्लेमिंग (FLEMING) को अपने घर में छुपा रखा था । सैनिकों को किसी तरह खबर लग गई और उन्होंने फ्लेमिंग को निकालकर वहीं मौत के घाट उतार दिया[२४] ।

३ - 'विद्रोहियों' द्वारा किले का घेरा -

सिपाहियों के हाथ में छावनी की एक तोप पड़ गई थी । वे उसे लेकर किले में शरण लिये हुए अंग्रेजों पर आक्रमण करने के लिये बढ़े और उन्होंने किले को चारों ओर से घेर लिया[२५] । इसी ६ जून की रात को बागी नेताओं तथा रानीके कामदारों के बीच एक गुप्त बैठक हुई - जिसकी मुख्य समस्या यह थी अंग्रेजों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय तथा उन्हें खदेड़ देने के पश्चात झांसी का शासन किसे सौंपा जाय । कुछ नेताओं का कहना था कि अंग्रेजों को सुरक्षित किले से निकल जाने दिया जाय किन्तु बख्शीशअली उनको जीवित जाने देने के पक्ष में न था और उसकी ही बात चली । दूसरे प्रश्न पर कि झांसी का राज्य किसे दिया जाय, कोई समझौता नहीं हो सका जिसका सम्भवत: कारण यह था कि बख्शीशअली और उसके साथी झांसी की गद्दी का सौदा करना चाहते थे और उनकी नज़र झांसी की गद्दी के दूसरे दावेदार, सदाशिवराव[२६] पर थी जोकि उस समय उन्नाव[२७] में था । वे, जो उन्हें अधिक धन दे उसी को झांसी का राज्य सौंपना चाहते

---

२४ - फा० सी० कन्स० ३० अक्टूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, फा० पो०लि० कन्स० ११ फरवरी १८५८ नं० ३६-३८, स्मिथ०पृ ७० ।

२५ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५४, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० १६, होलकोम्ब० पृ० २१, झांसी गजे० पृ० २११, होम्स० पृ० ४६१, के० भाग ३, पृ० ३६५, स्मिथ० पृ० ७० ।

२६ - सदाशिवराव ने करैरा के किले पर अधिकार करके स्वयं को वहां का राजा घोषित कर दिया था । बाद में अंग्रेज सरकार ने उसे आजन्म कैद की सजा दी थी । रैवेन्यू डिपार्टमैण्ट १८५७ भाग २१ नं० ४-५ ।

२७ - उन्नाव - झांसी से लगभग ८ मील उत्तर ।

थे । उन्होंने तुरन्त हीपश्चात् सदाशिवनारायण पारोलकर को सन्देश देकर बुलवा भेजा । वह ८ जून को फांसी आ पहुंचा और स्टार फोर्ट के सामने अपने पड़ाव डालकर पड़ गया[२८] ।

यहां किले में घिरे अंग्रेजों की स्थिति बिगड़ती ही जारही थी । ओरछा और दतिया के राज्य तो फांसी से लगे ही हुए थे किन्तु यहां से अभी तक कोई सहायता नहीं आई थी । जब ७ जून को अंग्रेजों ने ग्वालियर से सहायता मांगी[२९] । गोला बारूद की कमी के कारण अंग्रेजों को लगा कि वे अधिक समय तक नहीं टिक सकते, इसलिए स्कीन ने ७ जून की प्रात: डिप्टी कमिश्नर के हेड क्लर्क स्काट, पर्सेल्स बंधु तथा सदर अमीन एन्ड्रयूज को रानी से सहायता लाने के लिए भेजा । किन्तु किले से निकलते ही ये अंग्रेज विद्रोही सैनिकों के हाथ पड़ गये । सैनिक उन्हें रानी के पास ले गए किन्तु रानी तब उनसे मिलना नहीं चाहती थी इसलिए उसने कहा कि " उसे अंग्रेज कुत्तों से कोई मतलब नहीं है ।" इतना ही नहीं उन्हें विद्रोहियों के हवाले कर दिया गया । सदर अमीन एन्ड्रयूज रानी के महल के सदर दरवाजे पर ही रानी के अपने सेवक मरुकुंवर के पुत्र द्वारा मारा गया ।

---

२८ - होलकोम्ब० पृ० २२ - २३, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० २०, स्मिथ० पृ० ७०-७१, के० भाग ३ पृ० ३६६, फांसीगजि० पृ० २११, रेवेन्यू डिपार्टमेण्ट १८५७ भाग२१ नं० ४-५ ।

२९ - फोरेस्ट० भाग ४ पृ० ८६ ।

स्कांट और पसेंल्स बन्धुओं को भी सैनिकों ने गोलियों से भून डाला[30]।

इसी बीच १४ वीं अस्थाई घुड़सवार सेना के रिसालदार फैज़अली[31] ने अंग्रेज अधिकारियों को यह आश्वासन दिया कि यदि वे हथियार डालदें तो उन्हें सुरक्षित निकल जाने दिया जायगा। किन्तु अंग्रेज दतिया, ओरछा, ग्वालियर आदि से आने वाली सहायता की ताक में लगे हुए थे, इसलिए उन्होंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। रानी से स्कीन और गार्डन का भी पत्र व्यवहार चला किन्तु इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है[32]।

फैज़अली अंग्रेजों को किले से बाहर निकालने के प्रयासों में असफल हो चुका था। अत: अब इसी दिन (७ जून) दोपहर को २ बजे विद्रोहियों ने किले पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों पर इस आक्रमण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, प्रत्युत कुछ बागी सैनिक ही मारे गये।

---

३० - फा० सी० कन्स० ३० अक्टूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, फा० पोलि० कन्स० (अनुपूरक) ३० दिसम्बर १८५८ नं० २८०-८८, डब्ल्यू० मेलसन० पृ० २०, होलकोम्ब० पृ० २४, स्मिथ० पृ० ७१, फांसी गज़े० पृ० २१२ फौरेस्ट० भाग ४ पृ० ५, होम्स० पृ० ४६२, के० भाग ३ पृ० ३६६-६७, मेलसन० भाग ३ पृ० १२४।

पारसनीस के अनुसार विद्रोहियों ने ~~स्कांक~~ स्कांट पसेंल्स बंधु तथा एन्ड्रूज को मार्ग में ही पकड़कर मार डाला जबकि बाबू वृन्दावनलाल वर्मा इनके मारे जाने की बात ही टाल गए हैं। लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ८३।

३१ - फैज़अली कानपुर का एक मुसलमान था। इसी ने ८ जून को श्रीमती स्कीन को तलवार के घाट उतारा था। बाद में अंग्रेजों ने इसे कैद करने के लिए २००-०० रु० का इनाम घोषित किया था।

फा० पोलि० कन्स० ११ फरवरी १८५६ नं० ३६-३८, रेवेन्यु डिपार्टमेण्ट १८५७ भाग २१ नं० ४-५।

३२ - होलकोम्ब० पृ० २४ के० भाग ३, पृ० ३६७, डब्ल्यू० मेलसन० पृ० २०।

विद्रोही सैनिकों ने जब यह देखा कि आक्रमण का प्रभाव विपरीत पड़ा तब उन्होंने रानी से सहायता लेनी चाही। ऐलिस के अनुसार रानी ने दो तोपों तथा सैनिकों से विद्रोहियों की सहायता की।[33] स्कीन के खान-सामा शाहबुद्दीन के अनुसार रानी से विद्रोहियों ने जो दो तोपें प्राप्त की थीं उनमें एक कड़क बिजली नामक सुप्रसिद्ध तोप भी थी।[34] रानी से तोपें प्राप्त कर विद्रोही सैनिकों ने ८ जून को इन्हीं तोपों से किले पर आक्रमण किया। स्कीन के खानसामा ने बाद में अपने ब्यान में बताया था कि " ८ जून को जब वह नगर गया तब उसने देखा कि रानी के आदेश पर कड़क ~~बिजलि~~ बिजली तोप अफसर के विरुद्ध प्रयोग करने के लिए तैयार की जारही थी।[35] रानी पर दोषारोपण करने के साथ ही साथ लगभग सभी अंग्रेज इतिहास-कार यह स्वीकार करते हैं कि विद्रोहियों ने ये तोपें रानी से धमकाकर प्राप्त की थीं। रानी ने विद्रोहियों के चले जाने के बाद अपने ~~कल्याणार~~ १२ जून और १४ जून के पत्रों में भी लिखा था कि विद्रोहियों ने उसे उसका महल उड़ा देने की भी धमकी दी थी।[36]

---

३३ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६, ३५५, ३० अक्तूबर १८५७ नं० ६०२-६०४, होल्कोम्ब० पृ० २४, फॉरेस्ट० भाग ४ पृ० ६, मैलसन० भाग ३ पृ० १२३, स्मिथ० पृ० ७१।

३४ - फा० पौलि० कन्स० (अनु पूरक) ३० दिसम्बर १८५८ नं० २८०-८८, फा० पौलि० कन्स० १६ जुलाई १८५८ नं० ४६-४७ ।

३५ - फा० पौलि० कन्स० (अनुपूरक) ३० दिसम्बर, १८५८ नं० २८०-८८।

३६ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५४ ।

विद्रोहियों के किले पर इस आक्रमण का अंग्रेजों ने वीरता से सामना किया किन्तु इस बार के आक्रमण में विद्रोही सैनिकों को कुछ सफलता मिली और उन्होंने किले के निचले भाग पर अधिकार कर लिया।[३७] इधर किले में बन्द भारतीयों ने किले से बाहर निकलने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें अंग्रेज अधिकारियों ने धमकाया कि यदि वे ऐसा करेंगे तो उन्हें गोली मारदी जायगी। पर भारतीयों का कहना था कि "किले में बन्द रहकर भूखों मरने से तो अच्छा है कि गोली खाकर मरा जाय।" इनमें से एक तत्काल ही गोली से मार दिया गया किन्तु दूसरे ने झपटकर ~~झांसी~~ झांसी के असिस्टेन्ट सर्वेयर लेफ्टीनेन्ट पाविस (POWIS) की तलवार के घाट उतार दिया। इस दूसरे व्यक्ति को भी बर्गेस (BURGESS) ने गोली से उड़ा दिया। इसी समय कैप्टन बर्गेस को भी गोली लगी और वह भी मारा गया। मरने के पूर्व वह कम से कम २५ व्यक्तियों को मार चुका था।[३८] इसी समय कैप्टन गार्डन किले की एक खिड़की से झांकता हुआ बागियों की एक गोली का शिकार बना।[३९] किन्तु पंना के वकील शंकर ~~[illegible]~~ राव तब झांसी में था, एक अन्य विवरण देता है। उसके अनुसार विद्रोही सण्डेराव खिड़की से किले में प्रवेश करने में सफल हुए थे और स्थिति खराब

---

३७ - हौलकोम्ब० पृ० २४-२५, झांसी गज़े० पृ० २१२, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० २०, के० भाग ३ पृ० ३६७, स्मिथ पृ० ७१।

३८ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६, २६ मार्च १८५८ नं० १६७-६८, पार्लियामेन्ट्री पेपर्स १८५७ नं० १६३, मैलसन० भाग ३ पृ० १२५, स्मिथ पृ० ७१।

३९ - स्मिथ० पृ० ७१।

होती हुई देखकर गार्डन ने ठोढ़ी में स्वयं को गोली मारकर आत्म हत्या करली।[४०]

४ - फोकनबाग का हत्याकाण्ड -(८ जून, १८५७)

गार्डन के मरते ही अंग्रेजों का साहस गिरने लगा और अब स्कीन ने विद्रोहियों के एक प्रमुख नेता डा० सलेह मुहम्मद[४१] से सुरक्षा का वचन मिलने पर शाम को लगभग ४-५ बजे हथियार डालने का निश्चय किया।[४२] अंग्रेज हथियार डाल किले से बाहर निकल आये। किन्तु बाहर निकलते ही वे विद्रोही सैनिकों द्वारा बन्दी बना लिये गए। बागी सैनिकों ने इन अंग्रेज बन्दियों का एक बड़ा जुलूस निकाला और ओरछा दरवाजे से होते हुए स्टार फोर्ट की ओर प्रस्थान किया। नगर के परकोटे के बाहर और ओरछा दरवाजे से लगभग ४०० गज पर फोकनबाग के निकट पहुंचते ही विद्रोहियों के नेता रिसालदार कालेखां का एक सन्देश आया और बन्दी अंग्रेजों को पेड़ों के बीच तीन पंक्तियों में खड़ा कर दिया गया। रिसालदार

---

४० - फा० सी० कन्स० २५ सितम्बर १८५७ नं० ३४३-४५। इसकीपुष्टि भगवान ब्राह्मण ने अपने साक्ष्य में की है। फा० पोलि० कन्स० ३० दिसम्बर १८५६ नं० २८४ (अनुपूरक)।

४१ - डा० सलेह मुहम्मद एक स्थानीय डाक्टर था जो १८५७ के विद्रोह के समय एक प्रमुख नेता था और जिसने यूरोपियन बन्दियों के हत्याकाण्ड में भाग लिया था। रेवेन्यू डिपार्टमेण्ट१८५८ भाग २१ नं० १६५।

४२ - फा०सी०कन्स०३१ जुलाई१८५७ नं०१७६,३० अक्टूबर१८५७ नं०६०२-६०४, होल्कोम्ब०पृ०२६,सेन०पृ०२७८) स्मिथ लिखते हैं कि कुछ विवरणों के अनुसार लालबहादुर सूबेदार तथा जेल दरोगा बख्शीशअली के माध्यम से अंग्रेज हथियार डालने के लिए राजीहो गए थे।(पृ०७१) जबकि होम्स०(पृ०४६२)और मेलसन० भाग३ (पृ०१२५-२६)के अनुसाररानी ने स्वयं उन्हें किलाखाली करने पर सुरक्षित चले जाने का वचन दिया था। किन्तु रानी की स्थिति इस समय ऐसी नहीं थी कि वे विद्रोहियों को कोई आश्वासन दे सकतीं। अगर विद्रोही उनकी इतनी ही बात मानते तो वे पारोलकर को बुलाकर झांसी राज्य की सौदेबाजी

कालेखां की आज्ञा से बख्शीशअली ने सबसे पहले स्कीन का कत्ल कर हत्याकाण्ड का प्रारम्भ किया । इसके साथ ही समस्त विद्रोही सैनिक अंग्रेज बन्दियों पर टूट पड़े और उन्हें उनके बच्चों सहित मौत के घाट उतार दिया[४३]। किन्तु किसी भी ~~र~~ स्त्री के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया गया[४४]।

इन अंग्रेजों के शव फोकनबाग में ही तीन दिनों तक खुले पड़े रहे । बाद में इन्हें सैंयरगेट के पास ही मटिया टौरिया के पास एक कुइया में डालकर पाट दिया गया[४५]।

---

४३ - (फा० सी० कन्स० २५ सितम्बर १८५७ नं० ३४३-४५, ३१ जुलाई १८५७ नं० १७६, २३०, २३८, २४०, २६ मार्च १८५८ नं० १६७-६८, फा० पोलि० कन्स० ११ फरवरी १८५६ नं० ३६-३८, पार्लियामेन्ट्री पेपर्स १८५७ नं० १६३, २०५, के० भाग ३, ३६८-६६, होल्कोम्ब० पृ० २६, मैलसन० भाग ३ पृ० १२६, स्मिथ पृ० ७१-७२, सेन० पृ० २७८, फॉरेस्ट भाग ४ पे पृ० ७, सावरकर० पृ० २२८, हौम्स० पृ० ४६२, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० २१, इंडिया एंड इट्स नेटिव प्रिंसिस (रूज लेट) पृ० ३२५, रैवेन्यू डिपार्टमेण्ट १८५७ भाग२१ नं० ४) स्कीन का खानसामा शाहबुद्दीन अपने ब्यान में कहता है कि इस जलूस में वह कत्लेआम के समय रानी के आदमी भी थे । फा० पोलि० कन्स० (अनुपूरक) ३० दिसम्बर १८५८ नं० २८०-८८ । फोकनबाग के इस हत्याकाण्ड में कुल ७७ स्त्री पुरुष बच्चे मारे गये थे । नामों की विशेष सूचना के लिए अध्याय में संलग्न परिशिष्ट नं० १ देखें ।

४४ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० २४० ।

४५ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० २०६-२०७, के० भाग ३ पृ० ३६६, फॉरेस्ट भाग ४ पृ० ७, फांसी गज० पृ० २१२, सेन० पृ० २७८, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० २१, स्मिथ० पृ० ७२ ।

५ - झांसी के विद्रोह में रानी का भाग :-

सुप्रसिद्ध इतिहासकार सेन तथा मजूमदार का मत है कि महारानी लक्ष्मीबाई का १८५७ के विद्रोह की पूर्व योजना में कोई हाथ नहीं था और न वह इसमें भाग लेना चाहती थी । यह तो अंग्रेजों की रानी को विद्रोही समझ बैठने की भूल थी जिसके कारण वे झांसी पर आक्रमण कर बैठे और रानी को आत्म सम्मान की रक्षा के लिए तलवार उठानी पड़ी । सेन के अनुसार " अंग्रेजों के साथ मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के अपने सर्वोत्तम प्रयत्नों के बावजूद रानी को अंग्रेजों की पीड़ा कारी कूटनीति के कारण विरोधी शिविर में जाना पड़ा ।"[४६] अपने मत की पुष्टि के लिए सेन और मजूमदार निम्न तर्क उपस्थित करते हैं

१ - यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हो सका है कि रानी ने विद्रोह के पूर्व झांसी में अंग्रेजी सेना के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को भड़काने के लिए कोई प्रयत्न किये थे ।

२ - प्रारम्भिक विद्रोह में रानी के सम्मिलित न रहने का एक बड़ा प्रमाण झांसी के हत्याकाण्ड से बचे हुए मार्टिन नामक अंग्रेज का एक पत्र है जो २० अगस्त सन् १८८६ को दामोदर को भेजा गया था । यह इस प्रकार है कि " आपकी माता के साथ बड़ी क्रूरता और अन्याय का बर्ताव किया गया । उनके सम्बन्ध में सच्चा हाल जैसा मैं जानता हूं वैसा कोई नहीं जानता । सन् १८५७ के जून महिने में झांसी में यूरोपियन लोगों का जो वध हुआ, उसमें उस बेचारी का कुछ भी सम्बन्ध न था । केवल इतना ही नहीं जब अंग्रेज लोग किले चले आये तब उन्होंने दो दिन तक उनको भोजन दिया । उन्होंने करहरा से १०० टोपीदार बन्दूकों वाले आदमियों को

---

४६ - सेन० पृ० ३०४ ।

मंगाकर हमारी सहायता के लिए भेजा । हम लोगों ने इन सिपाहियों को दिनभर किले में रखकर शाम को वापस भेज दिया । इसके बाद लक्ष्मीबाई ने मेजर स्कीन और गार्डन को यह सलाह दी कि आप लोग यहां से भागकर दतिया जायें और वहां के राजा के संरक्षण में रहें । किन्तु उस समय उन लोगों ने यह भी नहीं किया । अन्त में हमारी सेना के लोगों ने ही सब लोगों का वध किया ।[४७] तात्पर्य यह है कि जब अंग्रेज विद्रोही सैनिकों से घिरे हुए थे तब भी रानी अंग्रेजों की सुरक्षा के लिए चिन्तित थी ।

३ - अंग्रेज इतिहासकार के भी लिखते हैं कि " मुझे यह बात दृढ़ प्रमाण सहित विदित हुई है कि इस वध के समय रानी का एक भी नौकर वहां उपस्थित नहीं था । यह कार्य मुख्यत: हमारे पुराने अनुयायियों का प्रतीत होता है । अस्थाई सवार सेना (Cavalry) के सैनिकों ने हत्या की खूनी आज्ञा दी और हमारा जेल दरोगा उन हत्यारों का अगुआ था ।[४८]
(I have been informed on good authority that none of the Ranee's servant were present, on the occasion of the massacre. It seems to have been mainly the work of our own followers. The irregular cavalry issued the bloody mandate and our Goal (JAIL) Daroga was foremost in the butchery.)

---

४७ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० ६३, लक्ष्मीबाई रायसा पृ० ५५ । दामोदर का पुत्र इमली बाजार इन्दौर में रहता है । मार्टिन का पत्र पाया नहीं जा सका है किन्तु पारसनीस का दावा है कि उन्होंने उसे देखा है ।

४८ - के० भाग ३ पृ० ३६६ ।

४ - विद्रोही सैनिकों के दिल्ली की ओर चले जाने के पश्चात् रानी ने सागर के कमिश्नर इर्स्किन को १२ और १४ जून १८५७ को दो पत्र लिखे। रानी ने १२ जून के पत्र में लिखा कि " झांसी स्थित सरकारी फौजों ने अपनी विश्वासहीनता, क्रूरता और हिंसा से सब यूरोपीय सैनिकों, अफसरों, क्लर्कों और सम्पूर्ण परिवारों को मार दिया है।" रानी के पास तोपों की कमी थी तथा सिपाही भी कुल १०० या ५० थे जो उसकी महल की रक्षा में लगे हुए थे। अत: वह उनकी कुछ सहायता न कर सकी। जिसका उसे खेद है। इसी पत्र के अनुसार विद्रोहियों ने रानी को यह सन्देश भिजवाया कि यदि उसने किसी प्रकार उनकी प्रार्थना को पूरा करने में आना कानी की तो उसका महल तोपों से उड़ा दिया जायगा। अपनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए रानी को उनकी सब प्रार्थनाओं को मानने की अनुमति देनी पड़ी। अपना जीवन और सम्मान बचाने के लिए उसे जायदाद और नगदी के रूप में बहुत सा धन भी देना पड़ा[४९]। जून १४ के पत्र में रानी ने लिखा कि अंग्रेजी शासन के उठ जाने से झांसी में अराजकता फैल गई है और वह अंग्रेजों की ओर से व्यवस्था स्थापित रखने के प्रयत्न कर रही है। इन प्रयत्नों की सफलता के लिए तुरन्त ही धन की सहायता अपेक्षित है[५०]।

रानी के इन दोनों पत्रों से स्पष्ट है कि वह स्वयं विद्रोह में सम्मिलित नहीं थी और न ही सिपाहियों को उकसाने के लिए उसने कुछ किया था। यदि उनके उकसाने में रानी का हाथ होता तो वे रानी का महल फूंक देने की धमकी ही क्यों देते और यदि वह सिपाहियों से मिली होती तो वह उनसे अनुरोध करती कि वे उसके पास ही ठहरें क्योंकि उनके चले जाने पर वह न केवल अंग्रेजों का मुकाबला करने

---

४९ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५३-५४।

५० - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५४।

में असहाय रह गई बल्कि उसे अपने सम्बन्धियों तथा पड़ोसियों के षड्यन्त्रों का भी शिकार होना पड़ा ।

किन्तु दूसरी ओर फांसी में उस समय उपस्थित गवाहों के ब्यान से स्पष्ट है कि रानीने १८५७ के पूर्व नियोजित स्वतंत्रता संग्राम में खूब सोच समझकर भाग लिया था । गवाहों ने यह ब्यान तुरन्त ही पश्चात् अंग्रेज अधिकारियों के सामने दिये थे ।

१ - कैप्टन पी० जी० स्कांट ने फांसी के विद्रोह के सम्बन्ध में दी गई अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि " गदर के घटित होने के कुछ दिन पूर्व १२ वीं हिन्दुस्तानी इन्फैन्ट्री और फांसी केन्द्र के सेनापति कैप्टन डलप ने मेजर क्रिसे के पास फांसीके सुपरिन्टेन्डेण्ट मेजर स्कीन और डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट कैप्टन गार्डन को सूचित करने वाले पत्र भेजे थे कि उन्हें अलग अलग स्रोतों से पता चला है कि फांसी की रानी का कोई लक्ष्मण राव नामक सेवक १२ वीं इन्फैन्ट्री के लोगों को उकसाने की चेष्टा कर रहा है ।[५१]

२ - जब यूरोपियन को विद्रोहियों ने किले में घेर लिया था तब उनके नेता कैप्टन गार्डन और रानी के बीच सन्देश वाहक के रूप में काम करने वाले एक व्यक्ति मदारबख्श ने अपने ब्यान में कहा कि " जब विद्रोहियों के नेता एक रिसालदार ने यह वायदा किया कि अगर किले के लोग किला खाली कर बाहर आ जायेंगे तो उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जायेगी । तब ऐसा एक पत्र लेकर मैं साहिबों की ओर गया । ८ बज चुके थे । किले के समीप पहुंचने पर मैंने पाया कि किला रानी के सिपाहियों से घिरा हुआ था । जिन्होंने मुझे गालियां दी और कहा कि रानी के आदेश हैं कि किले में कोई न घुसे ।[५२]

३ - मेजर स्कीन के खानसामा शाहबुद्दीन ने अपने ब्यान में कहा कि " ८ जून को जब वह नगर की ओर गया तो उसने देखा कि रानी के आदेश पर

---

५१ - फौरेस्ट० भाग ४ , कैप्टन पी० जी० स्कांट की रिपोर्ट ।

५२ - फा० पोलि० कन्स० (अनुपूरक), ३० दिसम्बर १८५८ नं० २८०-८८ ।

कहक बिजली तोप अफसरों के विरुद्ध प्रयोग करने को तैयार की जा रही थी[५३]।

४ - शाहबुद्दीन रानी के पिता मोरोपन्त ताम्बे पर भी यह आरोप लगाता है कि उसने सिपाहियों के साथ क्रियात्मक सहयोग दिया । इसी गवाह के द्वारा सबसे बुरा अभियोग जो रानी पर लगाया जाता है वह यह है कि " वह हत्याकाण्ड के बाद बख्शीशअली के साथ रिसालदार के पास गई[५४]।

कैप्टन गार्डन के हुक्मबर्दार शेख हिंगन का कहना है कि गार्डन ने जब यह सुना कि रानी के आदमी भी आक्रमणकारियों में है तब उसने रानी को लिखा और रानी ने उसे यह उत्तर दिया कि मैं क्या कर सकती हूं ? सिपाहियों ने मुझे घेर रखा है और वे कहते हैं कि मैंने भद्र पुरुषों को छुपा रखा है । वे मुझसे किला खाली करवाने को कहते हैं और कहते हैं कि हमारी सहायता करो । अपने आप को बचाने के लिए मैंने तोपें और अनुगामी भेजे हैं । यदि आप अपने आप को बचाना चाहते हो तो किला छोड़दें । आपको कोई हानि नहीं पहुंचायेगा[५५]। शेख हिंगन का दावा है कि उसने इस पत्र को पढ़ा । वह आगे लिखता है कि गार्डन ने रानी को दूसरा पत्र लिखा जिसका उसने उत्तर नहीं दिया । उसके अनुसार हिन्दू और मुसलमानों ने सुरक्षा का वचन दिया था इसलिए अंग्रेज बाहर निकल आये । दूसरी और मदारबख्श का दावा है कि वह गार्डन के पत्र को रानी के पास ले गया था और वही उसके पत्र का वाहक था । किन्तु उसका कहना है कि उस पत्र में क्या लिखा था यह उसे मालूम न था[५६]।

श्रीमती मुटलो दृढ़ता पूर्वक कहती है कि " स्कीन और गार्डन रानी के पास गये और उससे उन्होंने करीब ५०-६० बन्दूकें, कुछ बारूद, गोलियां और छर्रे प्राप्त किये और रानी ने हमारी रक्षा के लिए

५३- फा० पोलि० कन्स० (अनुपूरक) ३० दिसम्बर, १८५८ नं० २८०-८८ ।

५४ - वही ।

५५ - वही ।

५६ - वही ।

किले में स्वयं अपने ५० सिपाही भेजे।[५७] किन्तु गार्डन तथा स्कीन ने इर्स्किन को लिखे पत्रों में ऐसी किसी भेंट का उल्लेख नहीं किया है। श्रीमती मुटलों आगे लिखती हैं कि जब रानी ने ६ तारीख को सर्वव्यापी विद्रोह के बारे में सुना तब " उसने अपने सब सिपाहियों को किले से बुलवा लिया। रानी और उसके सिपाही रेजीमेण्ट से मिल गये। इसलिए हमने उसी रात अपने कपड़े बदले और किले से बाहर जाना चाहा किन्तु ऐसा नहीं कर सके। सवार किले के चारों ओर थे इसलिए हम शुक्रवार की रात शनिवार और रविवार को वहीं रहे। सोमवार को प्रात: करीब ८ बजे गार्डन को गोली मारी गई। उस रेजीमेन्ट के सूबेदार ने स्कीन को लिखा कि वे किले से बाहर आयें और कहा कि " हम तुम में से किसी को नहीं मारेंगे, हम तुम सबको तुम्हारे स्वदेश भेज देंगे। इस प्रकार स्कीन ने रानी को लिखा कि वे सिपाहियों से शपथ लेने को कहें और पत्र पर स्वयं अपने हस्ताक्षर करदें। हिन्दू और मुसलमानों ने गाय तथा सूअर की शपथें ली। रानी ने इस शपथ पत्र पर अपने हस्ताक्षर किये और वह स्कीन को दे दिया गया।" मुटलों के अनुसार यह पत्र पढ़ा गया और सब जाने को तैयार हो गये।[५८]

सेन के अनुसार मुटलो की यह कहानी अनेक कठिनाइयां उपस्थित करती है। उन दिनों भारतीय बड़े लोगों ने पत्रों पर हस्ताक्षर करने का रिवाज न था और न वे उत्तम पुरुष में ही लिखते थे। रानी भी अपने समस्त शासकीय पत्र व्यवहार में अपनी मुद्रा का प्रयोग करती थी। उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है -

१ - यहकि रानी अंग्रेजों से क्रोधित और असंतुष्ट तो थी ही इसलिए हो सकता है कि उसने विद्रोहियों को अंग्रेजों के विरुद्ध उकसाने में योग्य दिया हो। उसके कुंअर और लक्ष्मणराव जैसे अनुचरों द्वारा छावनी में उकसाने के कार्य करने के उल्लेख बहुत स्पष्ट हैं और फिर यह भी कहा गया है कि झांसी के नागरिकों का जो जुलूस ६ जून को परेड के समय छावनी में पहुंचा

---

५७ - फा० पो०लि० कन्स० १६ जुलाई १८५८ नं० ४६-४७ ।

५८ - वही ।

था उसमें भी रानी के अनुचर थे।

२ - ६ जून की रात को विद्रोही नेताओं ने झांसी के राज्य की सौदेबाजी की और रानी को शासन सौंपने पर एकदम राजी न होकर सदाशिव पारोलकर को बुला भेजा। इससे प्रतीत होता है कि विद्रोही रानी के पूर्ण प्रभाव में नहीं थे और न ही रानी का उन पर पूर्ण नियंत्रण था। अगर ऐसा होता तो वे एकदम तुरन्त ही रानी को झांसी की शासिका घोषित करते।

३ - यह भी संभव है कि रानी ने विद्रोहियों को जो तोपें दी और जो अनुगामी उनके साथ किये, वे उनके भय और विवशता के कारण ही किये होंगे। रानी ने धन भी इसीलिए दिया था।

४ - यह बात निर्विवाद है कि रानी का झोकनबाग के हत्याकाण्ड में कोई हाथ नहीं था और न उसने अंग्रेजों को किले से बाहर आने पर कोई सुरक्षा का वचन ही दिया था।

५ - रानी एक नारी थी और नारी सुलभ उदारता और दया उसके मन में होने के कारण ही उसने किले के भीतर अंग्रेजों और उनके परिवारों के लिए भोजन पहुंचवाया था। जो सम्भवत: विद्रोहियों को पता लगने और उनके धमकाने पर रोक दिया गया होगा। रानी किसी भी तरह अंग्रेज स्त्री बच्चों की निर्मम हत्या का आदेश नहीं दे सकती थी। यह उसके चरित्र के एकदम विपरीत था।

विद्रोहियों के झांसी से दिल्ली की ओर चले जाने पर झांसी में अराजकता छागई और यह उचित तथा स्वाभाविक था कि रानी झांसी का शासन अपने हाथ में ले लेगी। पर ऐसा जैसाकि उसके इर्स्किन को लिखे पत्रों से स्पष्ट है कि उसने अंग्रेजों की ओर से ही शासन संभाला था। इर्स्किन ने तब उसके द्वारा वर्णित तथ्यों को मानकर उसके पक्ष में यह घोषणा करदी थी कि रानी ने अंग्रेजों की ओर से

ही संभाला है[५६]। पर तुरन्त ही पश्चात् अन्य रिपोर्टों के आधार पर यह मान लिया गया कि रानी ही फांसी के विद्रोह के लिए उत्तरदायी है और यहां तक कहा जाने लगा कि रानी पर मुकदमा चलाया जायगा और अगर वह दोषी पाई गई तो दंडित भी किया जायेगा। रानी को सबसे अधिक इसी बात ने विद्रोही बनने पर विवश कर दिया था। मुकदमें का अपमान तत्पश्चात दंड की ग्लानि से तो उसने यही अच्छा समझा कि वह एक वीरांगना की मौत मरे। अब पीछे लौटने का प्रश्न ही नहीं रह गया था और रानी ने हर सम्भावित अन्त का सामना करने के लिए तैयारी कर लेना उचित समझा।

अन्त में अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि रानी सम्भवत: अंग्रेज विरोधी विद्रोह का लाभ उठाकर फांसी का राज्य तो पुन: प्राप्त करना चाहती थी, लेकिन वह अभी जबकि स्थिति बिल्कुल साफ नहीं थी और विद्रोहियों की सफलता संदिग्ध थी तब तक अंग्रेजों को भी पटाये रखना चाहती थी। इसलिए एक और तो भोलानाथ, फुरुकुंवर और अपने अनुचरों को भेजकर वह विद्रोहियों को उकसाती रही और ६ जून की रात को उसने अपने अनुचरों द्वारा प्रयत्न किया कि विद्रोहियों के नेता उसे फांसी का राज्य देने के लिए सहमत हो जायं तथा ७ जून की रात को किले पर आक्रमण करने के लिए उन्हें तोपे भी दीं। जब कि दूसरी ओर विद्रोहियों के चले जाने के तुरन्त ही पश्चात् अपनी निर्दोषता जताने के लिए इस्किन को पत्र भेजे और अंग्रेज अधिकारियों को भुलावे में डालना चाहा। इस सन्दर्भ में डा० रमेशचन्द मजूमदार का यह कथन काफी तर्कसंगत है कि " फांसी में सिपाहियों के विद्रोह के ६ महिने से अधिक समय के पश्चात् रानी ने अंग्रेजों के प्रति निष्ठा जताई और अपने उन पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध जिन्होंने उसके राज्य पर आक्रमण किया था, सहायता की याचना की। रानी ने जब तक अंग्रेजों के विरुद्ध खुले रूप से

---

५६ - फा० सी० कन्स० " २५ जून १८५८ नं० १९५, फा० पोलि० कन्स० (अनुपूरक) ३० दिसम्बर १८५६ नं० २६६ ।

घोषणा नहीं की थी जब तक कि सर ह्यूरोज़ ने वास्तव में अपना सैनिक अभियान शुरु नहीं किया और तब उसने (रानी) अनुभव किया कि वह अंग्रेजों को अपनी निर्दोषता का विश्वास नहीं दिला सकती। जब उसके सामने फांसी में अंग्रेजों की हत्या के मुकदमे का सामना करने का विकल्प रखा गया, जिसका कि निर्णय पूर्व निश्चित सा था, तो उसने युद्ध क्षेत्र में सम्मानपूर्ण मृत्यु ही वरण करने का फैसला किया।[६०]

ऐसी स्थिति में अगर रानी ने तलवार उठाली और स्वतंत्रता युद्ध में जुट गई, तो इसमें अनुचित ही क्या था।

---

६० - इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १६ वां अधिवेशन, आगरा का आर० सी० मजूमदार का " दी आउट ब्रेक आफ एटीन फिफटी सेविन " पृ० ३१६
("...... More than nine months after the departure of sepoys at Jhansi she (Rani) was professing loyalty to the British and asked for their help against her neighbouring states which had attacked her dominions. The Ranee did not openly declared against the British until Sir Hugh Rose actually began his campaign and she felt that she could not convince the British of her innocence and was faced with alternative of trial for murder of the English at Jhansi, with its foregone decision and an honourable death in the battle-field.")

Appendix - 1

According to the list of the murdered persons sent by Mr. Samuel Thornton, the Deputy Collector of Mau-Ranipur the following Europeans were masscred at Jokhan Bagh Jhansi, on the 8th June 1857 : -

1. Cap. Skene with wife and 2 children.
2. Lieut. Gordon.
3. T. Andrews.
4. R. Andrews with wife and 4 children.
5. W. Carshore with wife and 4 childsen.
6. D.C. Wilton with wife and a child and 2 sisters of Mrs. Wilton.
7. Our Suprintendent of Customs with wife and mother.
8. Cap. Dunlop 12th Bengal Infantry.
9. Lieut. Taylor, 12th Bengal Infantry.
10. Lieut. Ryddes, 12th Bengal Infantry.
11. Dr. McEgan , 12th Infantry with his wife, and sister.
12. Dr. Arnton with wife and 4 children.
13. Lieut. Campbell, 14th Irregular cavalry and another cavalry Officer.
14. Secy. Ryley Overseer of Public works.
15. Cap. Burgess, revenue surveyor.
16. Lieut. Turnbull, assistant revenue surveyor.
17. D.D. Blyth, assistant revenue surveyor, Mrs. Blyth, her mother and 4 children.
18. Surgeant Millard, Subassistant revenue surveyor, Mrs. Millard and 5 children.
19. Mr. Munroow.
20. Two Youngs.
21. Mr. Gabril.
22. Lieut. Poweys with wife and child.
23. Clerks - Mr. A. Scott.
24. Two Purcells.

(ग)

25. Two Mutlows with wife and child.

26. Mr. Ellis with father and mother.

27. Mr. Crawford.

Total - 77.

Sd. Samuel Thornton,
Deputy Collector,

Foreign Secret Constalations
30th Oct. 1857,
No. 602-604.

पृ. १९६ ग

Appendix - 2

Revenue Deptt. XXI 1857. File No. 4

Subject : - List of persons known or supposed to have taken part in Jhansi murder.

Judicial Circular No. 4648 of 1858.

List of persons eminent for disloyality in Zillah Jhansi during the late disturbances.

No.	Name of Person	Nature of Conduct given in detail	Reward already sanctioned for proposed for apprehension	Remarks
1.	Moroo Balwant alias Mama Pundit of Jhansi	This man was one of the principal rebels in Bundelkhand and was very active in causing the murder of Europeans. He was arrested in Duttia found guilty and hanged	Rs. 1000/	This person was the father of the rebel Rani of Jhansi. He was hanged on 19th April 1858.
2.	Lalloo Bakshi Pundit of Jhansi	This person was also very active in causing the murder of the Europeans at Jhansi and held the appointment of Commander in Chief ~~of the~~ of the rebel Ranee's force at Jhansi. He was arrested at Jhansi and sentenced to death.	Rs. 1000/	Was hanged on 19th April.
3.	Bukshish Ally son of Enait Ally caste Seikh inhabitant of Moradabad.	This man was Jail Daroga of Jhansi. He joined the mutineers by their attack on Europeans and also in their murder and is said to have cut Cap. Skene with his own hand.	Rs. 2000/	Still at large proclamation issued for his his arrest on 3rd May 1858.
4.	Omrao Singh Subedar	He was Soobedar of the Gwalior contingent. He attacked and plundered the town of Bhander with a band of rebels under his command.	Rs. 2000/	Still at large proclamation issued on 3rd May 1858.

4.9 J6 ξ

No.	Name of person	Nature of conduct given in detail	Reward already sanctioned for proposed for apprehension	Remarks
1.	Shaik Saleh Mohammed native Doctor	This man's case has been committed to the Court of Cap. Pinkney, Commissioner and special Commisioner He is proved to have induced the Europeans to leave the protection of the fort of Jhansi and to have been present at their murder. Property belonging to ~~the~~ Dr. Mac Egan and others was found in his possession.	Rs. 1000/	He was apprehended at Cawnpur and is confined in Jail. His case has been commited to the Court of special commisioner. Has been hanged.
2.	Muhammad Buksh Sheikh	This man was Jail Jamadar of Jhansi. He joined the mutineers, was accessary to the murder of the Europeans there and accompanied the mutineers to Delhi.	Rs. 1000/	Still at large proclamation for arrest issued on 3rd May 1858.
3.	Gangadhar s/o Lachman RaoPundit of Jhansi	One of the principal Khamdars or agent of the Rani of Jhansi. He fought against Govt. when Jhansi was attacked. He is said to have been the principle adviser of the Ranee.	Rs. 1000/	Still at large Proclaimation for arrest issued on 3rd May 1858.
8.	Luchman Rao Pundit of Jhansi	This man was also one of the principle adviser and agents of the Ranee and fought againstus at Jhansi	Rs. 1000/	Still at large Proclamation for arrest issued on 3rd May 1858.
9.	Kashee Nath Haree Pundit of Jhansi	This man was formerly Tehsildar of Perganah Pundwaha but joined the rebels and commanded a large body of rebels, was present at Mow Raneepur and caused both the Tehsildar and Jamadar of the fort to be put to death in June last.	Rs. 1000/	Still at large Proclmation or arrest issued on 3rd May 1858.
10.	Bishnoo Bhao Pundit of Jhansi	This man was ~~also arrested~~ one of the principal leader of the rebels army of Ranee and made his escape from the fort with large quantity of treasure of the rebel Rani, was arrested ~~in~~ Dattia State.	Rs. 1000/	Was hanged on 15th April 1858.

4.756 MT

No.	Person's Name	Nature of conduct given in detail	Reward already sanctioned or proposed for apprehension	Remarks
11.	Sanauley Rajput of Jhansi	This man also arrested accompanying Bishnoo Bhao	Rs.1000/	do
12.	Ram Prasad	This man also arrested accompanying Bishnoo Bhao	"	do
13.	Khoob Singh Jat of Jhansi	"	"	do
14.	Parsadee Nai of Jhansi	"	"	do
15.	Chotey	"	"	do
16.	Shahzadey Paik	One of the leaders of Ranee's army and escaped from Jhansi when it was stormed, was arrested near Isagarh and sent to Jhansi for trial.	"	was hanged on 16th Apr. 1858
17.	Soorjan Singh Pundit of ~~Jhansi~~ Dattia	One of leaders of Ranee's army and escaped from JHS. when it was stormed and was arrested near Isagarh and sent to Jhansi for trial.	"	"
18.	Gooman Aheer of Duutia	Was Killedar of the fort of Jhansi and fought against Government and was arrested at Duttia .	"	hanged on 23rd April 1858.
19.	Mangoo Goojar of Jhansi.	Commanded 50 men under the Ranee of Jhansi, was arrested in Duttia state.	"	do
			"	do
20.	Gangoo Musalman of Jhansi	Jamadar commanding 150 men in the army of Ranee and fought at the stormy of Jhansi against Government	"	do
21.	Sadashiv Narain Jageerdar of Parola lately residing at Jhansi	This man was ~~xx~~ a connection of the Ranee of Jhansi and took possession the for-t of Karehra and proclaimed himself king of that part of the country.	"	Imprisonment of life under transporation ~~xxxxx~~ beyond sea.
22.	Janardan Bullar Pundit of Maw	A relative of the late Ranee and now the leader of the large band of rebels.	Rs.1000/	Still at large proclamation

y0976 ব

No.	Name of Person	Nature of Conduct given in detail	Reward already sanctioned or proposed for apprehension.	Remarks
23	Jungjeet Bundela Thakur of Bhasneh Zillah Jhansi	Now in rebellion and commanding a large party of rebels. He was formerly a leader of Ranee's army	Rs. 1000/	Still at large proclamation for arrest issued on 14th July 1858.
24	Chattar Singh Bundela of Kakarwai	Also a leader of a large band of rebels now in rebellion.	Rs. 1000/	Still at large proclamation for arrest issued on 11th July 1858.
25.	Murdan Singh Thakoor of Saloraa Zillah Jhansi	A party of British troops was sent to arrest him. He is now in open rebellion.	Rs. 400/	Still at large proclamation for arrest issued on 31st July 1858.
26.	Shankar Singh	This man was also fixed on a party of British troops, sent to arrest him, now in open rebellion.	Rs. 300/	do.
x27.				
27.	Duggal Singh alias Doolajoo	do do	Rs. 300/	do.
28.	Jawahar Singh Pawar Thakoor of Kateeli of Duttia	One of the principal leaders of Ranee's troops and now in open rebellion and the head of the commandable band. He accompanied the Ranee on her flight from Jhansi & fought against us at Kalpi and Gwalior.	Rs. 1000/	Still at large proclamation for arrest issued on 3rd May 1858.
29.	Ramchandra Keshaw alias Ramu Bhaia Pundit of Jhansi	Rebel leader formerly Killedar of Pichore and commanding the rebels troops of Ranee's there.	Rs. 1000/	do.
30.	Munoa Ram Gujar of Jhansi	Rebel leader and Killedar of Karerah and commanded the rebels troops there.	Rs. 1000/	do.
31.	Faijx Ally Musalman of Kanpur	Said to have cut down Mrs. Skene with his own hands.	Rs. 200/	Still at large proclamation for arrest issued on 6th sep. 1858.

अध्याय - ११

रानी लक्ष्मीबाई का झांसी की सत्ता सम्भालना और उसका अल्पकालीन शासन

१ - रानी की सतर्कतापूर्ण कूटनीति -

रानी से बलपूर्वक धन लेकर विद्रोही ११ जून को दिल्ली की ओर चल दिये[१]। झांसी में घोर अराजकता छा गई थी। विद्रोहियों के आतंक से सभी भयभीत थे। अब जब विद्रोही झांसी से चले गये, तब कहीं व्यवस्था और शांति की ओर लोगों का ध्यान गया। अंग्रेजी शासन झांसी से उठ ही चुका था, अतएव स्वाभाविक था कि स्थानीय जनता प्रशासकीय व्यवस्था और अस्त व्यस्त जन-जीवन को सामान्य करने के लिए रानी लक्ष्मीबाई की ओर देखती। अत: झांसी के गण्यमान और प्रतिष्ठित व्यक्ति एक जन प्रतिनिधि मण्डल सा बनाकर रानी के पास गये। इस प्रतिनिधि मण्डल में झांसी की विभिन्न जातियों के पंच और विशिष्ट उच्चपदीय समस्त लोग जैसे आपा साहब,कुंवर चौधरी श्याम, बख्शी, गनपतगिरी,बंके दीवान, जवाहरसिंह, रणधीरसिंह नाहर,भीकाजी नाना, केरुआ के पंवार, ठाकुर केशव आदि थे। इन सभी ने रानी से झांसी का शासन संभाल लेने का आग्रह किया। पहले तो रानी ने स्त्री होने के कारण अपनी असहायता जताकर उनके प्रस्ताव को अस्वीकार सा करने का दिखावा किया। लेकिन जब उन जन प्रतिनिधियों

---

१ - फा० सी० कन्स० २५ सितम्बर १८५७ नं० ३४३-४५, ३१ जुलाई १८५७, नं० ३२६, ३५४, ३० दिसम्बर १८५६ नं० २६६(अनुपूरक), सेन० पृ० २८४, डब्ल्यू० मेलसन० पृ० २२, के० भाग ३ पृ० ३७०, लक्ष्मीबाई(पारसनीस)पृ०६५।

ने विशेष आग्रह किया और सबने हर प्रकार से रानी से सहयोग और उनकी सहायता करने का वचन दिया, तो रानी ने फिर उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया[२]।

पर रानी अभी भी झांसी में होने वाले काण्ड से अंग्रेजों की दृष्टि में स्वयं को निर्दोष बनाये रखना चाहती थी, इसलिए उसने १२ और १४ जून १८५७ को सागर के कमिश्नर इर्स्किन को झांसी की स्थिति के विषय में सूचना भेजी और विद्रोहियों द्वारा किये गए कार्यों पर दुःख प्रकट किया। रानीने १२ जून के अपने पत्र में लिखा कि " झांसी स्थित फौजों ने अपनी विश्वास हीनता, क्रूरता और हिंसा से सब यूरोपीय असैनिक और सैनिक अफसरों, क्लर्कों और उनके सम्पूर्ण परिवारों को मार दिया है"। चूंकि उसके पास तोपों की कमी थी, और सिपाही भी कुल १०० या ५० थे, जो उसके महल की रक्षा में लगे हुए थे। अतः वह उनकी कुछ सहायता न कर सकी जिसका उसे भारी खेद है। बाद में विद्रोहियों ने उसके नौकरों के साथ अत्यन्त हिंसात्मक व्यवहार किया और उससे बल पूर्वक धन वसूल किया और कहा कि चूंकि रानी को रियासत के उत्तराधिकार का अधिकार है अतः उसे

---

२ - कुड़रा० पृ०६ । रानी ने पहले प्रस्ताव अस्वीकार करने का दिखावा अंग्रेजों को भ्रम में डालने के लिए ही किया था। रानी का विद्रोहियों से सम्पर्क था और उसने उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काने में योग दिया था, यह बात अब प्रमाणित रूप से कही जा सकती है। और तो और कुड़रा अपने रायसो में इस तथ्य को निम्न पंक्तियों में स्वीकार करते हैं - " छल बल से झांसी मिली, गंगाधर कीनार।

ताकौ अब आगे कहत, भली भांति व्यवहार ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये पंक्तियां मदनेश ने कुड़रा के रायसो से ज्यों की त्यों उद्धृत की हैं। मदनेश० पृ० २ ।

ही शासन का प्रबन्ध करना चाहिए । सिपाही जानते थे कि रानी बिल्कुल असहाय और ब्रिटिश अधिकारियों पर आश्रित है, जो स्वयं इस समय ऐसे दुर्भाग्य में पड़े हैं, इसलिए उन्होंने उसके पास झांसी के तहसीलदार, डिप्टी कमिश्नर के राजस्व और न्यायिक सरिश्तेदारों तथा न्यायालयों के अधीक्षकों के द्वारा यह संदेश भिजवाया कि यदि उसने किसी प्रकार उनकी प्रार्थना को पूरा करने में आना कानी की तो उसका महल तोपों से उड़ा दिया जायगा । अपनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए रानी को उनकी सब प्रार्थनाओं को मानने के लिए बाध्य होना पड़ा और भारी हानि भी सहनी पड़ी । अपने जीवन और सम्मान के बचाने के लिए उसे जायदाद और नकद के रूप में बहुत सा धन भी देना पड़ा । रानी ने अंग्रेजों की अनुपस्थिति में जनता के हित को ध्यान में रखकर पुलिस आदि (गवर्मेन्ट के अधीन एजेन्सी) के पास परवाने भेजे कि वे अपने पदों पर बने रहें[3]। दिनांक १४ जून के पत्र में रानी ने फिर लिखा कि जिले में सब जगह अराजकता फैली हुई है और उपद्रवी सरदारों ने देहातों के गढ़ों पर अपना अधिकार जमा लिया है और पड़ोस में लूट-पाट कर रहे हैं । जिले की सुरक्षा के लिए कुछ भी प्रबन्ध करना उसकी शक्ति के बिल्कुल परे है क्योंकि इसके लिए धन की आवश्यकता है, जो उसके पास नहीं है । महाजन भी ऐसे समय में उधार नहीं देंगे । इस समय तक तो उसने अपनी पैतृक सम्पत्ति बेचकर किसी प्रकार शहर को लूटे जाने से बचाया है और पिछली (अंग्रेजी) सरकार के स्वरूप को बनाये रखा है । शहर और मुफस्सिल चौकियों की रक्षा के लिए उसने बहुत से आदमियों को रखा है[4]।

इस प्रकार इन पत्रों में रानी ने स्वीकार किया है कि उसे विद्रोहियों की सहायता करनी पड़ी, किन्तु ऐसा उसने विद्रोहियों

---

३ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५४ ।

४ - वही ।

की हिंसा की धमकी के डर से किया था । रानी ने यह दावा भी किया कि उसने जनता के हित को ध्यान में रखकर शासन की बागडोर संभाली थी । उसने अंग्रेज सरकार से प्रार्थना की कि शांति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए सैन्य दल भेजे ।

२ - अंग्रेज अधिकारियों का दृष्टिकोण -

इर्स्किन ने रानी की ईमानदारी पर सन्देह नहीं किया और भारत सरकार के सचिव बीडन (Beadon) को भेजे हुए पत्र में उसने यह लिखा कि " रानी के अपने विवरण से यह स्पष्ट दिखेगा कि उसने विद्रोहियों और बागियों को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी, (बल्कि) इसके विपरीत वह स्वयं लूटी गई और जिले का शासन संभालने के लिए विवश की गई और यह उससे मेल खाता है जो मैंने अन्य स्रोतों से सुना है ।"[५] "It will be seen that by the Ranee's own account, she in no way lent assistance to the mutineers and rebels, on the contrary that she herself was plundered and forced to take charge of the district and this agrees with that what I hear from other sources."

अपने २ जुलाई १८५७ के पत्र में इर्स्किन ने रानी को लिखा कि " झांसी में व्यवस्था पुनः स्थापित करने के लिए मैं अधिकारियों और सैनिकों को बहुत ही जल्दी भेज सकने की आशा करता हूं और यूरोपियन सैनिकों को शीघ्रता से प्रदेशों के अशांत जिलों में भेजा जा रहा है, लेकिन जब तक नया अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डेण्ट) झांसी न पहुंचे, तब तक मैं आपसे आग्रह

---

५ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५३ ।

करता हूं कि आप अंग्रेजी सरकार की ओर से जिले को संभालें, राजस्व इकट्ठा करें और इतनी पुलिस रखें जितनी आवश्यक हो तथा अन्य उचित ऐसे इन्तजाम करें जिन्हें कि आप समझती हैं कि सरकार स्वीकृत करेगी और जब अधीक्षक आपसे शासन संभालेगा, तो वह आपको परेशान नहीं करेगा, बल्कि आपके सब नुक्सानों, खर्चों की क्षतिपूर्ति करेगा और आपसे उदारता पूर्वक बर्ताव करेगा।' "I hope very soon to be able to send Officers and troops to restore order in Jhansi, and Europeans troops are rapidly sent up the country to the disturbed districts but until a new Suprintendent arrives to Jhansi, I beg you will manage the district for the British Government collecting revenue, raising such police as may be necessary and making other proper arrangementsx such as you know the Government will approve, and when the suprintendent ix takes charge from you, he will not only give you no trouble, but will repay you for all yours loses and expenses and deal liberally with you."

उसने आगे लिखा कि ' मैंने एक घोषणा निकलवाने के लिए भेजी है (जिसका अनुवाद फारसी और हिन्दी में संलग्न किया जा रहा है), जिसमें सब जिले के निवासियों से कहा गया है कि वे ब्रिटिश सरकार के रिवाजों के अनुकूल रानी की आज्ञा का पालन करें, जो कुछ समय तक उचित प्रबन्ध करेंगी।'[६]

---

६ - फॉ० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५४ ।

इस पत्र के उत्तर में गवर्नर जनरल के सचिव जी०एफ० एडमन्स्टन (EDMONSTONE) ने इर्स्किन को सूचित किया कि " यद्यपि सपरिषद गवर्नर जनरल आपको आपकी परिस्थितियों को देखते हुए, रानी के कार्यों और भावों के सम्बन्ध में उसके विवरण को स्वीकार करने के लिए और ब्रिटिश सरकार की ओर से झांसी राज्य क्षेत्र के प्रबन्ध को उसे सौंप देने के लिए दोष नहीं देते, किन्तु यदि उसका विवरण झूठा निकला तो यह परिस्थिति रानी को बचा नहीं सकेगी । मेजर ऐर्स्किन ने सरकार को जो विवरण दिया है, उससे यह मालूम पड़ता है कि रानी ने गदर करने वाले विद्रोहियों को अवश्य सहायता दी और यह भी कि उसने उन्हें तोपें और ~~अदम्य~~ आदमी भी दिये ।[७]" यह विवरण मेज़र ऐर्स्किन द्वारा भेजे गये सन्देश से भी कुछ मिलता था, क्योंकि उसमें कहा गया कि " ~~विद्रोहि~~ विद्रोहियों ने रानी को मजबूर करके जबर्दस्ती तोपों और हाथियों की सहायता ली ।[८]"

किन्तु रानी ने फिर भी फिलहाल अंग्रेजों से मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना चाहा । उसने मध्यभारत के एजेन्ट - हेमिलटन के पास एक खरीता भेजा । इसमें उसने लिखा कि उसने " अपनी विपन्नावस्था में जबलपुर के कमिश्नर, मध्यभारत के लिए गवर्नर जनरल के कार्यकारी एजेन्ट, आगरा के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर, जालौन के डिप्टी - कमिश्नर, ग्वालियर के पालिटीकल एजेन्ट और मेज़र ऐर्स्किन आदि को पत्र लिखे हैं, किन्तु मुझे भय है कि इनमें से कुछ ही पत्र अपने निर्दिष्ट स्थानों तक पहुंच नहीं सके हैं । इन पत्रों के कुछ वाहकों का पता नहीं चल सका । जो आज आगरा भेजे गए थे, वे यह कहते हुए लौट आये कि वे पत्रों को किले के अन्दर एक भिश्ती द्वारा भिजवा आये थे और वहां के उत्तर के लिए इसलिए नहीं ठहरे क्योंकि उन्हें अपने जीवन का भय हो चला

---

७ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० ३५५ ।

८ - फा० सी० कन्स० ३१ जुलाई १८५७ नं० १७८ ।

था[९]।" रानी ने आगे लिखा कि " मेजर रेस्किन ने मुझे सूचना दी थी कि उसके पत्र उस अधिकारी को दे दिये हैं जो कैप्टन स्कीन की जगह कार्य कर रहा है। गुरसराय के सरदार द्वारा मुझे २२ जून को वह पत्र मिल गया है जिसमें कहा गया है कि मैं जिले का प्रबन्ध स्वयं संभालूं[१०]।

३ - सदाशिव पारोलकर पुन: सक्रिय -

इस बीच रानी के शत्रु भी गति पकड़ चुके थे। इसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात उसके वंश के ही एक सदाशिवनारायण पारोलकर ने उत्तराधिकार का दावा किया था। किन्तु उसका यह दावा अंग्रेज सरकार ने अस्वीकार कर झांसी का राज्य ब्रिटिश सरकार में मिला लिया था। पारोलकर जब विद्रोहियों को अपने पक्ष में न कर सका, तब वह ३०० सैनिकों सहित करैरा[११] की ओर चल पड़ा और उसने १३ जून १८५७ को करैरा के किले पर आक्रमण कर दिया। उसने अंग्रेजी सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों को वहां से खदेड़कर घोषणा कि- की, कि " महाराज सदाशिवनारायण करैरा में झांसी की गद्दी पर बैठ गए हैं।" इससे निकट वर्ती गांव में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। खबर लगते ही रानी के सैनिकों ने उसे करैरा से खदेड़ दिया और सदाशिवनारायण ने सिंधिया की जागीर नरवर में जाकर अपनी जान बचाई। यहां से फिर वह बराबर झांसी का राज्य प्राप्त करने के प्रयत्न करता रहा। इस बार वह रानी की शक्ति के सम्मुख अधिक न टिक सका और उसे झांसी के किले में कैद कर लिया गया[१२]। इस प्रकार रानी ने अपने एक और शत्रु का दमन कर झांसी राज्य की रक्षा की।

४ - नत्थे खां का झांसी पर विफल आक्रमण -(अगस्त १८५७)

किन्तु झांसी पर अभी भी खतरे के बादल मंडरा रहे थे। ओरछा की लड़ई रानी झांसी में छाई अराजकता और अव्यवस्था

---

९ - फा० डी० कन्स० (अनुपूरक) ३० दिसम्बर १८५६ नं० २६६।
१० - वही ।
११ - करैरा - झांसी से ३० मील।
१२ - डी०को०म्बा० पृ०२७, के० भाग ३, पृ० ३७१ की पाद टिप्पणी,-स्मिथ पृ० ७७, सेन० पृ० २८७, झांसी गजे० पृ० २१३, लक्ष्मीबाई(पारसनीस) पृ०१०० -१०१, तहमान्कर० पृ० ८०।

से लाभ उठाना चाहती थी । यहां ध्यान रहे कि फांसी प्रारम्भ में ओरछा राज्य का ही एक भाग थी और मराठों ने इस पर सन् १७४२ ई० में अधिकार कर लिया था ।[१३] इसलिए ओरछा दतिया के बुन्देले राजा मराठों को अपने प्रदेश में घुसपैठिये मानते थे । अत: ओरछा की रानी अब मौका पाकर फांसी को पुन: जीत कर अपने राज्य में मिलाना चाहती थी । फांसी के रायसों के लेखक कवि कल्याणसिंह कुड़रा अपने रायसो में इसी का उल्लेख करते हुए नत्थे खां[१४] के मुंह से लड़ई रानी से कहलाते हैं कि -

> आगै अपनी भूम सब लई पेसुवा टोर ।
> अब प्रभु ने कीनी कृपा लीनो अपनी ओर ।।[१५]

यहां यह भी स्मरण रहे कि ओरछा राज्य से ही फांसी की रानी के विद्रोहियों से मिले रहने की खबरें अंग्रेज अधिकारियों को प्रेषित की जारही थी । लड़ई रानी का यह ख्याल था कि फांसी को बागी बताकर और लक्ष्मीबाई को विद्रोहियों की नेत्री प्रमाणित कर वह अंग्रेज अधिकारियों की सहानुभूति अपने आक्रमण के पक्ष में कर लेगी ।

किन्तु मदनेश अपने रासो में नत्थे खां के फांसी पर आक्रमण करने का एक अन्य कारण भी देते हैं । उनके अनुसार नत्थे खां ने लड़ई रानी को फांसी के विरुद्ध भड़काने में विशेष योग दिया था । नत्थे खां को रानी लक्ष्मीबाई से अपना एक बैर चुकाना था । इस बैर का कारण यह था कि सन् १८५७ के सावन के महिने में पूर्णिमा बुद्धवार, ५ अगस्त १८५७ को फांसी में लक्ष्मीताल पर भुजरियों का मेला लगा हुआ था । इस मेले की चहल पहल देखने के लिए लक्ष्मीबाई भी अपने अंगरक्षकों के साथ मुरलीधर के मंदिर में आई थी । इसी समय ओरछा का दीवान नत्थेखां

---

१३ - सरदेसाई० भाग २ पृ० २३०-३१ ।

१४ - नत्थेखां - किसी एक मखान खां का पुत्र तथा ओरछा राज्य का दीवान था । मदनेश० पृ० ५, १६ ।

१५ - कुड़रा० पृ० १०, मदनेश० पृ० ५ ।

हाथी पर चढ़कर नगर में घुसा चला आया । इससे मेले में हलचल मच गई और रानी ने उसे हाथी सहित मेले से बाहर निकलवा दिया । फांसी से ~~निक~~ निकाले जाने पर नत्थे खां टीकमगढ़ पहुंचा । उसने ओरछे की लड़ई रानी को लक्ष्मीबाई के विरुद्ध भड़काया । वह फांसी को लूटकर अपने अपमान का प्रतिशोध चुकाने को आतुर था[१६]।

नत्थे खां के उकसावे में आकर लड़ई रानी ने दतिया के राजा विजयबहादुर को अपनी ओर करना चाहा । उसने दतिया नरेश के समक्ष फांसी को जीतकर आपस में बांट लेने का भी प्रस्ताव रखा । किन्तु कुड़रा और मदनेश के अनुसार विजयबहादुर ने लड़ई रानी का यह प्रस्ताव यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि वे असहाय विधवा पर आक्रमण नहीं करेंगे[१७]। किन्तु रानी ने १ जनवरी १८५८ में जो खरीता अंग्रेजों को भेजा था उसमें उसने स्पष्ट लिखा था कि दतिया और ओरछे राज्य की फौजों ने मिलकर फांसी पर आक्रमण किया था[१८]। रानी के इस कथन की पुष्टि बुन्देलखण्ड में स्थित असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट मेजर ऐलिस के एर्सकिन को भेजे गए पत्र से होती है । ऐलिस ने इस पत्र से अंग्रेज अधिकारियों को सूचित किया कि दतिया तथा ओरछा में बरुआसागर को लेकर आपस में बांट लेने का समझौता हो चुका था[१९]। मार्टिन के पत्र से भी प्रतीत होता है कि टेहरी और दतिया ने मिलकर फांसी पर आक्रमण किया था[२०]।

---

१६ - मदनेश० पृ० ४-५, परिशिष्ट १ पृ० ११४-२० ।

१७ - कुड़रा० पृ० १०, मदनेश० पृ० ६

१८ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६ ।

१९ - फा० सी० कन्स० १८ दिसम्बर १८५७ नं० ६८६ ।

२० - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १०५-६ । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है नत्थेखां के फांसी पर आक्रमण में विजयबहादुर का हाथ अवश्य रहा होगा । कुड़रा ने जो विजय बहादुर की शालीनता दर्शित की है वह संभवत: इसलिए कि वह दतिया का रहने वाला था और अपने राजा की बुराई करना ... लिए संभव न था ।

अब नत्थेखां ने झांसी पर आक्रमण करने का निश्चय किया। चूंकि टीकमगढ़ झांसी से अपेक्षाकृत दूर था इसलिए उसने आक्रमण की सुविधा के लिए झांसी से लगभग १० मील दूर ओरछा में अपनी छावनी बनाकर सैनिक तैयारियां प्रारम्भ करदीं। पन्ना, पलेरह, चरखारी, नौनेर छतरपुर, कारी पहाड़ी और टोड़ी के बहुत से बुन्देले भी नत्थे खां की सेना में आकर सम्मिलित हो गये।[२१] इस प्रकार शक्ति संग्रह कर उसने आक्रमण के पूर्व रानी के पास यह प्रस्ताव भिजवाया कि यदि वह अपना राज्य उसे दे दे तो वह रानी को उतनी ही पेंशन देगा जितनी उसे ब्रिटिश सरकार से मिलती थी।[२२] किन्तु रानी ने साहस से काम लिया। उसने झांसी राज्य के बड़े बड़े ठाकुरों और बुन्देले जागीरदारों से सहायता की याचना की। इनमें प्रमुख कटीली का परमार कुंवर जवाहरसिंह, नौनेर का दीवान रघुनाथ-सिंह आदि ने ओरछा के विरुद्ध रानी की सहायता करने का निश्चय किया। रानी ने पुरानी तोपों की मरम्मत करवाकर किले की ऊंची - ऊंची बुर्जों पर जमा दीं और गोले बारूद के कारखाने में शीघ्रता से युद्ध सामग्री तैयार की जाने लगी।[२३]

इधर नत्थे खां ने ४० हजार बुन्देलों की एक बड़ी सेना और २८ तोपों के साथ झांसी पर आक्रमण करने के लिए ओरछा से १० अगस्त १८५७ को प्रस्थान किया।[२४] किन्तु यकायक उसने झांसी पर आक्रमण करने की योजना स्थगित करदी और वह मऊरानीपुर की ओर बढ़ गया। नत्थे खां के इस विचार परिवर्तन का कारण सम्भवत: यह था कि झांसी की रक्षा के लिए रानी ने अपने राज्य के अन्य भागों से सैनिक

---

२१ - मदनेश० पृ० ६ ।

२२ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० १०१, स्मिथ० पृ० ७८, वर्मा० पृ०३०३-३०४, + तहमान्कर० पृ० ८१, सेन० पृ० २८८ ।

२३ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १०३, कुड़रा० पृ० ५-७, मदनेश० पृ० ६, सेन० पृ० २९० ।

२४ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० १६५, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६, मदनेश० पृ० १२ ।

दल फांसी बुला लिये थे। मऊरानीपुर, गरौठा और बरुआसागर आदि अरक्षित से हो गए थे और नत्थे खां ने सोचा होगा कि उन्हें सहज ही जीत लेने से उसकी सेना का मनोबल बढ़ जायगा और फांसी पर वह अधिक उत्साह से आक्रमण कर सकेगा।[२५] नत्थे खां ने रविवार, सावन सुदी पूर्नें १९१४ (बुधवार ५, अगस्त १८५७) को मऊ पर अधिकार कर लिया। मऊ की ३ दिन तक लूट-पाट करने के बाद उसने गरौठा की ओर प्रस्थान किया। गरौठा को लेकर फांसी की ओर बढ़ते हुए, मार्ग में स्थित रानीपुर और बरुआसागर पर आक्रमण किया। बरुआसागर में करारी के बहादुरसिंह ने नत्थे खां का सामना किया, किन्तु वह वीरगति को प्राप्त हुआ।[२६] इस प्रकार नत्थे खां की सेना धसान और बेतवा नदी के बीच के प्रदेश को रौंधती हुई आगे बढ़ी और फांसी से ७ मील दूर ओरछा मार्ग पर कुम्हरा पर पड़ाव डाला। यहां से उसने रानी के पास ओरछा की अधीनता स्वीकार करने के लिए दूत भेजे। किन्तु नत्थे खां के दूत अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हुए और जब ये दूत लौट रहे थे तब ही सम्भवत: इन दूतों के हाथ रानी ने सागर, जबलपुर के कमिश्नर के दो पत्र भी नत्थे खां के पास भेजे।[२७] इन दोनों पत्रों में कमिश्नर ने रानी से फांसी का शासन संभाल लेने का आग्रह किया था, किन्तु नत्थे खां ने जैसा कि रानी लिखती है इन पत्रों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया,[२८] और ३ सितम्बर १८५७(भादों सुदी-

---

२५ - मदनेश० ओरछे से फांसी की ओर न बढ़ने के और एकायक नत्थे खां के मऊ की ओर बढ़ने का कारण यह बताते हैं कि नत्थे खां की सेना के ओरछे से निकलते ही छींक हुई और इसे अपशकुन समझकर फांसी की ओर न बढ़कर मऊ की ओर बढ़ा। पृ० १० .

२६ - मदनेश० पृ० १० व १२, डब्ल्यु मेलसन० पृ० ८४।

२७ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ३० दिसम्बर १८५८ (अनुपूरक) नं० २६६।

२८ - वही ।

१४, १६१४) को फांसी पर आक्रमण कर दिया।[२६] दतिया के राजा ने भी इस अवसर पर फांसी के कुछ प्रदेश दाब लिये।[३०] इधर नत्थे खां ने फांसी पर आक्रमण करने के साथ ही अंग्रेज अधिकारी हैमिल्टन को इन्दौर में एक पत्र भेजा जिसमें उसने अंग्रेजों को रानी की ओर से विमुख करने के लिए लिखा कि " रानी शत्रुओं के गुट में शामिल हो गई है और मैं अंग्रेजी सरकार के लिए लड़ रहा हूं।"[३१]

---

२६ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ~~[illegible]~~ ~~[illegible]~~ ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६, १८ दिसम्बर १८५७ नं० ६८६, डब्ल्यू० मैलसन० पृ० ८४, फांसी गजे० पृ०२१८, मदनेश० पृ० २१ ।

किन्तु डा० सेन अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ " १८५७ " में लिखते हैं कि " ओरछा की सेना ने फांसी पर कब आक्रमण किया इसे हम ठीक ठीक रूप में नहीं जानते।" मजूमदार ने भी इस युद्ध का केवल उल्लेख ही किया है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि संभवत: डा० सेन और मजूमदार को वैदेशिक परामर्श विभाग के उपरोक्त पत्र तब उपलब्ध नहीं हुए थे। इन गुप्त पत्रों से नत्थे खां के फांसी पर आक्रमण का लगभग सही पता चल जाता है और फिर डा० भगवानदास माहौर द्वारा संपादित अभी हाल ही में प्रकाशित मदनेश कृत " लक्ष्मीबाई रासो " से तो नत्थे खां के फांसी पर आक्रमण और उसकी पराजय की विशद्, सही और प्रामाणिक सूचना उपलब्ध है। डा० सेन और मजूमदार ने फांसी केविद्रोह के अपने विवरण में फांसी की स्थानीय सूचना सामग्री की प्राय: पूर्ण उपेक्षा कर अपने विवरणों को मुख्य रूप से अंग्रेजी सरकार के एकांगी और पक्षपातपूर्ण विवरणों पर आधारित किया है।

३० - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६ ।

३१ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १०५ ।

रानी ने नत्थे खां के झांसी राज्य पर आक्रमण करने की खबरें पाकर झांसी की रक्षा की तेजी से तैयारियां शुरु करदी थीं। उसने अपनी सम्पत्ति बेचकर तथा साहूकारों से ब्याज पर रुपया लेकर एक सुसज्जित सेना तैयार की। यद्यपि नत्थे खां की तोपों, बन्दूकचियों और गोलों ने झांसी नगर को काफी नुकसान पहुंचाया और हजारों नगरवासी मारे गए,[32] किन्तु रानी के तोपचियों-दोस्तखां, गुलामगौस खां, गनपतगिरि रहीम और खुदाबख्श आदि ने जमकर मोर्चा लिया तथा नत्थे खां की तोपों के मुंह फिरा दिये। रानी के रघुनाथसिंह, कटीली के कुंवर जवाहरसिंह, झंझुंवर, मधुकर दीवान, काशीनाथ भैया आदि सेना नायकों ने नत्थे खां के सैनिकों को छठी का दूध याद दिला दिया।[33] नत्थे खां २ माह तक झांसी का घेरा डाले पड़ा रहा पर वह झांसी के परकोटे को कहीं से भी भेदकर भीतर न पैठ सका[34]।

इस बीच रानी ने इन्दौर कमिश्नर हैमिल्टन को नत्थे खां के आक्रमण की सूचना देते हुए और सहायता की याचना करते हुए २० सितम्बर और १६ अक्टूबर को दो पत्र भी भेजे।[35] किन्तु उसे कोई भी अंग्रेजी सहायता प्राप्त नहीं हुई, जिसका सम्भवत: कारण यह था अंग्रेज अधिकारियों के मन में रानी विरोधी खबरें मिलने से उसके इरादों के प्रति

---

३२ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११४-११५, + ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६ ।

३३ - मदनेश० पृ० १५-१६ ।

३४ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६ ।

३५ - वही ।

शंका उत्पन्न हो गई थी।[३६] अतएव उन्होंने नत्थे खां के विरुद्ध रानी की सहायता करके व्यर्थ में ओरछा राज्य से बैर लेना उचित नहीं समझा होगा, क्योंकि तब उन्हें मध्यभारत में विद्रोहियों से निपटने के लिए उसकी सहायता की आवश्यकता थी। किसी और से सहायता न मिलने पर भी रानी और उसके सैनिकों में किसी प्रकार की पस्त हिम्मती नहीं आई। झांसी की जनता के लिए तो यह जैसे उनका अपना ही युद्ध हो उठा था। रानी लक्ष्मीबाई, उसके सेना नायकों और झांसी निवासियों के अदम्य साहस के सामने नत्थे खां अधिक न टिक सका। उसकी सेना के पैर उखड़ गये और जब रानी के सैनिकों ने अपने वीर सेना नायिकों रघुनाथसिंह, जवाहरसिंह, काशीनाथ आदि के नेतृत्व में परकोटे से निकलकर शत्रु सेना पर हमला बोल दिया, तब तो फिर नत्थे खां और उसकी सेना भाग ही खड़ी हुई और उसने झांसी से लगभग ७ मील दूर ओरछा के पास कुम्हरा नामक गांव में ही पहुंचकर दम ली।[३७] ओरछे की लड़ई रानी इस पराजय के कारण उससे बहुत नाराज थी, इसलिए वह लौटकर टेहरी नहीं गया।[३८] इस बीच उसे कर्नल स्लीमैन के

---

३६ - वैसे रानी को कमिश्नर हैमिल्टन का १६ अक्टूबर का एक पत्र मिला जिसमें उसने ललितपुर में अंग्रेजी सेनाओं के इकट्ठे होने की बात लिखी थी। पर साथ ही यह भी जोड़ दिया था कि वह स्वयं झांसी आकर छोटे बड़ों के आचरण की जांच करेगा। इस कथन से स्पष्ट है कि उसकी जांच से रानी भी अछूती न बचती। इससे स्पष्ट विदित है कि उसे रानी पर विद्रोहियों के साथ मिले होने का शक उत्पन्न हो चला था। फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६ ।

३७ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० २६६, मदनेश० पृ० ११३, कुड़रा० पृ० २३ ।

३८ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ११५ ।

सेनापतित्व में मालवा की अंग्रेजी सेना के मऊ से इस ओर बढ़ने के समाचार मिल चुके थे। अंग्रेजी सरकार का रुख अभी पूर्णतया स्पष्ट नहीं था। अतः उसने फांसी से बच निकलने में ही कुशल समझी[३९]। फांसी निवासी विजयोल्लास से झूम उठे और तब किसी की कही हुई यह उक्ति आज भी फांसी में बड़े गर्व के साथ दुहराई जाती है -

' नत्थे खां की मूंछे जर गई
बाई साब के छर्रे से। '

५ - रानी का अल्पकालीन लोकप्रिय शासन -

रानी लक्ष्मीबाई एक ओर तो सदाशिवनारायण और नत्थेखां जैसे शत्रुओं के दमन में लगी हुई थी, किन्तु दूसरी ओर वह फांसी की प्रशासिका के अपने उत्तरदायित्व की अवहेलना न कर फांसी और फांसी के अधीन इलाकों पर अपना अधिकार दृढ़ करने और राज्य को शक्तिशाली बनाने के प्रयत्न भी कर रही थी। उसने अपनी सरकार स्थापित की तथा लक्ष्मणराव को मुख्य मंत्री, मोरोपन्त ताम्बे प्रधान खंजाची और नाना भोपटकर को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया[४०]। कुंवर जवाहरसिंह कटीली वाले के संरक्षण में सैनिक तैयारियों का कार्य चल रहा था। उसकी सहायता के लिए ~~दूल्हा की~~दूलाजू सैरनावाले, गनेशजू, नौनेर के दीवान रघुनाथ सिंह, सकेती के जालिमसिंह, मुजबलसिंह, मंगलसिंह और उद्योतसिंह के पुत्र को नियुक्त किया गया[४१]। रानी के नेतृत्व में इन मंत्रियों का " कार्य और

---

३९ -फा०सी०कन्स० २८ दिसम्बर १८५७ नं० १८७।

इसी समाचार के अनुसार इस युद्ध में नत्थेखां का एक पुत्र और भान्जा मारा गया। रानी की ओर से उसका एक प्रसिद्ध तोपची खुदाबख्श खेत रहा। मदनेश० परिशिष्ट २ पृ० १२५, परिशिष्ट ३ पृ१२५-२६ देखें।

४० - तहमान्कर० पृ० ७४ ।

४१ - फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० १४६-१४७ ।

अधिक कार्य " ही मुख्य सिद्धान्त बन गया और रानी भी ~~मे~~ उत्साह के साथ फांसी का शासन प्रबन्ध करने में जुट गईं ।

६ - रानी का व्यस्त दैनिक जीवन -

रानी लक्ष्मीबाई नित्य प्रात:काल ५ बजे उठकर स्नानादि से निवृत होकर पूजा करती थी । उस समय सरकारी गवैये गाते, पौराणिक लोग पुराण का पाठ करते तथा सरदारों और आश्रितों के मुजरे भी होते थे । रानी चारों ओर का ध्यान रखती थी । यदि इस समय १५० मुजरों में से कोई एक ही नहीं हुआ तो तुरन्त उसके विषय में पूंछ बैठती थी । पूजादि के पश्चात् भोजन करती और कुछ समय आराम. करने के पश्चात् नजराने में आयी हुई वस्तुयें उसके सामने रखीं जाती थीं । जो वस्तु उसे पसन्द आती उसे अपने पास रखकर शेष को अपने आश्रितों में बांट देती थी ।[42] ३ बजे के लगभग दरबार लगता था । इस समय रानी कभी पुरुष और कभी स्त्री वेष में आती थी । दरबार में वह थोड़ी सी ओट लेकर एक कक्षा में बैठती थी । इस कक्षा के दरवाजे पर दो छड़ीबरदार सोने की छड़ियां लिये खड़े रहते थे ।[43] ~~लक्ष्मणराव दीवान देशस्थ ब्राह्मण था । वह पढ़ा लिखा न था किन्तु उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी । इस दरबार में दीवानी फौजदारी~~ पास ही लक्ष्मणराव दीवान और दोनो ओर ७ - ८ कारकून बैठे रहते थे । लक्ष्मणराव दीवान देशस्थ ब्राह्मण था । वह पढ़ा लिखा न था किन्तु उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी । इस ~~बर~~ दरबार में दीवानी फौजदारी आदि सभी प्रकार के मुकद्मों का फैसला सुनाया जाता था । रानी न्याय करने में बड़ी तेज और कठोर थी और कभी कभी तो खुद अपने हाथों में छड़ी लेकर अपराधियों को दण्ड दिया करती थीं ।[44]

---

४२ - गोडसे० पृ० ६५-६६ ।

४३ - गोडसे० पृ० ६५-६६, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १०६ ।

४४ - गोडसे० पृ० ६६-६७, वर्मा० पृ० २७६ ।

७ - रानी की धार्मिक उदारता और प्रजावत्सलता

रानी की धर्म पर बड़ी श्रद्धा थी । वह हर शुक्रवार और मंगलवार को अपने दत्तक पुत्र के साथ महालक्ष्मी के मन्दिर जाती थी । जब वह किले के बाहर जाती तो शहनाई बजनी प्रारम्भ हो जाती थी और उनके लौट आने तक यह बराबर बजती रहती थी । रानी राह में गरीब ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देकर प्रसन्न करने का प्रयत्न करती । एक बार जब रानी महालक्ष्मी के दर्शन करके दक्षिण - दरवाजे से लौट रही थी, उस समय उन्होंने हजारों भिखारियों को खड़े देखा । दीवान लक्ष्मणराव से पूछने पर पता चला कि कड़ाके की सर्दी के कारण इन सबका बुरा हाल था । रानी का नारी हृदय पसीज उठा और उसने भिखारियों को तुरन्त ही एक रुई की कन-टोपी, रूई की बन्डी और काली या सफेद कमली देने की आज्ञा दी[४५] ।

रानी को अपनी प्रजा की सुख और सुरक्षा की बड़ी चिन्ता रहती थी, इसीलिए राज कार्य में मेहनत के कार्यों से वह कभी भी पीछे नहीं हटती थी । झांसी के पास ही बरुआसागर में - डाकुओं ने अपने नेता सागरसिंह के नेतृत्व में बड़ा उत्पात मचा रखा था । प्रजा इससे अत्याधिक आंतकित थी । बरुआसागर का थानेदार उनसे स्वयं भयभीत था । खबर लगते ही रानी ने खुदाबख्श[४६] के नेतृत्व में बरुआसागर में एक सेना भेजी । किन्तु खुदाबख्श भी सागरसिंह को कैद करने में असफल रहा । अब रानी ने स्वयं सागरसिंह से ~~मिलने-के~~ निपटने की ठानी और बरुआसागर की ओर चलदी । उसने १५ दिन वहां रहकर डाकुओं का पता लगाया, उनकी गतिविधियों की टोह ली और अवसर पाते ही उन पर चीते सी जा टूटी । डाकू संभल न सके । सागरसिंह ने अपनी असहाय

---

४५ - गोड्से० पृ० ६७, ७१, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १११, वर्मा० पृ० ३२० ।

४६ - यह खुदाबख्श नत्थेखां के विरुद्ध हुए युद्ध में मारा गया था ।

स्थिति भांप कर आत्म समर्पण करने में ही कुशल समझी और रानी की सेवा में अपना जीवन होम देने की शपथ खाई । रानी वीर थी और वीरता का सम्मान करना उसे आता था । फिर उसे सागरसिंह जैसे जांबाज सरदारों की आवश्यकता भी थी इसलिए उसने सागरसिंह को ग्रामादान देकर और कुंवर की उपाधि प्रदान कर उसको सदैव के लिए अपना भक्त बना लिया । बाद में अंग्रेजों से लड़ते हुए वह खण्डेराव गेट पर मारा गया था[४७] ।

८ - साहित्यिक रुचि और पुस्तकालय -

रानी के शासनकाल में साहित्य को भी प्रोत्साहन मिला । वह स्वयं पढ़ी लिखी थी इसलिए उसने अपने पूर्वजों की परम्पराओं को ज्यों का त्यों बनाये रखा । रानी के महल के सामने एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था । झांसी के पूर्व के शासकों ने इस पुस्तकालय की बड़े उत्साह से देखभाल की थी । इसमें चारों वेद, उनके भाष्य, सब शाखाओं के सूत्र - भाष्य सहित और परिशिष्टों तक के भाष्य मौजूद थे । इसके साथ ही साथ स्मृति, पुराण, ज्योतिष शास्त्र, आयुर्वेद, और ऐसे ही पृथ्वी पर रचे जाने वाले ग्रन्थों का वहां संग्रह था । यदि झांसी से ४-५ कोस तक भी किसी नये ग्रन्थ की खबर मिलती थी तो तुरन्त एक सुलेखक भेजकर उसकी नकल मंगाली जाती थी । आवश्यकता पड़ने पर काशी तक के पंडित झांसी आया करते थे । रानी ने भी इस विशाल पुस्तकालय का उचित प्रबन्ध किया किन्तु दुर्भाग्यवश आज इस पुस्तकालय का कोई भी चिन्ह शेष नहीं है । अंग्रेजी - सेनायें जब झांसी नगर में घुसीं तब उन्होंने महल की लूट के साथ साथ इस पुस्तकालय को भी नष्ट कर दिया था[४८] ।

---

४७ - गोडसे० पृ० ७०, वर्मा० पृ० २७६ - ८५ ।

४८ - गोडसे० पृ० १०२, तहमान्कर० पृ० ७८-७६, वर्मा० पृ० ३२१ ।

९ - हल्दी कूं कूं का त्योहार -

फांसी का राज्य संभालने से लेकर सरह्यूरोज़ के फांसी पर आक्रमण करने के बीच के समय में रानी को अपनी प्रजा के और अधिक निकट आने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रजा भी उसके पहले से अधिक सम्पर्क में आई। इस बीच वह समय समय पर पड़ने वाले त्योहारों को भी सार्वजनिक सा रूप देकर अपनी प्रजा में और अधिक घुलने मिलने लगी। उदाहरण के लिए चैत के महीने में जब अंग्रेजों से युद्ध होना एक प्रकार से अनिवार्य सा प्रतीत होने लगा था, तभी हल्दी कूं कूं का त्योहार पड़ा। रानी ने नगर के ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, मराठा आदि सभी जातियों की स्त्रियों को आमंत्रित किया और उनका हल्द कूं कूं सुगंधित पुष्प, चन्दन लेप, मिठाइयों, चने, गुलाब, इत्र, पान और सुपारी आदि से यथोचित आदर सत्कार किया गया। दिन के २ बजे से लेकर रात के ९ बजे तक सभी जातियों की स्त्रियां आती रहीं। स्त्रियों को हल्द कूं कूं बांटने के लिए लगभग १०० स्त्रियां खड़ी थीं। ढेरों फूल और मनों मिठाइयां बांटी गई[४६]।

१० - राजसी गौरव और कलात्मक अभिरुचियां -

रानी ने राजसी ठाठ - बाट देखने की शौकीन प्रजा को अपने राजसी वैभव से भी प्रभावित करने का प्रयत्न किये। गौड्से लिखता है कि " लक्ष्मीबाई कभी तो मियाने पर और कभी घोड़े पर सवार होकर महालक्ष्मी के दर्शनों को जाती थी। किनखाब में जरी के काम के बने हुए पर्दे दोनों तरफ पड़े रहते थे, जिससे

---

४६ - महाराष्ट्र में सुहागिन स्त्रियां हल्द कूं कूं का त्योहार मनाती हैं। इस उत्सव में हल्द कूं कूं से टीका करके उन्हें चने और मिठाइयां और फूल दिये जाते हैं।

मैक्से गौड्से० पृ० ७९-८०, स्मिथ० पृ० ८०, तहमान्कर० पृ०८८-९०, वर्मा० पृ० ३५५ ।

मियाने की शोभा चौगुनी हो जाती थी । हुजूर स्त्री वेश में जाती थीं । उस समय सफेद साड़ी पर मोतियों के आभूषण खूब फबते थे ।...... जब मियाने पर चलती थीं तो उसके साथ ही साथ दो चार सुन्दर दासियां दौड़ती हुई चलती थीं ।[५०]

रानी अपने आश्रितों (ब्राह्मणों) का बड़ा ध्यान रखती थीं । बुढ़ियों का वे बड़ा आदर करती थीं । बड़े बड़े शास्त्री, विद्वान, याज्ञिक, गवैये आदि उनके दरबार में रहते थे । बाहर से आने वाले गवैयों का भी वे उचित आदर सत्कार करतीं थीं । चित्रकारों और चित्रकला को भी उनसे प्रोत्साहन मिला । उनके काल का प्रमुख चित्रकार सुखलाल जाति का काछी था । उसकी चित्रकला को भी वे पुरुष्कृत करती रहती थीं ।[५१] इस प्रकार एक ओर तो वह शत्रुओं का सामना करने में जोर शोर से सैनिक तैयारियों में लगी हुई थीं, दूसरी ओर उसे अपनी प्रजा के सुख और सुरक्षा की भी चिन्ता थी ।

११ - रानी की अश्व परीक्षा -

घुड़ सवारी में कुशल होने के साथ ही साथ रानी घोड़ों की पहचान में भी अद्वितीय थीं । उस समय घोड़ों को पहचानने वालों में उत्तरी भारत में जो व्यक्ति विशेष कुशल समझे जाते थे वे थे, नाना साहब पेशवा, बाबा साहब आप्टे ग्वालियर वाले और रानी लक्ष्मीबाई । एक दिन एक सौदागर रानी के पास दो घोड़े लाया, घोड़े देखने में सुन्दर और मजबूत थे । रानी ने दोनों पर सवारी की और एक कीमत एक हजार रुपया और दूसरे की कीमत पचास रुपये लगाई । उसने कहा कि दूसरा घोड़ा देखने में तो मजबूत है किन्तु उसकी छाती फूटी हुई है । सौदागर ने रानी की कुशलता की प्रशंसा की और स्वीकार किया कि दूसरे घोड़े को वह उत्तम से उत्तम मसाले

---

५० - गोडसे० पृ० ६७ ।

५१ - गोडसे० पृ० ६८, ६६, वर्मा० पृ० २०८ ।

देकर लाया था[५२]।

संक्षेप में रानी लक्ष्मीबाई ने लगभग एक साल के ही अल्पकाल में अपनी योग्यता, गुण ग्राहकता और प्रजा वत्सलता से फांसी निवासियों के हृदय जीत लिये और वे इतनी जन-प्रिय हो गईं कि ~~फिरोज़~~ ह्यूरोज़ के आक्रमण में फांसी के स्त्री पुरुषों ने रानी के लिए अपनी जान की बाज़ी लगाकर उसके स्वातंत्र्य संग्राम को सही अर्थों में जन संग्राम का रूप प्रदान किया।

---

५२ - गोल्से० पृ० ६६-७० ।

अध्याय - १२

ह्यूरोज़ का आक्रमण और रानी का स्वातंत्र्य युद्ध

१ - ह्यूरोज का भारत आगमन और सैनिक तैयारी -

ह्यूरोज का जन्म ६ अप्रैल सन् १८०१ ई० में बर्लिन में हुआ था। उसका पिता जार्ज हेनरी रोज प्रशा दरबार में एक मंत्री के पद पर था। ह्यूरोज का सैनिक जीवन १८२० में एक छोटे अफसर के रूप में प्रारम्भ हुआ और वह उन्नति करते हुए सन् १८३९ में लेफ्टीनेन्ट कर्नल के पद पर नियुक्त हुआ। तुर्की-मिस्री युद्ध में उसने सीरिया में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की और बाद में वहीं कांउन्सल जनरल के पद पर नियुक्त किया गया। इसके बाद ही सन् १८५१ में वह तुर्की के ब्रिटिश राजदूतावास में सचिव नियुक्त हुआ। क्रीमिया युद्ध (१८५४-५६) में उसे मेजर जनरल और के० सी० बी० के पदक से विभूषित किया गया। ब्रिटेन में जब भारत के १८५७ के विद्रोह के समाचार पहुंचे, तब उसे सितम्बर १८५७ में बम्बई प्रेसीडेन्सी की पूना बटालियन का सेनापति नियुक्त कर विद्रोह दबाने के लिए भारत भेज दिया गया। इस प्रकार ह्यूरोज मध्यभारत का विद्रोह दबाने के लिए पूना आ पहुंचा। उसने १७ दिसम्बर १८५७ को इन्दौर आकर मध्य भारत की सेना की कमान संभाली। इससे एक दिन पूर्व अर्थात् १६ दिसम्बर को सर राबर्ट हेमिल्टन ने इन्दौर आकर मध्यभारत के एजेन्ट का पद ग्रहण किया[१]। इन्दौर आते ही ह्यूरोज ने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया। इस सेना का पहला भाग ~~भी~~ ब्रिगेडियर स्टुअर्ट (STUART) के नेतृत्व में महू (इन्दौर) में और दूसरा भाग ब्रिगेडियर स्टीवार्ट (STEWART) की अध्यक्षता में सीहोर में रखा गया। ह्यूरोज को अपने मध्यभारत के अभियान को कुछ दिनों तक स्थगित करना पड़ा, क्योंकि प्रथम ब्रिगेड के सैनिक -

---

१ - स्मिथ० पृ० २४, २६, २७, सेन० पृ० २६१, होम्स० पृ० ५०५, एडवर्ड्स० पृ० १५६ ।

सर ह्यू रोज़ के अभियान का मार्ग
स्मिथ की 'रिबेलियस रानी' से साभार उद्धृत

झाँसी के मराठा राज्य का [अधिकतम] विस्तार
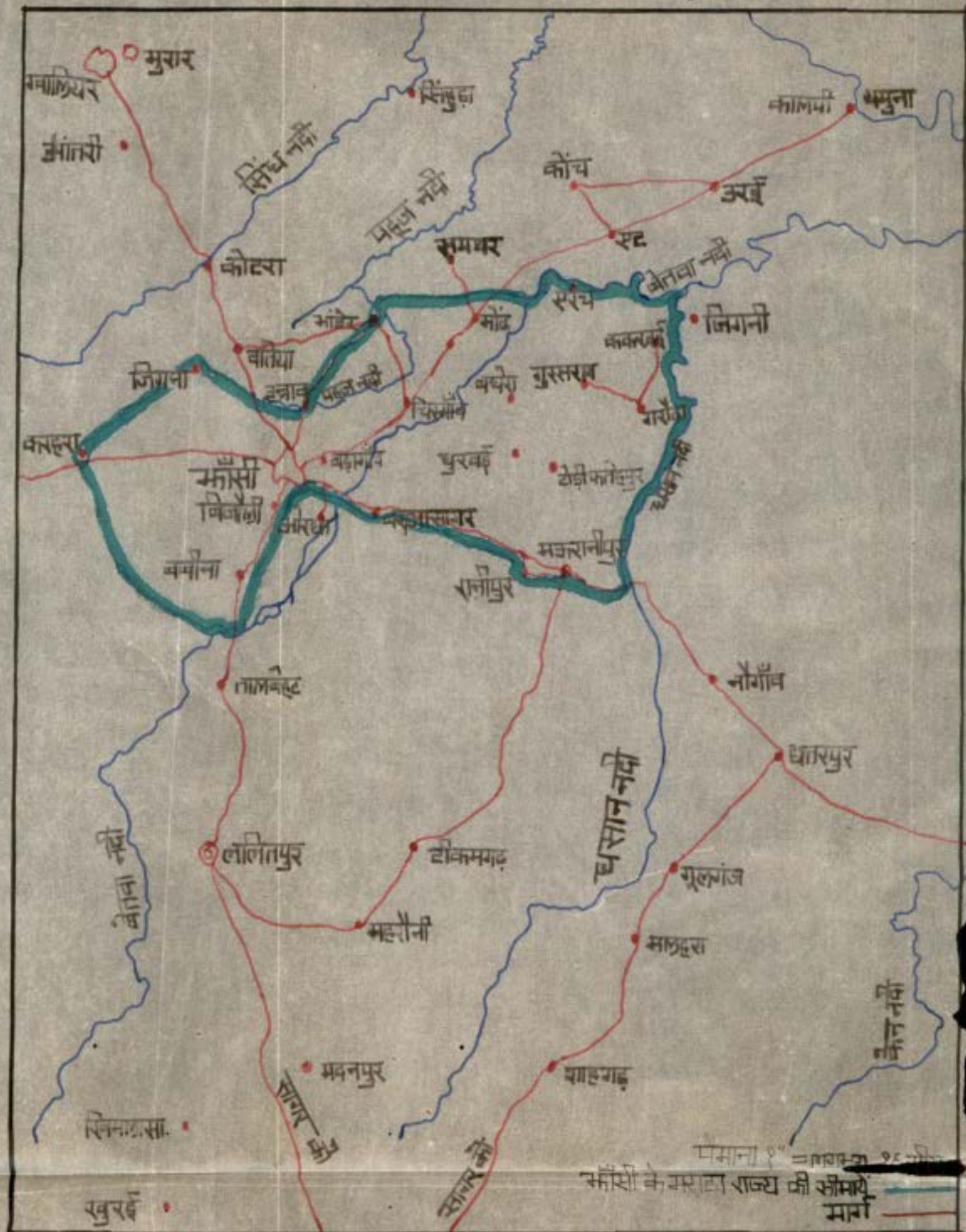
अभी हाल ही में मालवा के अभियान से लौटे थे और उन्हें थोड़ा विश्राम देना आवश्यक था। इसीलिए ह्यूरोज़ ने महू में कुछ रुककर अभियान के पहले अपनी तैयारियां पूरी कर लेना ही उचित समझा।[२]

२ - रोज़ की प्रगति, महू से सागर तक -

ह्यूरोज और हैमिल्टन सीहोर में द्वितीय ब्रिगेड से मिलने के लिए ६ जनवरी सन् १८५८ को महू से बढ़े। प्रारम्भ में सागर पर आक्रमण करने का भार रोज़ ने मद्रास सेना को सौंपा था किन्तु मद्रास सेना का सेनापति ब्रिगेडियर जनरल व्हिटलॉक (WHITLOCK) सागर पर आक्रमण करने की तैयारियां पूरी नहीं कर पाया था। फिर दो माह तक उसके सागर पहुंचने की कोई सम्भावना भी नहीं थी। यहां ह्यूरोज शीघ्र से शीघ्र सागर पहुंचकर अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ करना चाहता था। फिर उसे विद्रोहियों के प्रमुख अड्डे फांसी पर भी आक्रमण करना था। अत: वह इस बहुमूल्य समय को व्यर्थ गवांना नहीं चाहता था, क्योंकि इससे विद्रोहियों को और अधिक संगठित होने का अवसर मिल रहा था। इसके साथ ही उसे यह भी भय था कि कहीं सागर के बचे खुचे अंग्रेज भक्त सिपाही भी विद्रोह न कर बैठे। अब उसने विद्रोहियों को परास्त कर सागर को लेने का भार अपने ऊपर लिया। उसने १६ जनवरी १८५८ को सीहोर से भोपाल और फिर भोपाल से सागर की ओर प्रस्थान किया। भोपाल की बेगम ने अंग्रेजों की सहायता के लिए ६०० सिपाही भी दिये।[३]

अंग्रेजी सेना तीव्र गति से बढ़ती चली हुई २४ जनवरी १८५८ को राहतगढ़[४] आ पहुंची। राहतगढ़ सागर और बुन्देलखण्ड की

---

२ - होम्स० पृ० ५०५, एडवर्ड्स० पृ० १५६, स्मिथ० पृ० ८२ ।

३ - फारेस्ट भाग ४ पृ० ८७-८८, होम्स० पृ० ५०५, एडवर्ड्स० पृ० १५६, स्मिथ० पृ० ६७।

४ - राहतगढ़ सागर से २५ मील दक्षिण पश्चिम है ।

पश्चिमी सीमाओं की कुंजी था । अत: पहले राहतगढ़ को लेना ही निश्चित हुआ । राहतगढ़ का दुर्ग नवाब मुहम्मदखां के अधिकार में था । नवाब मुहम्मद खां भोपाल के रिजेन्ट का सम्बन्धी था और अब विद्रोहियों का प्रमुख नेता बन बैठा था । जिस समय (२८ जनवरी) राहतगढ़ और अंग्रेजी सेना के बीच जमकर युद्ध चल रहा था, उस समय राहतगढ़ के पठानों की सहायता करने के लिए बानपुर[५] के राजा मर्दनसिंह ने १५००-२००० सैनिकों सहित ह्यूरोज की सेना पर पीछे से आकर हमला बोल दिया । इससे अंग्रेजी सेना की शक्ति बट गई । मर्दनसिंह बड़ी वीरता से लड़ा किन्तु अंग्रेजी सेना के सम्मुख अधिक देर तक न टिक सका । इधर किले में घिरे पठानों ~~केजके~~ का भी साहस टूट चुका था और अब उन्हें किला खाली कर भाग जाना पड़ा । अमापानी का नवाब अंग्रेजों के हाथ लगा । ह्यूरोज की आज्ञा से उसे मौत के घाट उतार दिया गया[६] । इस प्रकार राहतगढ़ की प्रथम विजय से अंग्रेजी सेना का मनोबल बन गया । अब वे मध्यभारत के अन्य प्रान्तों पर अधिकार करने के लिए दूने उत्साह से आगे बढ़े ।

ह्यूरोज की सैनिकों ने राहतगढ़ पर अभी अधिकार किया ही था कि इतने में ३० जनवरी १८५८ को उसे समाचार मिला कि विद्रोही सैनिक बानपुर के राजा के नेतृत्व में बीना नदी के किनारे बरौदिया[७] नामक एक गांव में एकत्रित हो रहे थे । अंग्रेजी सेना अब बरौदिया की ओर बढ़ी । विद्रोहियों ने उसका सामना तो किया किन्तु वे शीघ्र ही भाग खड़े हुए । बानपुर का राजा घायल हुआ । इसी मुठभेड़ में क्रीमियन युद्ध में ख्याति प्राप्त कैप्टन नेविली, जो एक दिन पूर्व ही रोज की सेना में आकर सम्मिलित

---

५ - बानपुर - फांसी से ८६ मील ।

६ - लो० - पृ० ७३-८३, फा० सी० कन्स० २६ मार्च १८५८ नं० ३०, स्मिथ० पृ० ९७-१००, होम्स० पृ० ५०५, फौरेस्ट भाग ४ पृ० ८६-९१, एब्वर्ड्स० पृ० १५६-६० ।

७ - बरौदिया - राहतगढ़ से १५ मील ।

हुआ था, मारा गया[८]।

राहतगढ़ और बरौदिया पर अधिकार करने से सागर का दक्षिणी भाग अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। अब रोज़ शीघ्र ही बढ़कर सागर को घेरकर उन अंग्रेजों को मुक्त कराना चाहता था जो ८ महीनों से किले में बन्द थे[९]। ह्यूरोज के सागर की ओर तेजी से बढ़ने और राहतगढ़ तथा बरौदिया के पतन के समाचार वहां पहले ही पहुंच चुके थे। इन समाचारों से विद्रोही हतोत्साह हो गये और सागर के किले का घेरा उठाकर मालथौन, धामौनी की ओर फूट निकले। अंग्रेजी सेना ३ फरवरी १८५८ को सागर पहुंची। उसने सागर के किले में घिरे ६३ अंग्रेज स्त्रियों और १३० बच्चों को मुक्त कर सागर पर अधिकार कर लिया[१०]।

३ - सागर से मदनपुर -

इस प्रकार सागर तक के समस्त प्रदेशों पर अधिकार कर ह्यूरोज़ गढ़ाकोटा[११] की ओर बढ़ा। मार्ग में नरौली[१२], सनौदा[१३] आदि पर अधिकार कर उसने १२ फरवरी को गढ़ाकोटा पर आक्रमण कर दिया। गढ़ाकोटा का किला बंगाल की ५१ वी और ५२ वी सेना के बागी सिपाहियों के अधिकार में था। इस समय यह हारे हुए विद्रोहियों का प्रमुख अड्डा बना हुआ था[१४]। शौपोर[१५] में कुछ देर रुककर विश्राम करने के पश्चात अंग्रेजी सेना

---

८ - लौ० पृ० १८४, होम्स० पृ० ५०५, एडवर्ड्स० पृ० १६१, स्मिथ० पृ०१००-१०१।

९ - लौ० पृ० १८५, स्मिथ० पृ० १०१, एडवर्ड्स० पृ० १६१।

१० - लौ० पृ० १८६-१८७, फॉरेस्ट भाग ४ पृ० ६५, होम्स० पृ० ५०५-५०६ एडवर्ड्स० पृ० १६१, स्मिथ० पृ० १०१।

११ - गढ़ाकोटा - सागर से २५ मील पूर्व में।

१२ - नरौली - सागर से १४ मील।

१३ - सनौदा - सागर से १० मील।

१४ - लौ० पृ० १९०।

१५ - शौपोर - गढ़ाकोटा से ४-५ मील।

ने गढ़ाकोटा के किले का घेरा डाला,। यहां शाहगढ़ के सैनिकों तथा विद्रोही बुन्देलों ने अंग्रेजी सेना का जमकर सामना किया, किन्तु वे अंग्रेजी तोपों के सम्मुख अधिक देर तक ठहर न सके। जब उन्होंने अंग्रेजों को किले के एकदम निकट आते देखा तब उन्हें सहसा अपनी निर्बल स्थिति का आभास हुआ और वे मौका पाकर १२ फरवरी की रात्रि को किला छोड़कर शाहगढ़ की ओर भाग गये। हैदराबाद घुड़सवार सेना ने कैप्टन हेयर के नेतृत्व में लगभग २५ मील तक उनका पीछा किया। अनेक विद्रोही हैदराबाद सेना द्वारा पकड़ कर मौत के घाट उतार दिये गये[१६]।

गढ़ाकोटा पर अधिकार कर अंग्रेजी सेना पुन: सागर लौट आयी। इस समय तक उसकी किला तोड़ तोपें भी तैयार हो चुकी थीं, किन्तु रसद आदि की कमी के कारण उसे २७ फरवरी तक सागर में ही रुकना पड़ा। ह्यूरोज की सेना के आक्रमण के बाद ही ब्रिगेडियर ह्विटलाक के नेतृत्व में मद्रास सेना का विजित प्रदेशों की ओर बढ़ने का कार्यक्रम था। इसीलिए जब तक रोज़ को ह्विटलाक के जबलपुर से सागर की ओर बढ़ने के समाचार नहीं मिले तब तक उसे फिलहाल अपना झांसी की ओर कूच करने की कार्यवाही स्थगित करनी पड़ी। ह्विटलाक अपनी सेना सहित २६ फरवरी को जबलपुर से सागर की ओर बढ़ा। इसी दिन ह्यूरोज़ ने हैदराबाद सेना को मेज़र ओर की कमान में झांसी की ओर रवाना किया और २७ फरवरी को वह स्वयं शेष सेना सहित सागर से झांसी की ओर चल पड़ा। इधर सागर में ह्यूरोज़ के कुछ समय तक रुक जाने से विद्रोहियों का साहस पुन: बढ़ गया। मर्दनसिंह के नेतृत्व में अब दस हजार बुन्देले सैनिकों ने नारहट[१७] के दर्रे में अंग्रेजों का सामना करने की ठानी। सागर से झांसी के मार्ग पर मदनपुर घाटी की रक्षा शाहगढ़ का राजा बख्तबली कर रहा था[१८]।

---

१६ - फा० सी० कन्स० २६ मार्च १८५८ नं० ३१, ३६, लौ० पृ० १८७-६३।

१७ - नारहट - सागर से ४० मील दूर मालथौन के पास ही पर्वत श्रेणियों के बीच से होकर झांसी को जाने वाला मार्ग जिस घाटी से गुजरता है, उसे नारहट घाट कहते हैं।

१८ - लौ० पृ० १६५-१६६, २०८, फॉरेस्ट भाग ४ पृ० १६-२०, स्मिथ पृ० १०३, १०५, फा० सी० कन्स० २६ मार्च १८५८ नं० ३०।

अंग्रेजी सेना फांसी पर अधिकार करने के लिये सागर से बढ़ती हुई १ मार्च १८५८ को रिजवांस[१६] आ पहुंची । यह मालथौन, मदनपुर और धामौनी की ओर जाने वाले मार्गों का प्रमुख केन्द्रीय स्थान है । यहीं मेजर ओर की सैनिक टुकड़ी भी रोज़ की सेना के साथ आकर सम्मिलित हुई । चूंकि मालथौन की घाटी पर मर्दनसिंह डटा हुआ था, अत: मेजरओर के कहने पर ही ह्यूरोज़ ने फांसी के बढ़ने के लिए मदनपुर का मार्ग चुना । उसने मर्दनसिंह को धोखा देने के लिए मेज़र स्कमोर को मालथौन की ओर भेजा जबकि स्वयं मदनपुर की ओर बढ़ गया । यहीं मार्ग में बरौदिया[२०] का किला हस्तगत कर ३ मार्च सन् १८५८ को वह मदनपुर की ओर बढ़ा[२१]। यहां भी विद्रोही बुन्देले शाहगढ़ के राजा के नेतृत्व में अंग्रेजों की प्रतीक्षा कर रहे थे । इस विकट मोर्चे को देखकर रोज़ ने अपनी सेना को पहाड़ी के किनारे किनारे चलने के आदेश दिये । सेना ५ - ६ मील ही आगे बढ़ी होगी कि बुन्देलों को ह्यूरोज़ के फांसी की ओर बढ़ने की खबर लग गई । वे नौनी नामक गांव के निकट अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े । उनकी बन्दूकें अंग्रेजों पर गोलियां बरसा रहीं थीं । अंग्रेजी तोपें भी आग उगलने लगीं । विद्रोहियों की गोली से ह्यूरोज़ स्वयं घायल हो गया तथा उसका घोड़ा मारा गया । अंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा । इतने में ही हैदराबाद घुड़सवार सेना ने घाटी के बांयी ओर से गोला बारी शुरु करदी । अब युद्ध का पांसा पलटा और बुन्देले भाग निकले । हैदराबाद सैनिक टुकड़ी ने उनका पीछा किया । शाहगढ़ के राजा का ज्योतिषी तथा अनेक बुन्देले कैद कर लिये गये और लगभग

---

१६ - रिजवांस - सागर से २७ मील फांसी मार्ग पर ।

२० - बरौदिया - रिजवांस से २ मील उत्तर में ।

२१ - लौ० पृ० २०८, २०६, फांसी गजे० पृ० २१८, २१६, मेलसन० भाग ५, पृ० १०२, स्मिथ० पृ० १०६, १०७ ।

३०० से अधिक विद्रोही मौत के घाट उतार दिये गये।[२२]

४ - मदनपुर से झांसी -

मदनपुर की घाटी का युद्ध एक प्रकार से निर्णायक युद्ध ही था। यदि मर्दनसिंह अपनी सेना सहित इस मोर्चे पर आ गया होता तो ह्यूरोज़ की स्थिति निश्चय ही संकटमय हो गई होती। किन्तु उसकी कुशल रण नीति के कारण ही बुन्देलों को मुंह की खानी पड़ी। इधर मालथौन घाटी में जब अंग्रेजी सेना मेज़र स्कटमोर के नेतृत्व में पहुंची तब मर्दनसिंह ने उनका सामना किया। इसी समय उसे शाहगढ़ के राजा बख्तबली के परास्त होने का समाचार मिला। इससे विद्रोहियों का साहस टूट गया और मर्दनसिंह भी सेना सहित भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार मालथौन की घाटी भी अंग्रेजों के लिए निरापद हो गई।[२३]

अगले ही दिन अंग्रेजी सेना ने बढ़कर सरोई के किले पर अधिकार कर लिया। एक छोटी सी पहाड़ी पर बना हुआ सरोई का किला शाहगढ़ के राजा का राजमहल था। यहीं विद्रोहियों का गोले-बारूद बनाने का कारखाना भी अंग्रेजों के हाथ लगा।[२४] इसके बाद ही रोज़ ने मरौरा[२५] का किला भी हस्तगत किया। मरौरा का प्राचीन दुर्ग सागर से झांसी तथा शाहगढ़ से मालथौन जाने वाले मार्ग का एक प्रमुख किला था। हेमिल्टन ने शाहगढ़ के राज्य को ब्रिटिश राज्य में मिलाने के साथ ही ७ मार्च १८५८ को मरौरा के किले पर भी अंग्रेजी झण्डा फहराया।[२६] इस प्रकार सागर से झांसी तक के बेतवा नदी के किनारे के जिन अंचलों ने १८५७ में विद्रोह कर अंग्रेजी सत्ता का जुआ उतार फेंका था, उनमें से तालबेहट को छोड़कर सभी दुर्ग पुन: अंग्रेजों के अधिकार में आ गए। यही मार्ग में मेज़र

---

२२ - लौ० पृ० २११-२१४, फौरेस्ट भाग ४ पृ० २०, स्मिथ० पृ० १०७,१०८।

२३ - लौ० पृ० २२० ।

२४ - लौ० पृ० २१७-२१६, फौरेस्ट भाग ४ पृ० ३८, स्मिथ० पृ० १०८ ।

२५ - मरौरा - मदनपुर से १२ मील ।

२६ - लौ० पृ० २२०, फौरेस्ट भाग ४ पृ० ३८, स्मिथ० पृ० १०८ ।

स्कहमौर के नेतृत्व में जो सैनिक टुकड़ी माल्थौन भेजी गई थी, आकर मिल गई। यहां से कुछ मील पर ही टेहरी का बुन्देला राज्य था। अंग्रेजों को भय था कि टेहरी की रानी से अंग्रेजों के अच्छे सम्बन्ध थे। इस आक्रमण में टेहरी की लड़ई रानी ने अंग्रेजों की सहायता की थी, इसलिए कहीं विद्रोही भागकर टेहरी पर आक्रमण न करदें। इसीलिए हैदराबाद सैनिक टुकड़ी को शाहगढ़ और फिर टेहरी की ओर बढ़ने के आदेश दिये गए।[२७]

अब ह्यूरोज़ ने ६ मार्च को बानपुर की ओर कूच किया। विद्रोही किला खाली कर पहले ही जा चुके थे। इसलिए बानपुर का किला सहज ही अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। रोज़ ने मेजर बौइली (BOILEAU) को किले का महल उड़ा देने के आदेश दिये। यहां के महल को लूटने के पश्चात् ११ मार्च को इसका एक भाग उड़ा दिया गया।[२८] यहां से ह्यूरोज़ ने १२ मार्च को तालबेहट की ओर बढ़ना शुरु किया और इसी दिन शाम को किले के सम्मुख पड़ाव डाले। यहां का किला एक ऊंची पहाड़ी पर बना हुआ है। विद्रोहियों की शक्ति इस समय तक बहुत क्षीण हो चुकी थी। वे बिना सामना किये ही किला छोड़कर भाग चुके थे। इसीलिए ह्यूरोज़ को तालबेहट पर अधिकार करने में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा।[२९]

तालबेहट पर अधिकार करने के पश्चात रोज़ ने १६ मार्च १८५८ को बम्बई, मद्रास और हैदराबाद सेना को बेतवा नदी पार करने के आदेश दिये। किन्तु तोपखाने के लिए बेतवा पार करना असम्भव था इसलिए उसने मुख्य इंजिनियर मेज़र बौइली को बेतवा पर पुल बनाने के निर्देश दिये।[३०] अंग्रेजी सेना ने झांसी की ओर बढ़ते हुए १७ मार्च १८५८ को बेतवा पार की। इसी दिन प्रथम ब्रिगेड ने ब्रिगेडियर स्टुअर्ट के नेतृत्व में चन्देरी पर

---

२७ - लौ० पृ० २२१ ।

२८ - लौ० पृ० २२१ - २२३ ।

२९ - वही पृ० २२३, २२४ ।

३० - वही पृ० ~~२००~~ २१६, फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० १४० ।

अधिकार कर झांसी की ओर कूच किया । ह्यूरोज़ ने अपनी सेना सहित १६ मार्च १८५८ को झांसी से १४ मील दूर चंचनपुर नामक गांव में पड़ाव डाला[३१] । यहां विश्राम करने के बाद उसने २० मार्च की मध्यान्ह को द्वितीय ब्रिगेड के सैनिकों को झांसी के मार्गों की नाका बन्दी और उनकी देखभाल करने के लिए भेजा । वह स्वयं भी उसी दिन यहां के किले की स्थिति का निरीक्षण करने को जाने वाला था कि इसीसमय गवर्नर जनरल द्वारा भेजे गये २ एक्सप्रेस पत्र उसे प्राप्त हुए । इसमें से एक गवर्नर जनरल का सर हैमिल्टन को और दूसरा सर ह्यूरोज़ के नाम था । इन दोनों पत्रों में चरखारी के राजा रतनसिंह की सहायता करने के आदेश दिये गए थे । इन पत्रों में उसे यह खबर दी गई थी कि तात्याटोपे ने अपनी सेना सहित चरखारी के राजा रतनसिंह पर आक्रमण कर दिया था और चूंकि वह अंग्रेजों का मित्र था, इसलिए ह्यूरोज़ को आदेश दिया गया कि वह तुरन्त चरखारी के राजा की सहायता करे[३२] । तात्याटोपे ने चरखारीके राजा पर यह हमला मुख्य रूप से झांसी की ओर बढ़ते हुए ह्यूरोज का ध्यान बटाकर रानी को जहां एक ओर अपनी तैयारियां पूरी करने का मौका देने के लिए किया था, वहीं दूसरी ओर उसकी चाल थी कि अंग्रेजी सेना चरखारी और झांसी के दो मोर्चों में बंट जाय, जिससे उसकी शक्ति कम हो जाय और ह्यूरोज़ के झांसी नगर और किले को जीतने के मुख्य लक्ष्य को विफल किया जा सके । गवर्नर जनरल के पत्र ने रोज़ को बड़ी विषम स्थिति में डाल दिया क्योंकि झांसी अब केवल १४ मील रह गई थी, जबकि चरखारी ८० मील दूर थी । हैमिल्टन का विचार था कि जब तक अंग्रेजी सेना ८० मील का मार्ग तयकर चरखारी पहुंचेगी तब तक तात्याटोपे चरखारी के राजा से निपट चुका होगा और इस तरह न वह ही

---

३१ - लो० पृ० २२७, २३१ , स्मिथ० पृ० १११, मैलसन० भाग ५ पृ० १०२ ।
३२ - सीक्रेट डिस्पैच टू सैक्रेटरी,२५ मई १८५८ नं० १६, के० मैलसन० भाग ५, पृ० १०७, स्मिथ० पृ० १११, सेन० पृ० २६४ ।

झाँसी के आसपास रोज़ के आक्रमण का प्रदेश
स्मिथ की 'रिबेलियस रानी' से साभार उद्धृत

बचाया जा सकेगा और न ही फांसी पर समय से आक्रमण किया जा सकेगा। यह भी सम्भव था कि इस बीच रानी सहायता मंगाकर अपनी स्थिति और सुदृढ़ कर लेती। अन्त में गवर्नर जनरल के आदेश को न मानने का दायित्व हैमिल्टन ने अपने ऊपर लिया और उन्होंने यही उचित समझा कि पहले विद्रोहियों के मुख्य गढ़ " फांसी " पर ही आक्रमण किया जाय। अब ह्यूरोज़ ने चंचनपुर से आगे बढ़कर २० मार्च को फांसी के निकट सिमरा पर पड़ाव डाला। इसी दिन ब्रिगेडियर स्टुवर्ट के नेतृत्व में घुड़सवार सेना और तोपखाने को फांसी का घेरा डालने के लिए रवाना किया। ह्यूरोज़ स्वयं फांसी की ओर तेजी से बढ़ा और उसने २१ मार्च १८५८ को प्रात: ७ बजे फांसी से १।। मील दूर स्टारफोर्ट के समीप अपनी छावनी स्थापित की।[३३]

५ - फांसी का घेरा -

ह्यूरोज को फांसी के किले के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं थी। अत: फांसी पहुंचते ही उसने पहले किले की स्थिति का निरीक्षण करना आवश्यक समझा। वह अपने साथियों सहित २१ मार्च को प्रात: ६ बजे से सायं ६ बजे तक परकोटे के चारों ओर घूम-घूमकर मोर्चे के उपयुक्त स्थानों की खोज करता रहा[३४]।

उसने अपने पत्र में किले की स्थिति का जो विवरण दिया है वह किले की आधुनिक स्थिति से पूर्णतया मेल खाता है। ह्यूरोज़ लिखता है कि फांसी का किला नगर के पश्चिम में एक छोटी सी

---

३३ - फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, ३० दिसम्बर १८५९ नं० १७६७ (अनुपूरक) डॉ० पृ० २३२, मेलसन० भाग ५ पृ० १०८, होम्स० पृ० ५०६, होल्कोम्ब० पृ० ३२, स्मिथ० पृ० ११२ ।

३४ - फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, मेलसन० भाग ५ पृ० १०८, स्मिथ० पृ० ११२, होम्स० पृ० ५०६ ।

छोटी सी पहाड़ी पर बना हुआ है। किले से पश्चिम और दक्षिण की ओर दो प्राचीरें निकलती हैं, जो सारे नगर को आविष्टित सा किये हैं। इन दीवारों की चौड़ाई १६ से २० फुट तक है। युद्ध के समय बड़ी बड़ी तोपें इन दीवारों पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक बड़ी आसानी से घसीट-कर पहुंचाई जा सकती हैं। झांसी का नगर इन दीवारों के बीच किले के साये में बसा हुआ है। नगर लगभग साढ़े चार वर्ग मील का है जो ६ से १२ फिट चौड़ी और १८ से ३० फुट ऊंची दीवार से घिरा हुआ है। किले के दक्षिण में छावनी के नष्ट भ्रष्ट अवशेष, अंग्रेज अधिकारियों के जले बंगले मंदिर और झोकनबाग हैं। इसी बाग के निकट निर्दोष अंग्रेज पुरुष स्त्री और बच्चे मौत के घाट उतार दिये गये थे।[३५]

इस प्रकार एक ओर जहां ह्यूरोज़ ने तेजी से बढ़कर झांसी का घेरा डाल दिया था और उस पर अधिकार करने की वह अपनी आखिरी तैयारियों की स्वयं देख रेख और व्यवस्था कर रहा था, वहां दूसरी ओर रानी लक्ष्मीबाई भी असावधान नहीं थी। जब जब उसे स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेजों से संघर्ष होना अनिवार्य है तो उसने भी उनसे जमकर मोर्चा लेने की ठान ली थी। फिर उसके लिए तो यह जन्म मरण के साथ ही व्यक्तिगत सम्मान का भी संघर्ष बन गया था, क्योंकि अंग्रेजों की योजना उसे पकड़ कर उस पर मुकदमा चलाने की थी। अस्तु रानी ने भी अपने उपलब्ध साधनों का भरपूर प्रयोग कर अपनी समझ से अंग्रेजों का सामना करने की तैयारियों में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखी। मांझा प्रवास का लेखक गोडसे जोकि उस समय झांसी में ही था लिखता है कि युद्ध का निश्चय तो रानी पहले ही कर चुकी थी। अब जोर शोर से तैयारियां होने लगीं। उसने नगर के समस्त बाहर और भीतर जाने वाले मार्गों पर नाके बन्दी करनी शुरू करदी। नगर के परकोटे पर सैनिक टुकड़ियां रखदी गई और बुर्ज बुर्जों पर बड़ी बड़ी तोपें जमादी गई। लालूबख्शी को गोला बारूद तैयार करने के आदेश

---

३५ - फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, लो० पृ० २३२,२३४ ।

किये गये।[३६] इस मुसीबत के समय में भी रानीको अपनी दरिद्र जनता का ख्याल बना हुवा था। युद्ध के समय नगर की खाधान स्थिति खराब न हो जाय इसलिए चने, मटर, मुरमुरे आदि सस्ते अनाज के भण्डार के भण्डार भर दिये गये। घेरे के समय झांसी की जनता को मुफ्त भोजन दिया जाय इसलिए गणपति के मंदिर में शक्कर, घी, चावल आदि बड़ी भारी मात्रा में एकत्रित किये गए।[३७]

हैमिलटन को मिली एक सूचना के अनुसार रानी की सेना में लगभग १० हजार बुन्देले, विलायती (अफगानी), रण कुशल सैनिक थे। इसके ~~अलावा~~ अलावा १५०० सिपाही और थे जिनमें लगभग ४०० घुड़सवार थे। किले में लगभग ४० - ५० तोपें भी थीं।[३८] तहमान्कर के अनुसार उसकी सेना में १४ हजार बुन्देले तथा अफगानी थे।[३९]

उसने अपनी सेना को कई भागों में बांटकर प्रत्येक भाग को एक विश्वसनीय सरदार की अध्यक्षता में किले की रक्षा के लिए नियुक्त किया। इन सैनिक दलों को रानी ने नगर के परकोटे, प्रवेश द्वारों और किले पर जमा दिया। उसने दीवान दूल्हाजू को ओरछे दरवाजे पर, पीर अली को सागर खिड़की पर, गुलाम गौस खां को सैंयर दरवाजे पर, पूरन कोरी को उन्नाव और सागरसिंह को खण्डेराव दरवाजे पर नियुक्त किया। दीवान जवाहरसिंह को नगर के समस्त प्रवेश द्वारों की रक्षा का भार सौंपा गया।[४०] अंग्रेजी सेना के झांसी की ओर बढ़ने की खबर लगते ही उसने २० मार्च को दो छोटी तोपें किले के बुर्जों पर रखवादीं और सैनिकों में गोला बारूद बांटा गया।[४१] इसी बीच रानी ने तात्याटोपे के पास भी

---

३६ - गोड्से० पृ० ७६।

३७ - वही पृ० ७६-७७, स्मिथ० पृ० ११२ ।

३८ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, ३० दिसम्बर १८५६ नं० १७६५(अनुपूरक) , डी०पृ०२३७।

३६ - तहमान्कर० पृ० ८८ ।

४० - वर्मा० पृ० ३४४ ।

४१ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १२७-१२८ ।

सहायता करने के सन्देश भेजे थे।[४२] इधर विद्रोही सैनिकों, बुन्देलों और रानी के समर्थकों आदि ने फांसी के चारों ओर के क्षेत्र को लूट पाट कर नष्ट कर दिया था जिससे अंग्रेजी सेना को कहीं से भी रसद न मिल सके। किन्तु टेहरी की रानी और सिंधिया ने उनकी हर प्रकार से मदद की।[४३]

ह्यूरोज़ ने २१ मार्च को अपनी घुड़ सवार सेना को ७ दलों में विभाजित कर उसकी कमान दो सेना नायकों मेजर स्कडमोर और मेजरगौल को सौंप दी। इनके नेतृत्व में घुड़ सवार सेना को फांसी का घेरा डालने के आदेश दिये गए। अंग्रेजी सेना ने बढ़कर फांसी से बाहर और भीतर जाने वाले मार्गों पर दिन रात कड़ी निगरानी रखनी शुरु करदी। उन्होंने ह्यूरोज़ के आदेश पर नगर को जाने वाले मार्गों पर खाइयां खोदीं और खड़-चनें बनादीं।[४४] फिर भी ह्यूरोज़ का विचार था कि फांसी के किले और परकोटे पर हमला करने में कई कठिनाइयां थीं। किले पर केवल दक्षिण से ही आक्रमण किया जा सकता था, किन्तु दक्षिण में भी नगर का ऊंचा पर कोटा और उससे लगी हुई पहाड़ी[४५] थी। यह पहाड़ी किले से लगभग ६४० गज दूर है। ह्यू रोज़ का मत था कि किले पर अधिकार करने के लिए इस छोटी पहाड़ी पर अधिकार करना अत्यन्त आवश्यक था।[४६]

अंग्रेजी सेना ने २२ मार्च को नगर को पूर्ण रूप से घेर लिया किन्तु तोपों को जमाने और मोर्चे स्थापित करने की व्यवस्था

---

४२ - गोडसे० पृ० ७८।

४३ - ली० पृ० २३७।

४४ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५।

४५ - इस पहाड़ी पर आज कल हर सोमवार को जानवरों का हाट लगता है।

४६ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५।

२४ मार्च तक ही हो सकी । इसी दिन प्रथम ब्रिगेड अपनी घेरा डालने वाली बड़ी बड़ी तोपों के साथ उससे आ मिली।[४७] अब ह्यूरोज ने दक्षिण के परकोटे पर रखी हुई तोपों को बन्द करने के लिए और नगर पर अधिक प्रभावोत्पादक गोला बारी करने के लिए दो बड़ी तोपें जमाकर २५ मार्च को गोला बारी शुरु करदी । यह गोला बारी कुछ कारगर तो हुई किन्तु रानी की तोपों को बन्द नहीं किया जा सका।[४८]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रथम ब्रिगेड ~~के~~ का घेरा डालने वाला सैनिक दल २४ मार्च को झांसी आ पहुंचा था । अब रोज़ ने किले पर बायीं ओर से आक्रमण करने का भार प्रथम ब्रिगेड के इन सैनिकों को सौंपा । इन सैनिकों ने २५ मार्च को तोपे जमा कर २६ से २६ मार्च तक लगातार गोला बारी की, किन्तु ह्यूरोज़ लिखता है कि किले की दीवार इतनी ठोस और मजबूत साबित हुई कि प्रथम दो दिनों तक तो गोला बारी का कोई प्रभाव ही लक्षित नहीं हुआ।[४६] तीसरे दिन अर्थात् २७ मार्च को किले का पश्चिमी मोर्चा टूट गया किन्तु रानी के सैनिकों ने रात्रि में कम्बल ओढ़कर किले का यह मोर्चा ठीक कर दिया।[५०] अगले दिन अर्थात् २८ मार्च को रोज़ ने अपने सैनिकों को इस ओर तेजी से गोला बारी करने के आदेश दिये । इसी दिन लैफ्टीनेन्ट पिटमैन की तोप के तीसरे गोले से किले में रखी पांच मन बारूद में आग लग गई जिससे लगभग ४० व्यक्ति मारे गये।[५१]

---

४७ - फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० ३२२, फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८४८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, ३० दिसम्बर १८५६ नं० १७६८ (अनुपूरक) ।

४८ - फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५ ।

४६ - लो० पृ० २३७, २३६, २४०, फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५ ।

५०- फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त ~~१०~~ १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२ -३५७५ ।

५१ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १२७-१२८ ।

इस प्रकार दोनों ओर से भयंकर गोला बारी हो रही थी। ह्यूरोज़ ने २६ मार्च को अपने तोपचियों को परकोटे पर चढ़े सैनिकों पर गोली बरसाने के लिए नगरके पूर्व और दक्षिण में रेत की बोरियां जमा दीं। ये बोरियां उनकी सुरक्षा के लिए जमाई गई थीं। वह स्वयं फोकन-बाग में आ पहुंचा। उसके अनुसार २६ मार्च की इस गोला बारी से रानी के बहुत से सैनिक परकोटे पर मारे गए। उसने अपनी कुछ तोपें कपूरेकरी के आस पास के ऊंचे टीलों पर जमादीं और अब बहुत ही व्यवस्थित रूप से किले पर-कोटे और नगर पर गोला बारी शुरू करदी। नई बस्ती पर भी अंग्रेजी तोपे आग उगलने लगी। पचकुइयों के पास पानी की सुविधा होने के कारण सिपाहियों का विशेष जमाव था। अत: इस गोला बारी से बहुत से नगर निवासी मारे गए[५२]। दोपहर तक लोगों को पानी पीने को ही नहीं मिला। अब रानी ने पश्चिम और दक्षिण की तोपों को चलाने की आज्ञा दी। इनकी मार से अंग्रेजी तोपों का मुंह बन्द हो गया और लोग फिर पानी भरने लगे[५३]। अंग्रेजी तोपो ने ३० मार्च तक किले को कई स्थानों से तोड़ फोड़ दिया और रानी की अधिक शक्तिशाली तोपें बेकार करदीं। उसके श्रेष्ठ तोपची मारे गये और इसलिए अब उसकी तोपों की गोला बारी कमजोर होती गई। किन्तु फिर भी रानी के सैनिक जमे रहे और वे यथा शक्ति ध्वस्त दीवारों की मरम्मत और उनको बन्द करने के उपाय करते रहे। चूंकि परकोटे की दीवार कई जगह से टूट फूट गई थी, इसलिए ३० मार्च को ही ह्यूरोज़ ने दीवारों पर चढ़कर नगर में घुसने की योजना बनाई[५४]। किन्तु उसे इसी दिन तात्याटोपे की सेना के बेतवा से ३ मील पर बरुआसागर तक आने की खबर लगी।

---

५२ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर१८५८ नं० ३५७२-३५७५, गोल्से० पृ० ८४ ।

५३- गोल्से० पृ० ८४ ।

५४ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५ -२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५ ।

६ - तात्याटोपे से बेतवा का युद्ध (३१ मार्च १८५८)

तात्याटोपे चरखारी के राजा को परास्त कर २८ तोपों तथा २२ हजार सैनिकों के साथ रानी की सहायता के लिए बढ़ रहा था, उसके साथ बानपुर का राजा मर्दनसिंह, शाहगढ़ का राजा, वल्लवली, दो हजार विद्रोही, सात हजार बुन्देले और विलायती तथा घुड़सवार सेना थी[५५]। अब ह्यूरोज़ ने अपनी नगर में घुसने वाली योजना स्थगित करदी और तात्याटोपे की सेना को बेतवा पर ही परास्त करने के उद्देश्य से वह ३० मार्च की रात्रि को लगभग ६ बजे प्रथम ब्रिगेड के कुछ सैनिकों के साथ झांसी से लगभग ६ मील पर स्थित बसोवा गांव की ओर चल पड़ा। इसी गांव में राजपुर और कोलवर के घाट थे जिनसे तात्या की सेना के पार उतरने की संभावना थी। ह्यूरोज ने दो सैनिक दल कोलवर और राजपुर के घाटों पर भेज दिये और स्वयं पीछे रह गया। बसोवा में ह्यूरोज को समाचार मिला कि उसके सैनिक दलोंके कारण तात्याटोपे की सेना बेतवा पार करने में हिचकिचा रही थी। अब रोज ने अपनी सेनायें पीछे बुला लीं और इस प्रकार ~~अवश्य~~ तात्याटोपे को नदी पार करने के लिए उत्साहित किया। अगले दिन अर्थात् ३१ मार्च को तात्या की सेना ने राजपुर घाट से बेतवा पार की और इसी सायं को उसकी सेना ने आग जलाकर अपने आने की खबर ~~भी~~ रानी को दी। रोज़ ने दायीं ओर हैदराबाद घुड़सवार सेना लेफ्टीनेन्ट क्लार्क, के नेतृत्व में मध्य में बम्बई की पैदल ह्य सैनिक टुकड़ी, बायीं ओर रोज़ की तोपें और कैप्टन लाइट फुट के नेतृत्व में सैनिक रखे। तात्या के आगे बढ़ते ही बायीं ओर से कैप्टन ~~लबट~~ लाइट फुट और दायीं ओर से हैदराबाद घुड़सवार सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। तात्या की अधिकांश तोपे कठोर जमीन पर नहीं आ पायी थीं और बेतवा के निकट बालू में ही फंसकर रह गई थीं। तात्या की सेना को अंग्रेजी सेना का अनुमान न हो सका और तीन ओर से

---

५५ - फा० पोलि० कन्स० १५ अक्टूबर १८५८ नं० ५५, स्मिथ० पृ० ११६ ।

आक्रमण से वे बौखला उठे और उनमें भगदड़ मच गई । अब तात्या ने जंगलों में आग लगा दी और धुंये की आड़ में वह भाग खड़ा हुआ । तात्या स्वयं कुछ सैनिकों के साथ चिरगांव होते हुए माण्डेर की ओर बढ़ा, जबकि शाहगढ़ और बानपुर के राजा दो हजार सैनिकों तथा दो तोपों के साथ मऊ भाग गए[५६]। सरीला के राजा का पुत्र जो तात्याटोपे के साथ था, भागकर गुरसराय जा पहुंचा[५७]। अंग्रेजी सेना ने लगभग ६ मील तक उनका पीछा किया उनकी १८ तोपें और गोला बारूद आदि युद्ध सामग्री सहज ही उनके हाथ आ गई । उसके लगभग १५०० सैनिक मारे गये[५८]। जब तात्या की सेना और अंग्रेजी सेना के बीच जमकर युद्ध चल रहा था उस समय रानी तात्या की सहायता के लिए अपने सैनिकों को किले से बाहर भेजने वाली थीं किन्तु रानी को नगर की रक्षा के लिए सेना कम हो जाने का भय था और फिर यह भी आशंका थी कि बाहर निकल पाने पर रानी के सैनिक उसकी सेवा छोड़कर भाग न जायें[५९]।

तात्या टोपे की सेना का सामना करने के साथ साथ रोज़ ने किले पर भी गोला बारी जारी रखी, ताकि रानी को यह अनुमान न हो पाये कि तात्या से निबटने के लिए काफी अंग्रेजी सेना के सिपाही झांसी के घेरे से हटा लिये गये हैं और उसके भी सैनिक व्यस्त रहें जिससे रानी तात्या को सैनिक सहायता भेजने की बात भी न सोच सके । ह्यूरोज़ की चाल सफल रही । रानी के तोपची अंग्रेजी गोलाबारी का जवाब देने में लगे रहे । इसी दिन रानी की सबसे बड़ी सैनिक क्षति हुई । १०० से भी अधिक रानी के सैनिक और नगर निवासी मारे गए । किन्तु रानी की सबसे बड़ी क्षति गुलामगौसखां की मृत्यु थी[६०]।

---

५६ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १२७-१२८, फा० पोलि० कन्स० १५ अक्टूबर १८५८ नं०५५, डिस्पैच टू सीक्रेट कमेटी २० अप्रैल१८५८नं०१५, लो० पृ०२४८-५१, डब्ल्यू० मैलसन० पृ०११०-१३,स्मिथ०पृ०१२२-२४,मैलसन० भाग ५ पृ० ११२-१४ ।

५७ - फा०सी०कन्स० २८ मई १८५८ नं० १२७-१२८ ।

५८ - स्मिथ० पृ०१२६, लो० पृ० २५१

५९ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १२७-१२८ ।

६० - वही ।

७ - झांसी का पतन -

तात्या टोपे के इस प्रकार पराजित होकर भाग जाने से उसकी भारी युद्ध सामग्री ह्यूरोज़ के हाथ लगी जिसका प्रयोग उसने २ अप्रैल १८५८ को झांसी के विरुद्ध दूने जोश से किया । इसी दिन मेजर बोइली ने नगर के परकोटे पर चढ़कर नगर में प्रवेश पाने की तैयारियां पूर्ण करली थीं । रात्रि में झोकनबाग़ के सामने पहाड़ी पर तोपें लाई गईं । अब रोज़ ने अपने सैनिकों को परकोटे पर चढ़कर नगर में प्रवेश कर उस पर अधिकार कर लेने के आदेश दिये । आक्रमण करने वाली सेनाओं का नेतृत्व प्रथम ब्रिगेड का नायक ब्रिगेडियर स्टुअर्ड और द्वितीय ब्रिगेड का सेनापति ब्रिगेडियर स्टीवार्ट कर रहा था।[६१] अंग्रेजी सेना के लेफ्टीनेन्ट मिक्लीजोन्स, लेफ्टीनेन्टबोन्स और लेफ्टीनेन्ट फॉक्स ने अपने जीवन की आशा त्यागकर घास के गठरों की सीढ़ी बनाकर नगर के परकोटे पर चढ़ने का प्रयास किया किन्तु झांसी के वीर सैनिकों द्वारा मौत के घाट उतार दिये गये । दूसरी ओर ब्रिगेडियर स्टुअर्ड और कर्नल लौथ ने अपनी २५ वीं और ८६ वीं पैदल सिपाहियों की सहायता से झांसी का ओरछा दरवाजा हस्तगत कर लिया । अंग्रेजी सेना के सैकड़ों सैनिक नगर में प्रवेश कर गये । इस प्रकार अंग्रेजी सेना ने ह्यूरोज के नेतृत्व में ३ अप्रैल १८५८, शनिवार की प्रात: झांसी नगर पर अधिकार कर लिया ।[६२] ऐसी जनश्रुति है कि झांसी प्रवेश में अंग्रेजों को ओरछा दरवाजे पर नियुक्त रानी के गद्दार तोपची दुल्हाजू बुन्देले से विशेष सहायता मिली थी । गोडसे जो इस समय झांसी में ही था लिखता है कि " दक्षिणी दरवाजे की तोप ३ अप्रैल, शनिवार की प्रात: यकायक बन्द हो गई । यह खबर लेकर एक आदमी आया

६१- फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५ ।

६२ - फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १० १८५८ नं० २५-३७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, १४ अक्टूबर १८५८ नं० ५५, फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १२७-१२८, १६७, २५ जून १८५८ नं० २१६,३० अप्रैल १८५८ नं० २५४ -२५७ , २६४-२६५ ।

और रानी को सारा समाचार दिया । सारी हकीकत सुनकर रानी के पेट में पानी हो गया और दम घुटने लगा ।[६३] अंग्रेजी सरकार ने बाद में दुल्हाजू को इस सहायता के बदले में दो गांव जागीर में दिये ।[६४]

नगर में प्रवेश करते ही अंग्रेजी सेना ने विजय प्रारम्भ कर दिया और ५ से ८० वर्ष तक के पुरुषों को मौत के घाट उतार देने के आदेश दिये गये । नगर के महत्वपूर्ण भाग हलवाई पुरे में आग लगादी गई ।[६५] अब गली गली में युद्ध प्रारम्भ हो गया । आक्रमण-कारी जब महल के निकट पहुंचे तब उन्हें लगा कि वास्तविक युद्ध तो जैसे अब प्रारम्भ हुआ हो । महल रानी के कुछ विश्वास पात्र सैनिकों के अधिकार में था । उन्होंने जमकर अंग्रेजों का सामना किया, किन्तु अंग्रेजों की संख्या अधिक होने के कारण वे अधिक देर तक न टिक सके । इसके साथ ही उन्होंने महल के चारों और आग लगा दी थी । अन्त में विवश होकर रानी के सैनिकों को समर्पण करना पड़ा । महल में प्रवेश पाते ही अंग्रेजों ने समस्त सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया ।[६६] दो घण्टे बाद अंग्रेजों को खबर लगी कि महल के सामने का अस्तबल अब भी रानी के अंग रक्षक दल के ५० आदमियों के अधिकार में था । उनका पता लगते ही ८६ वीं और तीसरी पलटन के सिपाहियों ने उन पर आक्रमण कर दिया । इनमें से जब तक एक भी सैनिक जीवित रहा तब तक अंग्रेज अस्तबल में प्रवेश नहीं पा सके । एक एक करके रानी के सभी वीर सैनिक धराशाही हुए और अस्तबल भी उनके अधिकार में आ गया ।यहीं लूट के माल में उन्हें वह यूनियन जैक का भण्डा भी मिला जिसे लार्डविलियम बैंटिक ने शिवराव भाऊ

---

६३ - गोड्से० पृ० ८८ ।

६४ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० १४६-४७, सावरकर० पृ० ४५०, तह्मान्कर० पृ० ११२ ।

६५ - गोड्से० पृ० ६०, ६२ ।

६६ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५ ।

के पौत्र तथा उत्तराधिकारी रामचन्द्रराव को भेंट किया था[६७]। सरकारी हवेली के पास ही संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था। इसे पूर्णतया नष्ट कर दिया गया[६८]। यहां तक कि लक्ष्मी जी के मन्दिर को भी नहीं छोड़ा गया। अंग्रेज सैनिक लक्ष्मी के अलंकार वस्त्र आदि लूट कर ले गये[६९]।

इधर रानी ने जब नगर का यह दृश्य देखा तब वह नगर के विनाश के लिए स्वयं को उत्तरदायी ठहराने लगी। उसके दुःख की कोई सीमा ही नहीं रही। उसने अपने मंत्रियों को बुलाकर आत्म-हत्या करने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु एक वृद्ध के द्वारा समझाये जाने पर उसने आत्म हत्या का विचार त्याग दिया और काल्पी जाने का निश्चय किया[७०]।

८ - रानी काल्पी की ओर -

रानी अपने पिता मोरोपन्त, दत्तक पुत्र दामोदर राव, काशीनाथ, लक्ष्मणराव, नत्थूखां, जवाहरसिंह और बचे हुए अफगान सैनिकों के दल के साथ अर्धरात्रि के लगभग किले के नगर की ओर के उत्तरी दरवाजे से निकलीं और टकसाल से पुरानी कोतवाली के मार्ग से भांडेरी दरवाजे की ओर अग्रसर हुईं[७१]। रानी के कोतवाली के निकट आते ही अंग्रेजी सैनिकों से एक छोटी सी मुठभेड़ हुई किन्तु रानी और उसके साथी तेजी से तलवार से अपना रास्ता बनाते हुए भांडेरी दरवाजे[७२] से अंजनी की टौरिया

---

६७ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, लो० पृ० २५६, स्मिथ० पृ० १३४।

६८ - लो० पृ० २६४, गोडसे० पृ० १०२।

६९ - गोडसे० पृ० १०२। झांसी के विजय और लूट के लिए देखें - होल्कोम्ब० पृ० ४७-४६, गोडसे० पृ० ६६-१०७।

७०- लो० पृ० २६०, गोडसे० पृ० ६३, स्मिथ० पृ० १३४, सावरकर० पृ०४५२।

७१ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १६७।

७२ - गोडसे० पृ० ६४ वर्मा० पृ० ४२१। बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के अनुसार रानी के निकलते ही कोरियों ने भांडेरी दरवाजा फिर बन्द कर लिया।

पर जा पहुंचे। यहां ओरछे की फौज का पहरा था। पहरे वालों ने जब उन्हें रोका तब वह यह कहकर भी आगे बढ़ गई कि यह टेहरी की ही फौज की टुकड़ी है जो अंग्रेजी सेना की सहायता के लिए जा रही है। यहां से बिना रुके वह बढ़ा[७३], आरी[७४] होते हुए मांडेर[७५] जाने वाली सड़क पर जा पहुंची। यहां से वह मांडेर की ओर रवाना हुई[७६]। इस बीच रानी के पिता मोरोपन्त के पैर में शत्रु की तलवार से घाव लग चुका था और वह अपने सम्पत्ति से लदे हाथी के साथ रानी के साथ तेज गति से नहीं बढ़ पा रहा था। अतः बंजिनि की टौरिया से ही वह दतिया की ओर मुड़ गये[७७]। रानी ने अपनी गति में बाधा नहीं आने दी और वह आगे बढ़ती हुई ५ अप्रैल की प्रातः मांडेर जा पहुंची[७८]।

---

७३ - बढ़ा - फांसी से ४ मील।

७४ - आरी - फांसी से ६ मील।

७५ - मांडेर - फांसी से २१ मील।

७६ - गोडसे० पृ० ६४, फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १६७, फा० पौलि० कन्स० १५ अक्टूबर १८५८ नं० ५५ ।

७७ - लौ० पृ० २६७, फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १४७ - १४६, फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, स्मिथ० पृ० १३५। गोडसे० पृ० १०८ ।

रानी से अलग होने के पश्चात मोरोपन्त दतिया और उन्नाव के निकटवर्ती क्षेत्रों में १०-१२ दिनों तक भटकते रहे। अन्त में वह दतिया के निकट अकोला में बन्दी बनाकर फांसी भेज दिये गये। यहां उसे तथा रानी के एक अन्य सेवक लालूबख्शी को १६ अप्रैल सन् १८५८ को फोकनबाग के निकट ही फांसी पर चढ़ा दिया गया।

७८ - स्मिथ० पृ० १३६, होलकोम्ब० पृ० ५१, ५२।

इधर रानी के नगर से निकलने के तनिक ही पश्चात रोज़ के द्वारा बिछवाये गये टेलीग्राफ तारों से अंग्रेज अधिकारियों को उसके निकल भागने की खबर लगी । ह्यूरोज़ ने हैदराबाद घुड़सवार सेना के लेफ्टीनेन्ट डौकर (DAWKER) और कैप्टन फोर्ब्स (FORBES) को रानी का पीछा कर उसे पकड़ लेने को रवाना किया।[७९] डौकर अपने दल सहित इतनी तेजी से बढ़ा कि वह रानी के भांडेर पहुंचने के तनिक ही पश्चात उसके पड़ाव के समीप जा पहुंचा । रानी भाण्डेर पहुंचने पर वहां घोड़ों को विश्राम देने और दामोदरराव को थोड़ा सा कलेवा ~~करने~~ कराने के लिए रुकी ही थी कि उसे डौकर के सवारों की टापों की आवाज सुनाई दी । वह अपने साथियों सहित कलेवे को अधूरा ही छोड़ अपने घोड़ों पर चढ़ वहां से बच निकली । डौकर को अध खाये कलेवे का सामान पड़ा मिला और वह पल भर भी न रुककर रानी के पीछे हो लिया । दो एक मील आगे बढ़ते ही डौकर रानी के एकदम समीप जा पहुंचा । कोई चारा न देख रानी ने उसे रोकने के लिए मुड़कर एकाएक उस पर हमला कर उसे अपनी तलवार से बुरी तरह घायल कर दिया।[८०] जिससे डौकर की प्रगति रुक सी गई, और रानी इसका फायदा उठाकर तुरन्त वायु वेग से काल्पी की ओर उड़ चली । रानी अभी अधिक दूर न जा पाई थी कि उसका घोड़ा जो डौकर से हुई मुठभेड़ में घायल हुआ था, गिर कर मर गया । सौभाग्य से रानी को वहीं तत्काल ही गांव से एक भूरा घोड़ा प्राप्त हो गया और वह तुरन्त ही उस पर जीन कसकर अपने लक्ष्य काल्पी की ओर बढ़ चली । रानी लगभग ८१ मील का मार्ग तय कर अर्धरात्रि को काल्पी जा पहुंची । इसी दिन तात्याटोपे भी काल्पी आ पहुंचा था।[८१]

---

७९ - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, कुहरा० पृ० ३५, स्मिथ० पृ० १३६ ।

८० - फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ३५७२-३५७५, १५ अक्टूबर १८५८ नं० ५५, फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० २६७, स्मिथ० पृ० १३६-१३७ ।

८१ - कुहरा० पृ० ३५, गोडसे० पृ० ६५ ।

६ - कोंच - काल्पी के युद्ध -

इधर ह्यूरोज़ रानी व अन्य विद्रोहियों के विरुद्ध काल्पी की ओर तत्काल ही न बढ़ सका क्योंकि उसे इस बीच झांसी की व्यवस्था करनी थी। उसके सैनिक लगातार १७ दिनों के युद्ध से ऊब चुके थे अतः उन्हें अब विश्राम की आवश्यकता थी। झांसी में अंग्रेजी शासन व्यवस्थित रूप से जम जाने के पश्चात ही रोज़ ने २५ अप्रैल को आगे बढ़ने की योजना बनाई। उसने झांसी की सुरक्षा के लिए लेफ्टीनेन्ट कर्नल लिड्डेल की कमान में एक सैनिक टुकड़ी रखकर प्रथम ब्रिगेड के साथ २५-२६ अप्रैल की मध्य रात्रि को काल्पी की ओर कूच किया।[८२] उसने अपनी द्वितीय ब्रिगेड को फिलहाल झांसी में ही रहने दिया और उसे दो दिन बाद अपने पीछे आने के निर्देश दिये। मेजर गौल और मेजरऔर के नेतृत्व में हैदराबाद सैनिक टुकड़ी बानपुर और शाहगढ़ के राजाओं का दमन करने के लिए २२ अप्रैल की रात्रि को ही रवाना की जा चुकी थी।[८३]

काल्पी पहुंचने पर रानी ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध फिर से मोर्चा लेने के लिए राव साहब तथा तात्याटोपे से मंत्रणा की, जिसके फलस्वरूप यह तय हुआ कि रानी राव साहब की एक सैनिक टुकड़ी लेकर फिर से झांसी की ओर बढ़ेगी।[८४] तदनुसार तात्या टोपे और रानी ४ हजार सैनिक तथा पांच तोपों के साथ अंग्रेजों का सामना करने के लिए काल्पी से ५२ मील दक्षिण, कोंच आ पहुंचे।[८५] शाहगढ़, बानपुर के

---

८२ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० ६८, स्मिथ० पृ० १४३।

८३ - मैलसन० भाग ५ पृ० १२०, एडवर्डस० पृ० १७३, स्मिथ० पृ० १४३-१४४।

८४ - मैलसन० भाग ५ पृ० १२०, ३०७।

८५ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १३२, १३३, २२१, २२२, ५३८।

राजा, बिल्वाहा, आप्टिया, नौगांव, बरौदा और अकौठी के ठाकुरों ने भी अंग्रेजों का सामना करने के लिए कौंच के निकट पड़ाव डाला।[८६] इस बीच ह्यूरोज़ द्वारा भेजी गई अंग्रेजी सेना मेजर गौल के नेतृत्व में कौंच आ पहुंची। किन्तु रानी के सैनिकों द्वारा १ मई १८५८ को कौंच से पूंछ[८७] तक खदेड़ दी गई। इसी दिन ह्यूरोज़ भी अपनी प्रथम ब्रिगेड सहित आ पहुंचा। इधर मेजरओर के सैनिक दल ने बेतवा पार कर बानपुर और शाहगढ़ के राजाओं पर आक्रमण कर दिया। बानपुर और शाहगढ़ के राजा अंग्रेजी आक्रमण का सामना करने के पूर्व ही कोटरा से बेतवा पार कर भाग खड़े हुए। उनकी एक तोप अंग्रेजों के हाथ लगी। अब ह्यूरोज़ ने मेजरओर को कौंच की ओर बढ़ने के आदेश दिये।[८८]

इसी बीच ह्यूरोज़ अपनी जिस गति ब्रिगेड को २५ अप्रैल को झांसी में अपने दो दिन बाद अनुसरण करने का आदेश देकर छोड़ आया था, ५ मई को वह भी कौंच आ पहुंचे। ह्यूरोज़ की अपनी सेना और उसके तुरन्त ही पश्चात झांसी से आने वाली द्वितीय ब्रिगेड से अंग्रेजी सेना की शक्ति बढ़ी और उनमें आत्म विश्वास भी बढ़ गया। कौंच पर आक्रमण करने सेपूर्व ह्यूराज ने मार्ग में कौंच से १० मील पहले लौहारी की मजबूत गढ़ी, जो विद्रोहियों के हाथ पड़ चुकी थी लेने का निश्चय किया। उसेने मेजरगौल को लौहारी पर आक्रमण करने के आदेश दिये। मेजर गौल ने विद्रोही सैनिकों को परास्त कर गढ़ी पर अधिकार तो कर लिया किन्तु विद्रोहियों ने जम कर युद्ध किया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी सेना के बहुत से - सिपाही तथा दो अफसर खेत रहे।[८९]

---

८६ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० ५३८, २५ जून १८५८ नं०८२-८३।

८७ - पूंछ- कौंच से १४ मील ।

८८ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० २२१-२२२, मैलसन० भाग ५, पृ० १२०-१२१।

८९ - मैलसन० भाग ५, पृ० १२१, स्मिथ० पृ० १४४-१४६ ।

लोहारी की गढ़ी पर अधिकार कर अंग्रेजी सेना ने ६ मई की प्रात: कोंच की ओर कूंच किया । यहां जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि रानी, तात्याटोपे और कोंच के सूबेदार के नेतृत्व में विद्रोहियों की सेना का अच्छा खासा जमाव था[६०]। ह्यूरोज़ ने इस आक्रमण में बड़ी सावधानी से काम लिया । वह विद्रोहियों पर अचानक नहीं जा पड़ना चाहता था, बल्कि पहले उसका इरादा कोंच को तीनों ओर से घेर कर फिर आक्रमण करने का था । इस प्रकार उसका इरादा विद्रोहियों को प्राय: समाप्त कर देने का था । सर ह्यूरोज़ ने विद्रोहियों को घेरने की जो योजना बनाई थी उसके अनुसार उसने प्रथम ब्रिगेड को बांयी ओर, द्वितीय ब्रिगेड को मध्य में और हैदराबाद सैनिक टुकड़ी को दायीं ओर से आक्रमण करने के लिए नियत किया । इसी योजना के अनुसार प्रथम ब्रिगेड ने बायीं ओर से आक्रमण करने के लिए नागपुरा[६१] गांव में पड़ाव डाला । इसी प्रकार द्वितीय ब्रिगेड ने सामने से आक्रमण करने के लिए जुमेर और मेजरओर के नेतृत्व में हैदराबाद सैनिक टुकड़ी ने दायीं ओर उमरी नामक गांव में मोर्चा जमाया[६२]। ह्यूरोज़ ने कोंच से २ मील पर यह स्थिति रखी । वह विद्रोही नेताओं और उनके सैनिकों को बच निकलने के लिए कोई मार्ग नहीं देना चाहता था । अत: मैज़रगौल के नेतृत्व में उसने घुड़सवार सेना की एक टुकड़ी कोंच के निकट जंगलों में भेजदी । इस प्रकार उसने अपनी तैयारियां पूर्ण कर ७ मई को घेरा डालने वाली तोपों को अपनी स्थिति संभालने के आदेश दिये । इसी बीच मेजरगौल ने रोज़ को सूचना भेजी कि विद्रोही जंगलों से निकल नगर के निकट अपने घुड़सवार दलों के साथ भाग निकले । जब अंग्रेजी तोपखाने ने विद्रोहियों के अड्डों पर निशाना बांधकर आग उगलनी शुरु करदी । पेशवा की सेना ने अंग्रेजी सेना का डटकर सामना किया, किन्तु इतने में ही ह्यूरोज ने अपनी सेना को बायीं और दाईं ओर से भी आक्रमण

---

६० - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० ८५ ।

६१ - नागपुरा- कोंच से २ मील ।

६२ - मेलसन० भाग ५, पृ० १२२, स्मिथ० पृ० १५० ।

करने के आदेश दिये। अब तात्याटोपे के सैनिक किले से निकलकर नगर की ओर के जंगलों में भाग गये। तात्याटोपे, रानी, कौंच के सूबेदार रामगोविन्दराव ने भी भागने में ही कुशल समझी। तात्याटोपे भागकर जालौन के निकट चुरखी[६३] जा पहुंचा। रामगोविन्दराव और रानी पीछे हटकर उरई जालौन से होते हुए काल्पी चले आये[६४]। माधौगढ़ का सूबेदार जो उनके साथ ही था वह भी बच निकला[६५]। अंग्रेजी सेना ने भागते हुए विद्रोहियों का पीछा किया। लगभग ३५०-४०० सैनिक मारे गये और उनकी ६ तोपें तथा भारी युद्ध सामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी। इस युद्ध में अंग्रेजों का भी कम नुकसान नहीं हुआ। तीव्र गर्मी के कारण उन्हें बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा। और तो और ह्यूरोज़ को भी ४ बार अपने घोड़े को धूप से अलग ले जाना पड़ा। डाक्टर ने जब उसके ऊपर ठण्डे पानी की धार छोड़ी तब जाकर ह्यूरोज़ आगे बढ़ सका। ऐसी सख्त गर्मी में भी अंग्रेजी सेना ने उन्हें केवल १ घण्टे के युद्ध में ही तितर बितर कर दिया[६६]।

कौंच की पराजय का असर विद्रोही नेताओं पर बड़ा बुरा पड़ा। उनका नैतिक बल तो कम हुआ, पर साथ ही एक दूसरे को उत्तरदायी ठहराने के लिए उन्होंने जो एक दूसरे पर दोषारोपण किया उससे उनके बीच मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। रानी जब काल्पी पहुंची तब वहां की स्थिति भी सुरक्षित नहीं थी। काल्पी में राव साहब की सेना के अधिकांश सैनिक रानी और तात्याटोपे के साथ कौंच चले गये थे और वहां की पराजय के पश्चात बहुत थोड़े से सैनिक रह गये थे जिन्हें

---

६३ - चुरखी - कौंच से २० मील।

६४ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० ७३-७४, ८०, १४२, २१०, ५८८, ५६१, ३० अप्रैल १८५८ नं० ३०८, मैलसन० भाग ५, पृ० ३०७, स्मिथ० पृ० १५०-१५१।

६५ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० १४२।

६६ - मैलसन० भाग ५ पृ० १२३, एडवर्डस० पृ० १७४।

सेना की संज्ञा नहीं दी जा सकती थी।[९७] तभी बांदा का नवाब अली - बहादुर २० मई को व्हिटलांक द्वारा परास्त किये जाने पर २००० सैनिकों और कुछ तोपों के साथ शाहपुर घाट से जमुना पार कर काल्पी जा पहुंचा।[९८] इससे रानी और राव साहब का मनोबल कुछ बढ़ा और फिर अंग्रेजों का जोरदार सामना करने की योजना पर विचार किया गया।

इधर ह्यूरोज़ विद्रोहियों को दम लेने का भी अवसर नहीं देना चाहता था। अत: कोंच का प्रबन्ध गुरसराय के सूबेदार को सौंप दिया। उसकी रक्षा के लिए उसने २५०-३०० सैनिक तथा दो तोपें भी कोंच में छोड़दीं।[९९] अब ह्यूरोज ने ६ मई को सेना सहित उरई के मार्ग से काल्पी की ओर कूच किया और १५ मई को काल्पी से ६ मील पूर्व में गुलावली नामक स्थान पर पड़ाव डाला।[१००] दूसरी ओर कर्नल मैक्सवेल के नेतृत्व में ८८ वीं पलटन के दो भाग, सिक्खों की एक पलटन तथा ऊंटों का रिसाला भी २१ मई को १ बजे प्रात: जमुना के उत्तरी किनारे पर आ पहुंचा।[१०१]

---

९७ - होल्कोम्ब० पृ० ५८। होल्कोम्ब के अनुसार काल्पी में केवल ११ सैनिक रह गये थे।

९८ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० ५६१, २५ जून १८५८ नं० ६२, फा० पोलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० १४८, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक) नं० १४६६।

९९ - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० ७४, २५ जून १८५८ नं० १२७।

१०० - फा० सी० कन्स० २८ मई १८५८ नं० ८०, २५ जून १८५८ नं० १२७।

१०१ - फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० २५७, २५ जून १८५८ नं० १२७, स्मिथ० पृ० १६३।

विद्रोहियों को अंग्रेजी सेना के गुलावली तक बढ़ आने की खबर लगते ही उन्होंने १५ मई को उतावली में अंग्रेजी सेना पर छापा मार कर उसका रसद मार्ग बन्द कर देना चाहा । किन्तु इस छापे का अंग्रेजी सेना पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा[१०२] । ह्यूरोज़ १६ से २० मई तक काल्पी पर आक्रमण करने की तैयारी में लगा रहा । साथ ही इस बीच उसने विद्रोहियों को व्यस्त रखने तथा अपनी तैयारियों पर से उनका ध्यान हटाने के लिए छुट पुट गोला बारी भी जारी रखी । इसी बीच मैक्सवेल के नेतृत्व में एक सैनिक दल २० मई को जमुना के उत्तरी किनारे से नदी पार कर ह्यूरोज़ की सेना के साथ आकर सम्मिलित हुआ[१०३] । उसने २१ मई को किले तथा नगर पर गोला बारी प्रारम्भ करदी । ह्यूरोज़ की योजना थी कि जब मैक्सवेल की सेना जमुना के उत्तरी किनारे से किले पर आक्रमण करेगी, तभी वह किले के दक्षिणी भाग पर हमला बोल देगा । ह्यूरोज़ को २१ मई को अपने जासूसों से खबर लगी कि विद्रोहियों ने अगले ही दिन अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करने की योजना बनायी थी[१०४] । विद्रोही सैनिक २२ मई को बांदा के नवाब अलीबहादुर और रावसाहब के नेतृत्व में लगभग १० बजे प्रातः काल्पी जलालपुर मार्ग तक बढ़ आये और उनके तोपखाने में सामने और बायीं ओर से गोला बारी प्रारम्भ करदी । रोज़ की तोपों ने भी रानी की गोला बारी का जवाब दिया । किन्तु तीव्र गर्मी के कारण अंग्रेजी सेना युद्ध भूमि पर अधिक देर तक जम न सकी और अपनी स्थिति से खदेड़ दी गई । इसी बीच हैदराबाद सैनिक टुकड़ी के आ जाने से युद्ध ने पांसा पलटा और राव साहब की सेना परास्त होकर पीछे भागी[१०५] ।

इस प्रकार काल्पी की सेना के अग्र भाग की पराजय से निराश होकर राव साहब, बांदा के नवाब आदि काल्पी छोड़कर भागने का विचार करने लगे, किन्तु रानी ने साहस से काम लिया और घोड़े पर सवार हो लाल वर्दी सैनिकों के साथ आगे बढ़कर अंग्रेजी सेना पर दायीं ओर से अचानक जा टूटी । इस अप्रत्याशित आक्रमण से अंग्रेज पीछे हटने लगे । रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजी

---

१०२ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० १२७, १३४, १३७-१४० ।

१०३ - मैलसन० भाग ५, पृ० १२७ ।

१०४ - स्मिथ० पृ० १६४ ।

तोपों से २० फीट की दूरी तक अंग्रेजी सैनिकों को मारती काटती आगे बढ़ गई। रानी के साहस से काल्पी के अन्य सैनिक दलों ने भी जोश में आकर अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ और अंग्रेजी तोपें बन्द हो गई[१०६]। इतने में ही ब्रिगेडियर स्टुअर्ट के आते ही स्थिति संभल गई और उसने अंग्रेज तोपचियों को उत्साहित किया। उनकी तोपें एक बार फिर से आग उगलने लगीं। ह्यूरोज़ भी स्वयं स्थिति संभालने के लिये ऊंटों की सेना लेकर एकदम आगे बढ़ आया और उसने विद्रोहियों पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया। अब रानी के सैनिक पीछे हटने लगे और उनमें भगदड़ मच गई। रानी ने अपने भय त्रस्त सैनिकों को उत्साहित करना चाहा पर जान बचाने के लिए भागते हुए सैनिकों को इतना समय ही कहां था कि वे रानी की पुकार सुनते। उनके पैर उखड़ चुके थे और अब उनमें मोर्चा लेने की दम नहीं रह गई थी। निरुपाय होकर रानी ने राव साहब और बांदा के नवाब सहित वहां से किसी तरह निकल भागने में ही कुशल समझी[१०७]।

अंग्रेजी सेना ने भागते हुए विद्रोहियों का पीछा किया। लगभग ५०० - ६०० विद्रोही मारे गए तथा उनका बहुत सा गोला बारूद और ८ तोपें अंग्रेज सैनिकों के हाथ लगीं। सूर्य की तीव्र गर्मी के कारण अन्त में उन्हें विद्रोहियों का पीछा छोड़ने को विवश होना पड़ा[१०८]। उन्होंने किले तथा नगर पर अधिकार कर २४ मई को किले पर यूनियन जैक का झण्डा फहराया। इसी दिन इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया का ३९ वां जन्म दिन था इसलिए उनकी काल्पी की जीत की खुशी दुगनी हो गई और उन्होंने दूने उल्लास से जश्न मनाया[१०९]। ह्यूरोज़ ने सोचा कि अब उसका कार्य समाप्त हो गया है और लगभग ५-६ महीनों के युद्ध से वह तथा उसके सैनिक ऊब से गये थे।

---

१०६ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० १८२, एथवड्स० पृ० १७७।

१०७ - मैलसन० भाग ५ पृ० १२८, एथवड्स० पृ० १७७, होम्स० पृ० ५१९, स्मिथ० पृ० १६७-१६८।

१०८ - फा० सी०कन्स० २५ जून १८५८ नं० १४०, २६५।

१०९ - एथवड्स० पृ० १७८।

गर्मी के कारण अब युद्ध करने की उनकी सारी शक्ति जैसे समाप्त हो चुकी थी । अत: अब वह शीघ्र ही पूना लौट जाना चाहता था । किन्तु तभी २५ मई को कर्नल राबिन्सन का, जिसे विद्रोहियों का पीछा करने के लिए भेजा गया था, सन्देश मिला कि बागी ग्वालियर की ओर गये हैं । उसे ४ जून को यह भी खबर लगी कि उन्होंने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया था ।[११०] इससे ह्यूरोज का सारा कार्यक्रम अस्त व्यस्त हो गया ।

१० - स्वातंत्र्य संघर्ष का अन्तिम चरण -

इधर रानी राव साहब बांदा के नवाब आदि ने काल्पी के युद्ध में परास्त होकर एक परिषद बुलाई जिसमें सैनिकों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे । सिपाही अवध जाना चाहते थे किन्तु रानी झांसी में करेरा या बुन्देलखण्ड के किसी अन्य स्थान को अधिक उपयुक्त समझती थीं । राव साहब दक्षिण को महत्व दे रहा था । अन्त में रानी के सुझावानुसार ग्वालियर जाकर सिंधिया से सहायता प्राप्त करने की बात निश्चित हुई ।[१११] सिंधिया के पूर्वज कभी पेशवाओं के अधीन सामन्त थे ।[११२] इसलिए उन्हें आशा थी कि यदि वे २३ वर्षीय सिंधिया राजा जयाजीराव की मराठा जाति और राष्ट्र सम्बन्धी भावनाओं को उभाड़ सके तो वह उनके साथ हो जायगा और तब हारी हुई बाजी जीती जा सकेगी । रानी का यह सुझाव सबको उचित लगा और विद्रोही नेताओं ने ग्वालियर की ओर तेजी से कूच किया । विद्रोही ग्वालियर से ४६ मील दक्षिण पश्चिम में गोपालपुर गांव आ पहुंचे ।[११३] यहां स्मरण रहे कि कौंच की पराजय के पश्चात तात्याटोपे -

---

११० - मैलसन० भाग ५ पृ० १४८ ।

१११ - सेन० पृ० २० २६७-२६८ ।

११२ - सिंधिया के पूर्वज रानो जी, अप्पा, दत्ताजी और सुप्रसिद्ध महादाजी सिंधिया आदि पूना के पेशवाओं के योग्य और विश्वस्त सामन्त रहे थे । सिंधियां वंश के संस्थापक रानो जी सिंधिया पेशवा बाजीराव प्रथम की चप्पलें उठाया करते थे । सेन० पृ० २६८ पाद टिप्पणी ।

११३ - होल्मोम्स० पृ० ६३, मैलसन० भाग ५, पृ० ३०७, स्मिथ० पृ० १७०, होम्स० पृ० ५३५ ।

जालौन से ४ मील पर चुरखी अपने पिता से मिलने चला गया था । काल्पी में विद्रोहियों की पराजय की खबर लगते ही वह भी चुरखी से भागकर गोपालपुर में इन लोगों से आकर सम्मिलित हुआ ।[११४]

अब रानी राव साहब, तात्याटोपे आदि के नेतृत्व में विद्रोही ४००० घुड़सवार सेना, ७००० पैदल और १२ तोपों सहित गोपालपुर से बढ़कर २८ मई को आमन गांव आ पहुंचे और दो ही दिन पश्चात ३० मई को ग्वालियर से ६ मील दूर बड़ागांव में पड़ाव डाला ।[११५] राव साहब ने यहां सिंधिया को अपने आगमन की सूचना इस आशा से भेजी कि सिंधियां सम्भवत: उनका स्वागत करेगा । किन्तु सिंधिया अपने स्वार्थों के प्रति अधिक सचेत था और अंग्रेजों की शक्ति में अडिग आस्था होने के कारण वह विद्रोहियों की हरती हुई बाजी पर दाव लगाना नहीं चाहता था । अस्तु विद्रोहियों की ग्वालियर की ओर की प्रगति रोकने और अंग्रेजों के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के लिए उसने जैसे राव साहब के सन्देश के प्रति उत्तर में अपनी एक विशाल सेना ३१ मई को उनका सामना करने के लिए मुरार की छावनी की ओर रवाना करदी और दूसरे दिन अर्थात १ जून मंगलवार को स्वयं उसके साथ मुरार से २ मील पूर्व में बहादुरपुर आ पहुंचा । इस समय तक रानी, राव साहब, तात्याटोपे आदि भी बढ़कर उसके समीप आ पहुंचे थे ।[११६] यहीं उनकी मुठभेड़ सिंधियां की सेना से हुई लेकिन रानी के शौर्य और उसके उच्च लक्ष्यों की प्रसिद्धि सिंधिया की सेना में पहुंच चुकी थी । अब उन्होंने सिंधिया के विरुद्ध बगावत करदी और वे सिंधिया के गद्दारी पूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर उससे विमुख हो गये । सिंधिया के तोपचियों ने तोपे छोड़दीं ।[११७]

---

११४ - होम्स० पृ० ५३५, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० १९१, स्मिथ० पृ०१७०, १७५ ।

११५ - होम्स० पृ० ५३५ ।

११६ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० १००, होम्स० पृ० ५३६, स्मिथ० पृ० १७८-१७९ ।

११७ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० १००, ३० जुलाई १८५८ नं० ४४, होम्स० पृ० ५३६ ।

अब सिंधिया ने ग्वालियर से निकल भागने में ही कुशल समझी । वह अपने मंत्री दिनकर राव सहित धौलपुर के मार्ग से आगरे की ओर भाग खड़ा हुआ।[११८] बैजाबाई के नेतृत्व में रानियों ने भाग कर नरवर के गढ़ में शरण ली।[११९] लक्ष्मीबाई, राव साहब आदि ने ग्वालियर के किले और नगर पर अधिकार कर लिया।[१२०] मेज़र मैकफरसीन के अनुसार झांसी की रानी को २० हजार रुपये मिले । बांदा के नवाब को ६ हजार रुपये, राव साहब ने स्वयं १५ हजार सोने की मुहरें लीं । ली गई सम्पूर्ण धनराशि का हिसाब १६ लाख से कुछ कम था, जबकि ढेढ़ लाख रुपये का कोई हिसाब ही नहीं था।[१२१]

इधर कर्नल राबर्टसन जो कि ह्यूरोज़ के आदेशों पर विद्रोहियों का पीछा कर रहा था, उसने १ जून को रोज़ को खबर दी कि विद्रोहियों ने ग्वालियर मार्ग पर अधिकार कर लिया है।[१२२] ह्यूरोज़ ने स्टूअर्ट के नेतृत्व में ८६ वीं पैदल सेना, २५ वीं बंगाल पैदल सेना के ४ दल, २ दो १८ पौंडर तोपें ग्वालियर मार्ग पर राबर्टसन की सेना के साथ शामिल होने के लिए तुरन्त रवाना करदी । राबर्टसन और स्टूअर्ट की सम्मिलित सेना ३ जून को मुरार आ पहुंचे।[१२३]

---

११८ - फा० सी० कन्स० २५ जून १८५८ नं० १००, ३० जुलाई १८५८ नं० ४४, होम्स० पृ० ५३५, स्मिथ० पृ० १७९ ।

११९ - सेन० पृ० ३०१ ।

१२० - फा० सी० कन्स० ३० जुलाई १८५८ नं० ४४ ।

१२१ - सेन० पृ० ३०१ ।

१२२ - मैलसन० भाग ५ पृ० १४८-१४९, होम्स० पृ० ५३६ ।

१२३ - होम्स० पृ० ५३६, स्मिथ० पृ० १८२, मैलसन० भाग ५ पृ० १४९ ।

ग्वालियर का घेरा डालने के लिए ह्यूरोज ने लैफ्टीनेन्ट कर्नल और को हैदराबाद सेना सहित झांसी से पनियार की ओर बढ़ने के आदेश भेजे। पनियार सीपरी ग्वालियर रोड पर स्थित है। ब्रिगेडियर स्मिथ इस समय चन्देरी के निकट था। उसे भी कोटा की सराय[१२४] तक बढ़ आने के आदेश भेजे गए। कर्नल रिडेल को भी आगरा ग्वालियर मार्ग पर किला तोड़ तोपों के साथ बढ़ने के निर्देश दिये गए।[१२५] ह्यूरोज स्वयं जान-बूझकर पीछे रह गया था, क्योंकि वह विद्रोहियों से अन्तिम निर्णायात्मक युद्ध की पूरी तैयारियां करके ही आगे बढ़ना चाहता था। उसने ६ जून तक यह तैयारियां पूरी करलीं और फिर तेजी से मंजिले पार करता हुआ ग्वालियर की ओर बढ़ चला।[१२६] वह १२ जून को इन्दुर्खी पहुंचा जहां स्टुअर्ट की सेना का उससे मिलान हुआ। इन्दुर्खी से कूच करता हुआ वह १६ जून को प्रात: ६ बजे मुरार से २ मील पूर्व में बहादुरपुर नामक गांव आ पहुंचा। इसी दिन राबर्ट-नेपियर भी बहादुरपुर में उससे आ मिला।[१२७] ह्यूरोज़ ने काल्पी से ग्वालियर तक की यात्रा लगभग १० दिनों में पूरी की थी। कहना न होगा कि उसके कूच की गति तेज न थी, जिसकी संभवत: यह कारण थे कि एक तो वह विद्रोहियों की गतिविधियों पर नज़र रखता हुआ आगे बढ़ रहा था और दूसरे उसकी योजनानुसार ग्वालियर तक पहुंचते पहुंचते इन्दुर्खी में १२ जून को स्टीवार्ट का मिलना और १६ जून को बहादुरपुर में नेपियर का उसके साथ शामिल हो जाना सम्भवत: उसकी पूर्व योजनानुसार ही निश्चित हो चुका था। फिर

---

१२४ - कोटा की सराय - ग्वालियर से ४ मील दक्षिण पूर्व में।

१२५ - स्मिथ० पृ० १८६-१८७ ।

१२६ - होम्स० पृ० ५३७, मैलसन० भाग ५ पृ० १५१, स्मिथ० पृ० १८३ ।

१२७ - होम्स० पृ० ५३७, मैलसन० भाग ५ पृ० १५१, स्लवर्डस पृ० १८३, स्मिथ० पृ० १८३, १८७ ।

विद्रोही ग्वालियर में जम से गये थे और वहां राबर्टसन और स्टुअर्ट उनकी गतिविधियों पर नजर रखे हुए, ह्यूरोज़ को उनके बारे में सूचनाये भेज ही रहे थे। सम्भवत: यह बात भी थी कि इस बार ह्यूरोज़ विद्रोहियों से निर्णात्मक युद्ध करना चाहता था और उसे इसका पूरा पूरा ध्यान था कि ग्वालियर की सैन्य सामग्री, किला, महल और खजाने हाथ में आ जाने से विद्रोहियों की शक्ति बढ़ गई थी और इस बार मुकाबला जमकर होना था। अत: वह अपनी सारी सैनिक शक्ति एकत्र कर इसके लिए प्रयत्नशील था कि अगर हो सके तो ग्वालियर में विद्रोही नेताओं के इस जमघट को एक बार ही निवटाले। ह्यूरोज़ ने बहादुरपुर में आकर अंतिम पड़ाव डाला जहां से १ जून को सिंधिया पीठ दिखाकर आगरे भाग गया था। इधर विद्रोही नेता और उनके सैनिक विजय के नशे में मस्त होकर राग रंग में इतने खो गये थे कि अंग्रेजी सेना के मुरार तक बढ़ आने पर भी उन्हें अपने खतरे का अहसास ही नहीं हुआ था। इसलिए उनकी समस्त सेनायें अस्त व्यस्त पड़ी थीं। उनको व्यवस्थित ढंग से जमाने के लिए कोई प्रबन्ध भी नहीं किया गया था। जब अंग्रेजी सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी हो गई तब जाकर राव साहब को खबर लगी और उन्होंने तात्याटोपे को सेना तैयार रखने के आदेश दिये तथा वह स्वयं दान पुण्य में ही लगा रहा।[१२८]

तात्या टोपे जाह जाह मोर्चा बन्दी करने में लगा हुआ था कि इतने में ही अंग्रेजी सेना ने आक्रमण कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण से विद्रोही सेना घबड़ा उठी। फिर भी मुरार की छावनी में अंग्रेजी सेना और विद्रोहियों में दो घण्टे तक जमकर युद्ध हुआ। विद्रोही आगरा ग्वालियर मार्ग से खदेड़ दिये गये और सैनिक बुरी तरह पिटकर किले लौट आये।[१२९]

---

१२८ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० २२३, स्मिथ० पृ० १८८ ।

१२९ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस), पृ० २२४-२२५, हौलोम्ब० पृ० ६६, होम्स० पृ० ५३७ ।

११ - दीप शिखा की अन्तिम चमक -

मुरार की छावनी के पतन का समाचार सुनते ही राव साहब, तात्याटोपे आदि नेताओं के होश-हवास ही उड़ गये। अब उन्होंने रानी से भी सलाह मशविरा करना चाहा किन्तु रानी राव साहब और तात्या टोपे से उनका प्रबन्ध अच्छा न होने के कारण रुष्ट थीं। फिर भी बिना लड़े चारा ही क्या था ? रानी अपना अन्तिम दाव लगाना चाहती थी और ग्वालियर का युद्ध उसे जैसे अन्तिम संग्राम सा ही लग रहा था, इसलिए विद्रोही नेता एक बार फिर शत्रु से लोहा लेने की तैयारी में लग गये। रानी को किले के बाहर के पूर्वी ओर के भागकी रक्षा का भार दिया गया[130]।

इस प्रकार इधर १६ जून को ह्यूरोज़ ने मुरार की छावनी पर अधिकार किया, उधर स्मिथ राजपूताना फील्ड फोर्स सहित १७ जून की प्रात: लगभग साढ़े सात बजे ग्वालियर से ४ मील दक्षिण पूर्व में कोटा की सराय आ पहुंचा[131]। आंतरी में १४ जून को उससे मेजर ओर, उसकी हैदराबाद सेना भी आकर मिल गई थी। मेजरओर हैदराबाद रेजीमेण्ट को लेकर ग्वालियर से १५ मील पर सीपरी रोड पर स्थित पनियार पहुंचा जिससे बागियों के दक्षिण की ओर बच निकलने का मार्ग ही कट गया[132]। इसी दिन (१७ जून १८५८) विद्रोहियों और अंग्रेजी सेना में जमकर संघर्ष होने की संभावना सी थी। स्मरण रहे कि रानी को किले के बाहर के सबसे महत्वपूर्ण पूर्वी ओर के भाग की रक्षा का भार सौंपा गया था। अत: वह अपने सैनिक दल सहित अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए तैयारियां करने लगी। उसने फौजी पोशाक धारण की थी। सिर में जरीदार चन्देरी का साफा, शरीर में अंगरखा, पांव में बढ़िया पजामा और गले में हीरों का हार पहनकर वह साक्षात

---

१३० - स्मिथ० पृ० १६० ।

१३१ - मैलसन० भाग ५ पृ० १५३, एडवर्डस पृ० १८३ - १८४, स्मिथ० पृ०१६१ ।

१३२ - होल्कोम्ब० पृ० ६५, एडवर्डस पृ०१८३-१८४ , स्मिथ० पृ० १६१ ।

रणचण्डी जैसी जान पड़ती थी।[१३३] रानी एक सुन्दर घोड़े पर सवार हो अपने सैनिक दल सहित किले से आगे बढ़ी और वह अपनी तोपों सहित स्मिथ की सेना से लगभग १५०० गज के फासले पर आ पहुंची। स्मिथ ने जब विद्रोहियों को अपनी ओर बढ़ते देखा तो वह थोड़ा चिन्तित हो उठा क्योंकि उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। पीछे हटना या भागना सैनिक मनोबल पर बुरा असर करता। इसलिए उसने यही अच्छा समझा कि स्वयं आगे बढ़कर विद्रोहियों पर जा टूटे और अगर सम्भव हो सके तो इस अप्रत्याशित आक्रमण से चकित और स्तम्भित शत्रु सेना को खदेड़ दे। यहां ध्यान रहे कि स्मिथ या उसकी सेना के किसी भी व्यक्ति को इसका पता न था कि रानी शत्रु सेना का नेतृत्व कर रही थी। १५०० गज का फासला ही क्या होता है? पलक झपकते ही दोनों दलों के सैनिक एक दूसरे के सामने आ गए। कर्नल रेन्स (RAINES) को पैदल सेना से आक्रमण करने के आदेश दिये गये। इस आक्रमण से विद्रोही सैनिक पीछे हटने लगे। वे अभी संभले भी नहीं थे कि स्मिथ के नेतृत्व में सवार उनके ऊपर जा टूटे।[१३४] किन्तु रानी के अप्रतिम शौर्य ने उनका उत्साह बनाये रखा और रानी के नेतृत्व में फिर उन्होंने मुड़कर इतने वेग से आक्रमण किया कि अंग्रेजी आक्रमणकारी सैनिक दल को पीछे हटना पड़ा। तभी उनकी निर्बल स्थिति देखकर कैप्टन हेनिज (HENEAGE) अपने चालीस पचास हुजार सैनिकों सहित उन पर टूट पड़ा। जिससे उखड़ते हुए अंग्रेज सैनिकों के पैर जम गये।[१३५] लेकिन फिर भी रानी और उसके सैनिकों ने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया। रानी स्वयं शत्रुओं से घिरी, दांतों से घोड़े की लगाम दबाये दोनों हाथों से तलवार भांजती हुई साक्षात् रणचण्डी सी प्रतीत हो रही थी। वह जीवन का मोह छोड़कर शत्रु सेना पर पिली हुई थी। रानी अपने दो तीन विश्वासपात्र सरदारों और कुछ सवारों के साथ मुख्य सेना से विलग हो गई थी। वह भागकर मुख्य सेना के साथ -

---

१३३ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३३ ।

१३४ - हौल्कोम्ब० पृ० ६७, स्टवर्ड्स पृ० १८४ ।

१३५ - स्मिथ० पृ० १६२ ।

सम्मिलित होना चाहती थी, किन्तु अंग्रेज उसके उद्देश्य को किसी तरह पूर्ण नहीं होने देना चाहते थे[१३६]। मौका पाते ही रानी तलवार भांजती शत्रु सेना के दल से अपना घोड़ा तेजी से निकाल भाग खड़ी हुई। तभी एक अंग्रेज की पिस्तौल की गोली से मुन्दर मारी गई[१३७]। रानी का घोड़ा एक नाले[१३८] के निकट पहुंच चुका था। घोड़ा नया था अतः वह नाला पार करने में हिच-किचाने लगा। सिंधिया के घोड़े ने मालिक का भरपूर बदला लिया। बाढ़ दागते हुए अंग्रेज सैनिक रानी के एकदम निकट आ पहुंचे थे। उनकी एक गोली रानी के बगल में लगी[१३९]। वह अभी संभली ही नहीं थी कि पीछे से एक हुजार

---

१३६ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३८ ।

१३७ - पारसनीस इसका नाम मुन्दर देता है जबकि हेमिल्टन अपनी रिपोर्ट में जोकि आगे उद्धृत की गई है इसे रानी की एक मुसलमान सेविका बताते हैं। जो कुछ भी हो इन रिपोर्टों से यह निश्चित हो जाता है कि रानी के साथ उसकी एक ऐसी सेविका भी थी जिसने अंतिम समय तक उसका साथ नहीं छोड़ा था।
लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २४०, वर्मा० पृ० ४८८, सावरकर० पृ० ४७१, फॉरेस्ट० भाग ४ पृ० १६२ ।

१३८ - बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के अनुसार यह दक्षिण पश्चिम की ओर सोन रेखा नाला था।

१३९ - मैलसन० भाग ५, पृ० १५४ - १५५, लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३८, २४०, फॉरेस्ट भाग ४, पृ० १६२, होम्स० पृ० ५३८ ।

सैनिक ने अपनी तलवार से रानी के सिर पर भरपूर वार किया । रानी का सिर दायीं ओर से आंख तक चिर गया और उनकी दायीं आंख भी बाहर निकल आई । गिरते गिरते रानी ने घूमकर अपने घातक पर तलवार चलाई और उसका कन्धा काट दिया । रानी के विश्वस्त सरदार गुल मुहम्मद ने बाद में उसका काम तमाम कर दिया । शेष दो चार अंग्रेज सवार मुड़कर भाग गये । इधर रामचन्द्र देशमुख गिरती हुई रानी को संभाले था । गुल - मुहम्मद, देशमुख और रघुनाथसिंह घायल रानी को तेजी से वहां से हटाकर पास ही एक बाबा गंगादास की कुटी में ले गये । रानी कुछ क्षण और जी फिर उसका प्राणान्त हो गया[१४०] । पास ही एक घास की गंजी लगी हुई थी, जिसमें बाबा गंगादास की कुटी की लकड़ियां डालकर उनकी दाह क्रिया की गई[१४१] ।

बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के अनुसार रानी को पहले संगीन का घाव लगा था, फिर गोली लगी और अन्त में तलवार के वार ने उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया । पारसनीस रानी को गोली लगने और तलवार के वार से सिर चिर जाने के साथ ही यह भी लिखते हैं कि उनकी छाती में किर्च भोंकी गई थी । हैमिल्टन के विवरण में रानी को केवल गोली लगने का उल्लेख किया गया है । होल्कोम्ब और मैकफर्सन भी केवल रानी को गोली लगने और फिर सिर पर तलवार का गहरा घाव लगने का उल्लेख करते हैं । इस प्रकार हैमिल्टन, मैकफर्सन और होल्कोम्ब आदि के विवरणों में रानी को गोली का घाव लगने के पहले संगीन का वार लगने तथा तलवार का सिर पर घाव लगने के पश्चात् किर्च भोंकने का उल्लेख नहीं करते । अस्तु लगता है कि जिन दो भागों ने रानी की इह लीला

---

१४० - फा० सी० कन्स० ३० जुलाई १८५८ नं० ५१, २७ अगस्त १८५८ नं०१५४।

१४१ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २३८-५१, वर्मा० पृ० ४८७-६२, मिडि० पृ० १२५, होल्कोम्ब० पृ० ६७, सावरकर० पृ० ४७२

पारसनीस के अनुसार रानी की दाह क्रिया उनके विश्वासपात्र सरदार रामचन्द्र देशमुख ने की । (पृ०२४७-२४८), जबकि तात्याटोपे की अपनी रिपोर्टानुसार उनकी दाह क्रिया रामराव गोविन्द, कोंच के सूबेदार ने की ।

समाप्त की उनमें से एक तो गोली का था और दूसरा तलवार का ।

सर राबर्ट हेमिल्टन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "रानी मारी गई है इस तथ्य की कोई सूचना ब्रिगेडियर स्मिथ के शिविर में उस समय तक नहीं थी । मेरे द्वारा उनको लिखे गये पत्र से उन्होंने इस बात को जाना । जो कुछ मैं निश्चय कर सका हूं उसके अनुसार रानी की मृत्यु उस समय हुई जब वह प्रात: कुछ आदमियों के साथ जिनमें राव साहब और तात्या भी थे, ऊंचाई से पीछा करने वालों को देख रही थी । रानी घोड़े पर सवार थी और उसके बिल्कुल पास एक स्त्री (परिवार में लम्बे अर्से से रहने वाली एक मुसलिम स्त्री) थी, जो किसी अवसर पर भी उसका साथ नहीं छोड़ती थी । इन दोनों को गोली लगी और वे गिर गईं । रानी करीब २० मिनिट तक जीवित रही । उसके बाद उसे फूलबाग़ ले जाया गया । रावसाहब उसकी सेवा में थे । इस घटना ने सरदारों को बिल्कुल बेचैन कर दिया और इससे उन्हें बड़ा भय हुआ । शीघ्रता से शरीर के दाह संस्कार के लिए प्रबन्ध किया गया । फूल-बाग़ और किले के बीच की नदी के पास सबे उनके मृत शरीर को एक पालकी में रखकर लाया गया । यहां से उसे पालकी के द्वारा मन्दिर के पास एक बाग़ के बाड़े के ऊपर से ले जाना असम्भव था, इसलिए सेवक उसे उठाकर उक्त बाड़े के ऊपर से एक स्थान में ले गये, जहां कुछ रमणीय विशाल वृक्षों के नीचे उसका दाह संस्कार किया गया । संस्कार किया जा चुका था कि घुड़सवारों की ८ वीं सेना बाग़ और मन्दिर के बिल्कुल समीप आ गई । यह कहा जाता है कि जो ६-७ आदमी भाग गये थे, काट डाले गये । यह स्पष्ट था कि दाह-संस्कार में विघ्न पड़ा था, क्योंकि जब मैं उस स्थान पर गया तो डाक्टर क्रिस्टीसन ने अस्थियों के टुकड़ों को उठाया, जिससे सिद्ध होता था कि अस्थियों को चुनने की सामान्य विधि का पालन नहीं किया जा सका था ।[१४२]

---

१४२ - फा० पोलि० कन्स० ३१ दिसम्बर १८५८ नं० ४२६३ ।

भोपाल की बेगम का एजेन्ट भवानीप्रसाद हेमिल्टन के साथ था। वह १८ जून १८५८ के पत्र में बेगम को लिखता है कि " रानी और नवाब दोनों ह्यूरोज़ की छावनी पर गोला बारी कर रहे थे, तभी एक गोले से बांदा के नवाब का हाथ उड़ गया और दूसरा गोला रानी के वक्ष को छीलता निकल गया जिसके फलस्वरूप वह मर गई।"[१४३] इन्दौर के महाराजा का एजेन्ट रामचन्द्र विनायक भी रानी की मृत्यु के विषय में लिखता है कि " फांसी वाली बाई १७ जून को युद्ध में मारी गई। यह ऐसे हुआ कि रानी युद्ध के समय युद्ध स्थल पर थी, वहीं उसे तलवार का वार लगा जिससे उसकी मृत्यु हो गई।"[१४४]

१२ - क्या रानी स्वराज्य के लिए लड़ी थी ? या उसने विवश होकर `विद्रोह` किया था

वैसे उपरोक्त शंका का समाधान इस ग्रन्थ के अध्याय ९ और १० में १८५७ के विप्लव के पूर्व फांसी राज्य की अंग्रेजों के अन्तर्गत स्थिति और तत्पश्चात् घटी घटनाओं से लेकर रानी के शासन हाथ में लेने के बीच की घटनाओं के विवरण से हो जाता है। फिर भी इन अध्यायों के बिखरे तथ्यों को क्रमबद्ध तरीके से रखकर उन पर विचार करने से उचित निष्कर्षों पर पहुंचने में सहायता मिलेगी। चूंकि इन तथ्यों के साक्ष्य उपरोक्त अध्यायों में उल्लिखित किये जा चुके हैं, इसलिए उनकी पुनरावृत्ति यहां नहीं की गई है।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० आर० सी० मजूमदार ने अपनी पुस्तक " दी सिपाय म्यूटिनी एण्ड दी रिवोल्ट आफ १८५७ " तथा भारतीय हिस्ट्री कांग्रेस के १६ वें अधिवेशन में " दी आउट ब्रेक आफ १८५७ " शीर्षक के लेख से जो मत प्रतिपादित किया है कि " रानी ने तब तक अंग्रेजों के विरुद्ध खुले रूप से घोषणा नहीं की थी जब तक कि सर ह्यूरोज़ ने वास्तव

---

१४३ - स्मिथ० पृ० १६७ ।

१४४ - वही पृ० १६७-१६८ ।

अपना सैनिक अभियान शुरु नहीं किया और तब उसने अनुभव किया कि वह अंग्रेजों को अपनी निर्दोषिता का विश्वास नहीं दिला सकती । जब उसके सामने फांसी में अंग्रेजों के हत्या के मुकदमें का सामना करने का विकल्प रखा गया जिसका कि निर्णय पूर्व निश्चित सा था, तब उसने युद्ध क्षेत्र में सम्मान पूर्ण मृत्यु ही वरण करने का फैसला किया।[१४५] लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए डा० मजूमदार के सहयोगी एक अन्य लब्ध-प्रतिष्ठित इतिहासकार डा० सुरेन्द्रनाथ सेन भारतीय सरकार द्वारा प्रकाशित अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ " १८५७ " (अट्ठारह सौ सत्तावन) में लिखते हैं कि " अंग्रेजों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के अपने सर्वोत्तम प्रयत्नों के बावजूद रानी को अंग्रेजों की पीढ़ाकारी कूटनीति के कारण विरोधी शिविर में जाना पड़ा ।[१४६]

श्री मजूमदार और श्री सेन की पुस्तकों के उपर्युक्त उद्धरणों का स्पष्ट सारांश यह है कि महारानी लक्ष्मीबाई का १८५७ के विद्रोह की पूर्व योजना में कोई हाथ नहीं था और न वह इसमें भाग लेना चाहती थी । यह तो तथाकथित " गदर " के प्रारम्भ हो जाने पर अंग्रेजों की बौखलाहट में रानी को विद्रोही समझ बैठने की भूल थी, जिसके कारण वह फांसी पर आक्रमण कर बैठे और रानी को फिर आत्म सम्मान की रक्षा के लिए तलवार पकड़नी पड़ी । अपने विषय की पुष्टि के लिये श्री सेन और मजूमदार निम्नलिखित तथ्य तर्क के रूप में उपस्थित करते हैं -

१ - यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हो सका कि रानी ने विद्रोह के पूर्व फांसी में अंग्रेजी सेना के हिन्दुस्तानी सिपाहियों को भड़काने के लिए कोई प्रयत्न किये थे ।

---

१४५ - प्रोसीडिंग्स १६ वीं हिस्ट्री कांग्रेस (१९५६, आगरा) पृ० ३१६ ।

१४६ - सेन० पृ० ३०४ ।

२ - ६ जून १८५७ को फांसी के विद्रोही सैनिकों ने जब फांसी के किले में अंग्रेजों को घेर लिया था, तब मार्टिन नामक एक अंग्रेज द्वारा लिखे गये रानी के दत्तक पुत्र दामोदरराव को २० अगस्त १८८६ के एक पत्र के अनुसार रानी ने, ` उनके ( अंग्रेजों के ) किले में जाने के बाद दो दिन तक भोजन सामग्री दी । करैरा से १०० टोपीदार बन्दूकों वाले आदमियों को मंगाकर उन्हें हमारी सहायता के लिए भेजा ।` इसी मार्टिन के अनुसार रानी ने किले में घिरे अंग्रेजों के नेता मेजर स्कीन और कैप्टन गार्डन को परामर्श दिया था कि वे अपनी सुरक्षा के लिए दतिया चले जायं । तात्पर्य यह है कि जब फांसीके विद्रोही सैनिकों ने किले को घेर लिया था, तब भी रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों की सुरक्षा के लिए ही चिन्तित थीं । मार्टिन यह भी लिखता है कि ८ जून को किला खाली कर देने पर जो अंग्रेजों का हत्याकाण्ड हुआ उसमें भी रानी का हाथ नहीं था ।

३ - रानी ने ११ जून को विद्रोही सैनिकों के दिल्ली की ओर चले जाने के पश्चात् सागर के कमिश्नर को १२ और १४ जून १८५७ को दो पत्र लिखे । रानी ने १२ जून के पत्र में लिखा कि ` फांसी स्थित सरकारी फौजों ने अपनी विश्वास हीनता, क्रूरता और हिंसा से सब यूरोपीय सैनिक अफसरों, क्लर्कों और सम्पूर्ण परिवारों को मार दिया है - और चूंकि रानी के पास तोपों की कमी थी तथा सिपाही भी उनके पास कुल १०० या ५० थे जो उसके महल की रक्षा में लगे थे । अत: वह उनकी कुछ सहायता न कर सकी जिसका उसे खेद है ।` इस पत्र के अनुसार विद्रोहियों ने रानी के पास यह संदेश भिजवाया कि ` यदि उसने किसी प्रकार उनकी प्रार्थना को पूरा करने में आना-कानी की तो उसका महल तोपों से उड़वा दिया जायेगा । अपनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए रानी को उनकी सब प्रार्थनाओं को मानने की अनुमति देने के लिए बाध्य होना पड़ा और भारी हानि भी सहनी पड़ी। अपने जीवन और सम्मान को बचाने के लिए उसे जायदाद और नकद के रूप में बहुत धन देना पड़ा ।` १४ जून के पत्र में रानी ने लिखा था कि अंग्रेजी शासन

के उठ जाने से झांसी में अराजकता फैल गई है और वह अंग्रेजों की ओर से व्यवस्था स्थापित रखने के प्रयत्न कर रही है । इन प्रयत्नों की सफलता के लिये तुरन्त ही धन की सहायता अपेक्षित है ।

रानी के इन दोनों पत्रों से श्री सेन और मजूमदार यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि रानी ने भयभीत होकर ही विद्रोहियों की केवल सहायता दी थी । वह स्वयं " विद्रोह " में शामिल नहीं थी और न सिपाहियों को उकसाने के लिये ही उसने कुछ किया था । अगर उन्हें उकसाने में रानी का हाथ होता तो वे रानी का महल फूंक देने की धमकी क्यों देते और फिर यदि वह सिपाहियों से मिली होती तो उसके लिये सबसे अच्छा मार्ग यही होता कि वह सिपाहियों से अनुरोध करती कि वे उसके पास ही ठहरे रहें क्योंकि उनके चले जाने से वह न केवल अंग्रेजों के प्रतिशोध का मुकाबला करने में असहाय रह गई बल्कि पड़ोसियों के आक्रमण और अपने सम्बन्धियों के षड्यन्त्रों के समक्ष असहाय बन गई ।"

इस प्रकार यह प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है कि घटना क्रम से विवश होकर रानी ने इस " विद्रोह " में भाग लिया था । उसने न तो झांसी में हिन्दुस्तानी सैनिकों में " विद्रोह उकसाने के लिये कुछ किया था और न किसी पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार ही वह कार्य कर रही थी । वह तो अंग्रेजों का रानी के प्रति गहरा अविश्वास और बिना स्थिति को समझे बूझे झांसी पर आक्रमण ही ने रानी को बरबस " विद्रोही " बना दिया था । रानी को इस तरह विवशता का शिकार बता कर उसके कार्यों का महत्व समाप्त ही कर देने का जैसे षड्यन्त्र-सा किया गया है ।

रानी लक्ष्मीबाई ने १८५७ के पूर्वनियोजित स्वतंत्रता संघर्ष में खूब सोच समझकर और निश्चित योजनाओं के अनुसार भाग लिया था । यह बात उस समय झांसी में उपस्थित उन गवाहों के बयानों से स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है जो उन्होंने तुरन्त ही पश्चात् अंग्रेज अधिकारियों के

सामने दिये थे । कैप्टन पी० जी० ~~स्कां~~ स्कांट ने फांसी के `विद्रोह` के सम्बन्ध में दी गई अपनी रिपोर्ट के प्रारम्भ में ही लिखा है कि ` गदर के घटित होने के कुछ दिन पूर्व १२ हवीं हिन्दुस्तानी इन्फैन्ट्री और फांसी फैन्ड के सेनापति कैप्टन डनलप ने मेजर किरके के पास फांसी के सुपरिन्टेन्डेण्ट मेजर स्कीन और डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट कैप्टन गौरडन को ~~यह~~ यह सूचित करने वाले पत्र भेजे थे कि उन्हें अलग अलग स्रोतों से पता चला है कि फांसी की रानी का कोई लक्ष्मण राव नामक सेवक १२ हवीं इन्फैन्ट्री के लोगों को उकसाने की चेष्टा कर रहा है ।`

फांसी के कमिश्नर पिंकने ने Narrative of events attending the outbreak of disturbances and restoration of the authority in the Division of Jhansi. शीर्षक से लिखी अपनी २० नवम्बर १८५८ की एक रिपोर्ट में लिखा कि ` एक बहुत बड़ी संख्या में लोग जिनमें रानी के मुख्य अनुचर भाऊ कुंवर, खुदाबक्स आदि भी थे दो फण्डे लेकर फांसी नगर से कैन्टूमेंट ( छावनी ) की ओर गये थे ।`

जब यूरोपियनों को `विद्रोहियों ` ने फांसी के किले में घेर लिया था तब उनके एक नेता कैप्टन गौरडन और रानी के बीच संदेशवाहक के रूप में काम करने वाले एक व्यक्ति मदार बक्स ने अपने बयानों में कहा कि जब ` विद्रोहियों के नेता एक रिसालदार ने यह वायदा किया कि अगर किले के लोग किला खाली कर बाहर आजायेंगे तो उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जायेगी, तब ऐसा ~~ए~~ एक पत्र लेकर ` मैं साहिबों की ओर गया । ८ बज चुके थे । किले के समीप पहुंचने पर मैंने पाया कि वह रानी के सिपाहियों से घिरा हुआ था जिन्होंने मुझे गालियां दीं और कहा कि रानी के आदेश है कि किले में कोई न घुसे ।`........ .

मेजर स्कीन के खानसामा ने अपने बयान में कहा, कि ८ जून को जब वह नगर की ओर गया तो उसने देखा कि रानी के आदेश

पर कड़क बिजली तोप अफसरों के विरुद्ध प्रयोग करने को तैयार की जारही है।"

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट विदित होता कि रानी न केवल सेना में विद्रोह उकसाने के लिये ही प्रयत्नशील रही थी, बल्कि उसने फांसी से अंग्रेजों को निकालने के लिए विद्रोही सैनिकों से सक्रिय सहयोग भी किया था। विद्रोहियों पर रानी के प्रभाव का ज्ञान होने के कारण ही किले में घिरे यूरोपियनों के नेता मेजर स्कीन/ने उनके आत्म समर्पण के पूर्व रानी को लिखा था कि वे सिपाहियों से उनके सुरक्षित निकल जाने के लिए सौगंध खिलाकर उस पत्र पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर उसके पास भेजदें। श्रीमती मुटलो द्वारा दी गई इस सूचना को अकारण ही श्री मजूमदार अविश्वसनीय ठहराते हैं। स्मरण रहे कि किले में घिरे हुए इन यूरोपियनों में श्रीमती - मुटलो भी थीं। उसने फांसी का हत्याकाण्ड स्वयं देखा था और उसके पति और भाई उसमें मारे गये थे, और वह स्वयं बड़ी कठिनाई से बच सकी थीं।

मार्टिन का पूर्वोल्लिखित इस कथन को श्री सेन और मजूमदार अधिक महत्व देते हैं कि रानी ने दो दिन तक किले के समस्त यूरोपियनों को भोजन सामग्री दी थी और १०० टोपीदार बन्दूकों वाले आदमी सहायता के लिये किले में भेजे थे। इस सम्बन्ध में यह कह देना यथेष्ट होगा कि रानी के सुकोमल स्त्री हृदय में शत्रु की स्त्रियों और बच्चों के प्रति दयाद्रता की भावना उठना अस्वाभाविक नहीं था। वह यूरोपियनों की असहाय स्थिति जानती थी और उससे यह भी स्पष्ट था कि ये यूरोपियन लोग अधिक समय तक विद्रोहियों के सामने टिक नहीं सकेंगे। ऐसी स्थिति में एक मानवोचित कार्य कर उसने अपनी स्थिति अंग्रेजों की दृष्टि में अच्छी बनाये रखने के लिये ही उन्हें भोजन सामग्री दी थी। रही १०० सैनिकों की सहायता भेजने की बात सो यह जान लेना जरूरी है कि मार्टिन के ही अनुसार इन सैनिकों को मेजर स स्कीन ने दूसरे ही दिन सन्ध्या को वापिस भेज दिया था। भयंकर आपत्ति के समय भी इन सैनिकों की सहायता अस्वीकार कर देने

का कोई बहुत ही बड़ा कारण होना चाहिए । वह इसके सिवा और क्या हो सकता है कि स्कीन को रानी और रानी द्वारा भेजे गये इन सैनिकों पर गहरा अविश्वास हो ।

रानी ने अपने १२ और १४ जून को सागर के कमिश्नर को जो दो पत्र लिखे थे उनमें उनकी इस बात को बहुत महत्व दिया गया है कि विद्रोहियों ने रानी को अपने साथ सहयोग करने के लिये धमकी देकर विवश किया था और रानी अब भी अंग्रेजों के संरक्षण के लिये उत्सुक थी । वास्तविक बात यह लगती है कि रानी अंग्रेजी सत्ता के झांसी से उठ जाने के पश्चात अपनी सत्ता दृढ़ करने के लिए समय चाहती थी और अंग्रेज पदाधिकारियों को ऐसे पत्रों द्वारा धोखे में रखकर ही वह अपने उद्देश्य में सफल हो सकती थी । फिर झांसी मराठा विरोधी ओरछा और दतिया के राज्यों से घिरी थी और १८५७ के विप्लव का भविष्य अभी अनिश्चित ही था । ऐसी स्थिति में अंग्रेजों को कुछ पत्र भेजकर बरगलाये रखना रानी की एक चाल मात्र थी ।

अब सेन का केवल यह तर्क रह जाता है कि रानी ने विद्रोहियों को दिल्ली क्यों जाने दिया और इस प्रकार अपनी स्थिति निर्बल करली । इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उत्तरी - भारत के सभी भागों से विद्रोही सैनिकों का जमाव दिल्ली में हो रहा था । साधन हीन मुगल सम्राट् बहादुरशाह को इन सैनिकों की आवश्यकता थी । विद्रोह को अधिक से अधिक फैलाने और उसके कई केन्द्र स्थापित करने से ही उसकी सफलता की संभावना अधिक थी । उसे केवल झांसी, कानपुर या लखनऊ में ही सीमित रखना अपेक्षित नहीं था । इसीलिए इन सभी स्थानों से विद्रोही सैनिकों की टोलियां और बड़ी टुकड़ियां दिल्ली की ओर रवाना की जा रही थीं । ताकि भारतीय सत्ता की प्रतीक दिल्ली को विदेशी शासकों से छीनकर, जनसाधारण में विद्रोहियों की सत्ता के प्रति आस्था उत्पन्न की जा सके ।

अन्त में इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रानी लक्ष्मीबाई ने अवसर से लाभ न उठाकर उसे लाने के लिये प्रयत्न किये थे। बानपुर के राजा मर्दनसिंह को ' गदर ' के पूर्व रानी लक्ष्मीबाई ने १ अप्रैल १८५७ को एक पत्र लिखा था जिसकी सही प्रतिलिपि जो राजा मर्दनसिंह के वंशज श्री कृष्णप्रतापसिंह जू देव से प्राप्त हुई है, नीचे दी जारही है[१४७] -

सही प्रतिलिपि

श्री

श्री महाराज कौमार श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा मर्दनसिंह बहादुर जू देव ऐते श्री महारानी श्री रानी लक्ष्मीबाई जू देवी के बांचने आपर अपुन के समाचार भले चाहिजे इहां के समाचार भले हैं आपर अपनी पाती लाला दुलारेलाल के हाथ आई सो हाल मालूम भवो अपुन ने लिखी के फौज की तैयारी में लगे हौ तो मन को खुसी भई हमारी राय है के विदेसियों का सासन भारत पर न भवो चाहिजे और हमको अपुन की बड़ी भरोसो है और हम फौज की तैयारी कर रहे हैं सो अंगरेजन से लड़बौ बहुत जरूरी है पाती समाचार देवे में आवे चैत सुदी ७ भौम सं० १९१४ मुकाम झांसी (१ अप्रैल १८५७)।

उपरोक्त पत्र से स्पष्ट है कि रानी ' विदेसियों ' अर्थात् अंग्रेजों का शासन उखाड़ फेंकने के लिए ' गदर ' से पहले ही कटिबद्ध हो गई थी। यह स्वराज्य के लिए युद्ध नहीं था, तो फिर क्या था ? अत: स्पष्ट है कि रानी ने अंग्रेजी सत्ता विरोधी भावनाओं से प्रेरित होकर उसकी योजना निर्माण करने में प्रमुख भाग लेकर स्वातंत्र्य संग्राम की एक प्रमुख नेत्री के रूप में उसका संचालन किया था और यह उनकी उदात्त भावना और शौर्य ही था जिसने उनके परम शत्रु सर ह्यूरोज से भी कहला लिया था कि "She was the bravest and the best military leader of the rebels."

---

१४७ - इस पत्र की मूल प्रति भी स्व० श्री पं० जवाहरलाल नेहरू को कृष्णप्रताप सिंह जू देव ने भेंट करदी थी।

अध्याय - १२

झांसी में मराठा राज्य की शासन व्यवस्था

१ - झांसी राज्य की सीमायें -

झांसीमें मराठा संस्थान की सीमायें सन् १७४२ में उसकी स्थापना से लेकर सन् १८५७ में उसके अन्त तक मराठा साम्राज्य और सूबेदारों की शक्ति के अनुरूप घटती बढ़ती रही थी। नारोशंकर की सूबेदारी के काल (१७४२-५७) में झांसी राज्य अन्य सूबेदारों के काल की अपेक्षा अधिक विशाल रहा था। उसने आधे ओरछा राज्य को और दतिया के कई परगनों को झांसी राज्य में मिलाकर उसका काफी सीमा विस्तार किया था। झांसी से धसान तक के प्रदेश जिनमें मऊरानीपुर, बरुआसागर शामिल थे, उसके अधिकार में थे[१]। गरौठा, एरच, माण्डेर, करैरा और मोंठ के परगने तथा उनकी गढ़ियां भी उसके हाथ में थीं। दक्षिण पश्चिम की ओर है बबीना से आगे बेतवा के तट का प्रदेश झांसी प्रान्त में आता था। बेतवा के दूसरे तट से चन्देरी राज्य के प्रदेश और सिंधिया का प्रभाव क्षेत्र आ जाता था। धुरवई, बिजना, टौड़ी फतेहपुर, बंका पहाड़ी, कटीं, पसारी, तरावली और चिरगांव के अष्ट भैया जागीरदार और ककरवई के ठाकुर झांसी के सूबेदार की अधीनता स्वीकार करते थे और उसे खंडणी देते थे। उसकी धाक दतिया राज्य की सेंवढ़ा जागीर

---

१ - बरुआसागर वैसे सिंधिया की जागीर था, जो सन् १७४२ में ओरछे के राजा द्वारा ज्योतिबा सिंधिया को मारे जाने की क्षतिपूर्ति में उसे मिला था, पर शासन की सुविधा की दृष्टि से इसे झांसी के सूबे में जोड़ दिया गया था। झांसी के सूबेदार सिंधिया को इसके लिये एक सालाना रकम दिया करते थे। सन् १८३६ में बरुआसागर के लिये सिंधिया को १० हजार रुपये सालाना दिये जाते थे।
सर देसाई० २, पृ० २३०, झांसी गजे० पृ० २४२, फा०पौलि० डिस्पैच टू कोर्ट, १ नवम्बर १८३६ नं० ७६ ।

और उसके किले तक थी, जिसका वह संरक्षक था[2] झांसी के राज्य की अधिकतम सीमायें रही थीं ।

नारोशंकर के सूबेदारी से हट जाने और पानीपत के युद्ध (१७६१) के बाद विश्वासराव लक्ष्मण (1766-60 ई०) और रघुनाथहरि निवालकर (१७७१ - ६४) की सूबेदारी के काल में उत्तरी - भारत में मराठों की स्थिति और इन सूबेदारों की शक्ति के अनुपात से ये सीमायें घटती बढ़ती रहीं । ये शिवरावभाऊ की गद्दी पर बैठने - (१७६४-१८१४) से लेकर गंगाधरराव की मृत्यु (२१ नवम्बर १८५३) तक ये सीमायें बराबर कम होती गईं । इसके कारण मुख्य रूप से दो थे - एक तो मराठा साम्राज्य का पतन हो रहा था और १८१७ ई० में पेशवाई समाप्त हो जाने से झांसी के मराठा संस्थान का मुख्य आधार और सम्बल ही समाप्त हो गया था । दूसरे शिवराव हरि के उत्तराधिकारी रामचन्द्रराव (१८१५-३५), रघुनाथराव (१८३५-३८), गंगाधरराव (१८३८-५३) सभी अयोग्य, निर्बल, प्रमादी और विलासी थे । वे अब झांसी के ताल्लुकों तक को रहन रखने लगे । फलस्वरूप झांसी राज्य की सीमायें सिकुड़ती गईं और उसकी आय बराबर घटती गई । रामचन्द्रराव के काल (१८१५-३५) में राज्य की आय १८ लाख से घटकर १२ लाख रह गई और रघुनाथराव के शासन (१८३५-३८) में तो यह १२ लाख से भी घटकर केवल ३ लाख रह गई[3]। झांसी के प्रदेश भी इस तरह धीरे धीरे खोते गये और गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात झांसी राज्य की जब्ती पर अंग्रेजों को झांसी के मराठा राज्य के जो अवशेष मिले उनमें केवल ६ परगने थे । ये परगने थे झांसी, मऊ, पिछोर, करैरा, बिजीगढ़ और पंढ्वाहा । इनमें भी कुल मिलाकर

---

२ - फा० पौलि० कन्स० ७ जुलाई १८२१ नं० ३२, ३ फरवरी १८२१ नं० २३, २४ मार्च १८२१ नं० ३७-३८ ।

३ - फा० पौलि० कन्स० ३१ मार्च १८५४ नं० १७१, १७२, रहीम पृ०२०४ ।

केवल ६६६ गांव रह गये थे ।[४]

२ - शासन व्यवस्था का स्वरूप - अर्द्ध सैनिक, सामन्ती और स्वेच्छाचारी -

फांसी के मराठा संस्थान का सर्वे सर्वा या मुख्य कर्ता धर्ता सूबेदार होता था । जिसकी नियुक्ति शिवरावभाऊ के गद्दी पर आसीन होने (१७६४) तक पूना से पेशवा के द्वारा होती रही थी । पेशवाई कमजोर हो जाने पर और बाद में १८१७ में समाप्त हो जाने पर फांसी की सूबेदारी वंशानुगत रूप से निवालकर वंश में ही या शिवराव-भाऊ के उत्तराधिकारियों रामचन्द्रराव, रघुनाथराव और गंगाधरराव में . सीमित रह गई थी । इसके दो कारण थे । एक तो शिवराव भाऊ के पश्चात फांसी के किसी सूबेदार की नियुक्ति पूना से नहीं हुई और १८१७ के पश्चात् अंग्रेजी सरकार की जब रामचन्द्रराव से संधि हो गई तब उस संधि के द्वारा फांसी का राज्य रामचन्द्रराव और पीढ़ी दर पीढ़ी उसके उत्तरा-धिकारियों के लिए सुरक्षित कर वंशानुगत बना दिया । फिर बैन्टिक के काल में रामचन्द्रराव को ` महाराजा ` की उपाधि देकर उसे राज्य का दर्जा सा दे दिया गया । पर अंग्रेजी सरकार द्वारा यह मान्यता दिये जाने के पूर्व फांसी के शासक वास्तव में पूना की मराठा सरकार के सूबेदार ही थे और उनके मुख्य कार्य दो थे । एक तो सूबे की रक्षा करना और प्रसार करना तथा दूसरे राजस्व और खंडणी वसूल करना, जिसके कारण उन्हें ` मामलतदार ` या ` कमाविसदार ` भी कहा जाता था । वस्तु वे मुगल-सिपहसालार और प्रान्तीय दीवान दोनों के कार्य करते थे । शांति काल में वे वे शासन करते थे और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक अभियानों में भी भाग लेते थे । नारोशंकर, विश्वासराव लक्ष्मण, रघुनाथहरि निवालकर आदि ऐसे ही सूबेदार थे । वस्तु इन सभी सूबेदारों के अन्तर्गत फांसी की शासन व्यवस्था अर्द्ध सैनिक रही थी और उसका मुख्य आधार सूबेदार की सैनिक

---

४ - बुन्देलखण्ड० पृ० २३७ ।

शक्ति रही थी। शुरु में झांसी के सूबेदार की स्वेच्छाचार और निरंकुशता पर दो अवरोध थे। एक तो पूना की सरकार या पेशवा और दूसरे उसके मल्हारराव होल्कर, रानौजी, अप्पा और महादाजी जैसे सरदार, जो उत्तरी भारत में पेशवा का प्रतिनिधित्व करते थे। पर जब पूना की सरकार और ये सरदार निर्बल पड़ गये और इनके विरुद्ध अंग्रेजी सरकार का प्रभाव अधिक बढ़ गया तो झांसी के सूबेदार भी अनुपातिक रूप से अधिक स्वेच्छाचारी और निरंकुश होते गये। अंग्रेजी सरकार की सामान्यत: आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति और राज्य में सहायक सेना रखकर शासक को राज्य की सुरक्षा की चिन्ता से मुक्त कर देने की नीति ने शिवरावभाऊ के बाद के झांसी के शासकों की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता में वृद्धि कर उन्हें जैसे पूर्णतया निरंकुश और स्वेच्छाचारी बनाने के साथ ही अयोग्य, विलासी और निकम्मे शासक बना दिया और इस तरह अवध के नवाबों की तरह उनके पतन का मार्ग प्रशस्त किया।

३ - सूबेदार या राजा की मुख्य स्थिति - उसके मुख्य अधिकारी -

झांसी के सूबेदार या राजा के हाथों में ही शासन की सभी शक्तियां केन्द्रित थीं। वही राज्य की सेनाओं का प्रधान सेनापति, प्रधान न्यायाधीश और प्रशासक होता था। उसके आदेश ही कानून होते थे और वह मनमाने ढंग से ही उसका पालन करवाता था तथा दण्ड देता था। फिर भी वह शासन में अपनी सहायता के लिए एक दीवान और बख्शी की नियुक्ति करता था, जो शासन और सेना की देख रेख करते थे। उसके मुख्तार भी होते थे और दूसरे राज्यों से सम्पर्क के लिए वकील भी होते थे। उदाहरण के लिए मेजर स्लीमैन राजा रामचन्द्रराव के दीवान नारोगोपाल और गोडसे अपने `माझा प्रवास` में रानी लक्ष्मीबाई के दीवान लक्ष्मणराव का उल्लेख करता है।[५] दीवान की स्थिति बहुत कुछ प्रधानमंत्री सी होती थी। वह राज्य

---

५ - रैम्बिल्स एण्ड रिकलैक्शन्स आफ एन इंडियन आफीशियल भाग १ पृ० २५७, गोडसे० पृ० ६६, ६७, ७७।

के सभी मामलों की देख रेख करता था और शासक का मुख्य परामर्शदाता होता था। उसका पद बख्शी से ऊंचा होता था। जब स्लीमैन दिसम्बर १८३५ में फांसी आया तब उसका स्वागत करने वालों में दीवान आरौ-गोपाल आगे था और बख्शी पीछे[६]। बख्शी सेना का रख रखाव और वेतन आदि की व्यवस्था करता था तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी कमान भी संभालता था। सेना नायक भी होते थे। वैसे रानी लक्ष्मीबाई के दो दीवान रघुनाथसिंह और दीवान जवाहरसिंह भी थे[७]। शिवरावभाऊ ने अपने पौत्र रामचन्द्रराव की नाबालिगी में नानाभाऊ को उसका संरक्षक तथा गोपालभाऊ को उसका मुख्तार (मैनेजर) नियुक्त किया था[८]। यह गोपालभाऊ दीवान भी था[९]। नरसिंहराव ग्वालियर दरबार में फांसी के राजा रघुनाथराव का वकील था[१०]। फांसी नगर में अंग्रेजी आधिपत्य के पूर्व की पुरानी कोतवाली, किले के नीचे नगर में टकसाल मुहल्ला अभी भी इसी नाम से है, जहां पहले टकसाल थी[११]।

---

६ - रैम्बिल्स ऐण्ड रिकलेक्शन्स ऑफ एन इंडियन आफीशियल भाग १ पृ० २५७ ।

७ - फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० १४६-४७ । ३० अप्रैल १८५८ नं० १४६, १४७ में रानी की अधिकारियों की लिस्ट में भी दीवान लक्ष्मणराव और लालूबख्शी के नाम हैं।

८ - फा० पौलि० कन्स० २७ अप्रैल १८४२ नं० ६४ ।

९ - फा० पौलि० कन्स० १ जून १८१६ नं० ४३ ।

१० - फा० पौलि० कन्स० १७ अक्टूबर १८३८ नं० ५६ ।

११ - पे० दा० नं० सं० ३, नं० ७४, १६८ । इन पत्रों में रामचन्द्र दरोगा और खंडोजी कोतवाल के नाम आते हैं। फा० पौलि० कन्स० के १३ - फरवरी १८३६ के नं० ३ के सखुबाई के पत्र में कोतवाल का उल्लेख है।

४ - शासन की इकाइयां और अधिकारी -

सागर और जालौन की तरह झांसी में भी मराठा सूबेदारों ने स्थानीय बुन्देले राजाओं की मुगल शासन प्रणाली से प्रभावित शासन व्यवस्था को अपनाकर उसमें कुछ अपनी बातें जोड़कर एक काम चलाऊ शासन व्यवस्था की स्थापना की थी। झांसी के मराठा राज्य में मुगलों और बुन्देलों के जो परगनें और महल थे, वे कटे छटे रूप में चलते रहे थे। इस तरह झांसी का मराठा राज्य परगनों में विभाजित हो गया और ताल्लुका, मौजा आदि की इकाइयां भी उसमें बनी रहीं। गांव इस राज्य की सबसे छोटी इकाई थी। झांसी राज्य की राजधानी `झांसी` ही थी और हर परगनें का अपना एक बड़ा कस्बा या नगर था, जिसके नाम पर उस परगने का नाम करण कर दिया जाता था। जैसे परगना मऊरानीपुर, परगना झांसी, परगना मौंठ, परगना बरुआसागर आदि। इन परगनों में नागरिक शासन और दीवानी तथा मालगुजारी के लिए कमाविसदार या मामलतदार अथवा आमिलों की - नियुक्ति करदी जाती थी। इन परगनों के किलों या गढ़ियों में किलेदारों की नियुक्ति होती थी। ये सभी अधिकारी झांसी के सूबेदार या राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे और वही उनकी नियुक्ति करता था। किलेदार और मामलतदार तथा अन्य अधिकारी परस्पर सहयोग की भावना से काम करते थे। उदाहरण के लिए राजा रामचन्द्रराव के काल में बरुआसागर की गढ़ी के जमादार और सिपाहियों को पंडित जसवन्तराव गंगाधर की मामलतदार के रूप में नियुक्ति की सूचना देते हुए उनसे कहा गया था कि वे उनके कहने के अनुसार काम करें। यह आदेश पत्र इस प्रकार था -

मुहर रामचन्द्र

थाने सागर के जमादार सिपाहिन को आपर ता: मजूर की मामलत राज पंडित जसुनराउ गंगाधर के तरफ ही है सु इन कौ किले में है के कहे माफक चौका पहरो महलो कोय होइ सु करनौ

श्रावन सुदि ५ संवत १८८७ मु० फांसी ।[१२]

उपरोक्त आदेश से स्पष्ट है कि किलेदार और मामलत-दार से आशा की जाती थी कि वे परस्पर सहयोग करें।

कमाविसदार अथवा आमिल या मामलतदार मुख्य रूप से नागरिक अधिकारी होते थे और शासन, दीवानी तथा मालगुजारी के शासन की देखभाल करते थे। किलेदार पर गढ़ियों की रक्षा का भार रहता था और गढ़ी के अन्दर जो सैनिक रहते थे वह उनका सेना नायक होता था। आवश्यकता पड़ने पर वह मामलतदारों की सहायता करता था और परगनों या महलों की सुरक्षा पर नज़र रखता था। उदाहरण के लिए नारोशंकर ने फांसी में अपने भतीजे विश्वासराव लक्ष्मण को, करैरा के किले में जगन्नाथ घोड़ोकर को किलेदारी के काम पर रखने की सिफारिश की थी और लिखा था कि वह करैरा के किले की देख भाल के साथ ही महल का काम भी देखेगा।[१३]

५ - <u>शांति सुरक्षा</u> -

राज्य में दरोगा और कोतवाल की नियुक्ति के भी उल्लेख मिलते हैं।[१४] नगरों, परगनों और गांव की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण मार्गों की जगहों पर थाने स्थापित कर दिये जाते थे, जिनमें कुछ सैनिक या सैनिक दल रहते थे।[१५] नगर की सुरक्षा के लिए पुलिस व्यवस्था भी थी और गंगाधर के शासन काल में जैसाकि गोडसे लिखता है कि " शहर या राज्य में चोरी बहुत ही कम होती थी। कहा जाता है कि बाबा साहब ने चोरों की इतनी अच्छी व्यवस्था की थी कि लोग अपने घरों के किवाड़ खुले छोड़कर सो जाते थे। हर एक ठिकाने पर उसकी सुरक्षा के लिए एक एक जिम्मेदार आदमी

---

१२ - इसकी मूल प्रति बरुआसागर के श्री प्रभाकरराव पारोलकर के पास है, जो श्री गंगाधरराव के ही वंशज हैं।

१३ - पे० दा० न० स०, ३ नं०७४ ।

१४ - वही नं० ७६, १६८ ।

१५ - वही नं० २४६, पे० दा० २६ नं० १६७, १६४ ।
इन पत्रों में फांसी, मौठ के थानों का उल्लेख है।

रख छोड़ा था, यदि वहां चोरी हो जाय तो उस आदमी को माल की नुकसानी भरनी पड़ती थी।[१६] इस प्रकार व्यक्तिगत जिम्मेदारी के सिद्धान्त को शासन में अपनाया जाता था। सुरक्षा की दृष्टि से नगर के दरवाजों के फाटक रात को बन्द कर दिये जाते थे और हर फाटक पर सैनिकों की चौकियां रहती थीं। गांव में उनके महत्व के अनुसार चौकीदार, सशस्त्र सैनिकों की चौकियां, सैनिक थाने जिनमें सवार सैनिक रहते थे।

६ - सैन्य संगठन -

झांसी मराठों का सैनिक अड्डा सा था। दक्षिणी भारत से उत्तरी भारत की ओर जाने वाली मराठा सेनायें या उत्तर से दक्षिण लौटती हुई सेनायें प्राय: झांसी से गुजरा करती थीं। झांसी के नारोशंकर जैसे सूबेदार भी बुन्देलखण्ड के बाहर मराठा सरदारों के सैनिक अभियानों में भिण्ड, भदावर, राजपूताना, दिल्ली आदि जाया करते थे। अस्तु झांसी में सेना और सैनिक सामग्री का अच्छा अभाव रहता था। सन् १७४६ में जब सिंधिया, होल्कर ने जैतपुर पर अधिकार स्थापित किया था, तब उसकी तोपें, गोला बारूद और सेना के उपयोग की सामग्री झांसी के किले में भेजदी गई थी।[१७] झांसी से डीग के सन् १७५४ के घेरे में तोपें भेजे जाने का भी उल्लेख मिलता है।[१८] झांसी में बारूद, बाण आदि बनाये जाते थे और झांसी में बाण के कारखाने को लाने और उसके दरोगा रामचन्द्र का उल्लेख पेशवा दफ्तर के काफी पहले के एक १४ नवम्बर १७६४ के पत्र में आया है।[१९]

राज्य की सेना का प्रधान सूबेदार या राजा ही होता था, पर मुख्य सेनाधिकारी बख्शी होता था। जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि वही सेना के सैनिकों की देखभाल और उनकी सज्जा,

---

१६ - गो०से० पृ० ५४ ।

१७ - पे० दा०न० स० १ नं० ७४ ।

१८ - पे० दा० २७ नं० ६६ (पृ० ८८, ८६)

१९ - पे० दा० न० स० ३ नं० ७९ ।

रसद आदि की व्यवस्था करता था तथा प्राय: उनका सेनापतित्व भी करता था । अन्य सेना नायक भी होते थे । रानी लक्ष्मीबाई के काल में लालबख्शी सेना का प्रधान सेनापति था और उसके अन्य सेना नायकों में कटीली के कुंवर जवाहरसिंह और नौनेर के कुंवर रघुनाथसिंह प्रमुख थे । मराठों की सेना के सामान्य छोटे छोटे नायकों में ` रिसालदार ` और ` जमादारों ` के भी उल्लेख मिलते हैं।[20]

घुड़ सवार सेना में, सिलहदारों ` या `सिलहदी` सवारों के होने के भी उल्लेख हैं।[21] मराठों की सेना में ` सिलहदी ` या - ` सिलहदार ` सवार वे होते थे, जो अपनी सज्जा, घोड़ा, अस्त्र आदि स्वयं लाते थे । पैदल घुड़ सवार सेना के साथ हाथी भी रखे जाते थे । इस सेना का मुख्य जमाव झांसी में ही होता था । यहीं तोपखाना भी था।[22] तोपें और गोला बारूद किले में ही रखी जाती थीं।[23] सेना की कई टुकड़ियां महत्वपूर्ण थानों, गढ़ियों और किलों में भी रखी जाती थीं । मऊरानीपुर, बरुआसागर, करेरा, मोंठ आदि में अच्छी सैनिक संख्या में सैनिक दल रखे जाते थे । करेरा, बरुआसागर के किले विशेष महत्व के थे । इनमें किलेदारों के अधीन सैनिक दल रहते थे और गोला बारूद व तोपें भी रहती थीं।[24]

---

२० - फा० सी० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० १४६, १४७, रेवेन्यू डिपार्टमेण्ट १८५७ नं० ४, सरकुलर नं० ४६४८, सन् १८५८ में झांसी के विद्रोह में भाग लेने वालों की सूची ।

२१ - फा० पौलि० कन्स० १६ फरवरी १८३६ नं० १६, १३ फरवरी १८३६ नं० ४० ।

२२ - फा० पौलि० कन्स० ६ फरवरी १८३६ नं० १६ ।

२३ - अभी भी झांसी के किले के भीतर दो पुरानी प्रसिद्ध तोपें कड़क बिजली और भवानीशंकर हैं ।

२४ - पे० दा० न० स० ३ नं० ७४, फा० पौलि० कन्स० ६ फरवरी १८३६ नं० १६ ।

फांसी के किले में भी किलेदार रहता था और वही उसकी सुरक्षा की देखभाल करता था। आवश्यकता पड़ने पर पड़ोस के सागर और काल्पी के सूबों से सैनिक सहायता मंगवाली जाती थी और अगर यह भी काफी नहीं हुई तो सुप्रसिद्ध मराठा सरदारों जैसे मल्हारराव, सिंधिया, विट्ठल-शिवदेव आदि से सहायता की याचना की जाती थी। फांसी के मराठा राज्य में सेना संख्या आदि के बारे में कोई निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है, पर इतना अनुमान किया जा सकता है कि जब मराठों के अच्छे दिन थे और उत्तरी भारत में उनका बोल बाला था, तब यह सेना काफी अधिक संख्या में रहती होगी और मराठा साम्राज्य के पतनोन्मुख होने के साथ ही उसकी संख्या कम होती गई होगी। शिवराभाऊ और उसके उत्तराधिकारियों ने जब अंग्रेजी सत्ता और बाद में अंग्रेजी सहायक सेना (बुन्देलखण्ड लीजन) का सहारा पा लिया, तब तो यह सेना एकदम ही कम हो गई थी, क्योंकि फिर उसकी विशेष आवश्यकता ही नहीं रह गई थी। राजा गंगाधरराव के काल में स्वयं फांसी राज्य और ठाकुर लोगों की सब मिलाकर पांच हजार करीब फौज थी। दो हजार गोल पुलिस, पांच सौ घोड़ों का रिसाला, एक सौ खास पायगा के सिपाही और ४ तोपखाने थे।[२५] महारानी लक्ष्मीबाई ने जब अंग्रेजों से संघर्ष मोल लिया तब निश्चय ही फांसी की सैन्य शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। रानी की सेना में बुन्देलों, ठाकुरों, मराठों और स्थानीय विभिन्न जातियों के सैनिकों के अलावा नागा, साधु, विलायती या अरबी, मुसलमान और ~~अफगान~~ अफगान सैनिक भी थे। फांसी से भागते समय गौडसे लिखता है कि " रानी के साथ में दो सौ पुराने और जान पर खेल जाने वाले सरदार थे। इसके अलावा सवेरे अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाले एक हजार दो सौ विलायती बहादुर भी चल रहे थे।"[२६] सर ह्यूरोज ने जब फांसी का घेरा

---

२५ - लक्ष्मीबाई (पारसनीस) पृ० २१ ।

२६ - गौडसे० पृ० ६४ ।

डाला था तब उसका अनुमान था कि नगर के परकोटे के भीतर लगभग दस हजार बुन्देले, विलायती रण कुशल सैनिक थे । इसके अलावा १५०० सिपाही और थे जिनमें लगभग ४०० घुड़ सवार थे । किले में ४०-५० तोपे भी थीं।[२७]

७ - माल-गुजारी -

सन् १८५७ के पहले के सभी कागज पत्रों के विप्लव में नष्ट हो जाने से मालगुजारी के तुलनात्मक विवरण या आंकड़े प्रस्तुत नहीं किये जा सकते । झांसी राज्य में मालगुजारी की दरें क्या थीं या वह उपज का कितना प्रतिशत होती थीं इसके कोई ब्यौरे उपलब्ध नहीं हैं । सन् १८५७ के विप्लव के पश्चात् अंग्रेज अधिकारियों ने जिस प्रकार पुरानी परम्पराओं के आधार पर नये बंदोबस्त किये, उसके विवरणों में विप्लव से पूर्व प्रचलित विभिन्न किस्म के काश्तकारों और मालगुजारी की दरों को निर्धारण करने के तरीकों का जो अनुमान होता है उसका ही संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जाता है ।

झांसी के मराठा राज्य में सामान्यत: जमींदारों और काश्तकारों में कोई भेद नहीं किया जाता था । सभी काश्तकार राज्य को कर देते थे।[२८] इससे प्रतीत होता है कि सारी भूमि राज्य की ही मानी जाती थी और शासक उसका स्वामी होता था । काश्तकार मुख्य रूप से चार तरह के होते थे । एक तो वे जो अपनी भूमि पर एक मुश्त रकम कर के रूप में देते थे । यह रकम या दर काफी कम होती थी और इसे `ठांसा ` या ` ठांका ` कहते थे । दूसरे काश्तकार वंशानुगत होते थे । उन्हें ` मौरुसी ` कहते थे । ये निश्चित दर पर मालगुजारी देते रहते थे, जिसे बढ़ाया नहीं जा सकता था । तीसरे काश्तकार वे होते थे जो गांव की

---

२७ - फा० पौलि० कन्स० १३ अगस्त १८५८ नं० २५-२७, ३१ दिसम्बर१८५८ नं० ३५७२-३५७५, लौ० पृ० २३७ ।

२८ - झांसी गजे० पृ० १२० ।

दरों पर कर देते थे और जिसे बढ़ाया जा सकता था । चौथी किस्म के काश्तकार वे थे जो स्थायी काश्तकार नहीं होते थे । वे जब चाहें तब भूमि छोड़ सकते थे । इन्हें पहले ३ से निम्न श्रेणी का समझा जाता था । पहले ३ वर्ग के काश्तकारों का अपनी भूमि के महुए के वृक्षों पर अधिकार होता था । कुछ खेती योग्य भूमि पर बिना जुती जिसे बंगर कहते थे, भी दी जाती थी और जानवरों को चराने की ' रूंद ' (घास पात की - जमीन) भी दी जाती थी । यह सब अधिकार अस्थायी काश्तकारों के नहीं थे ।[२६]

८ - मालगुजारी निर्धारण के तरीके या दरों की किस्में -

झांसी राज्य में प्रमुख रूप से जो मालगुजारी व्यवस्थायें या विभिन्न प्रकार की काश्तकारियां प्रचलित थीं, उनका विवरण इस प्रकार है -

१ - देखा-परखी व्यवस्था -

इसकी फसल को देखकर उपज का अनुमान कर मालगुजारी या राज्य का भाग निश्चित किया जाता था । यह व्यवस्था मराठों की अपनी देन थी ।

२ - कुंआ बन्दी -

इस व्यवस्था में मालगुजारी की दर, एक कुंआ कितनी भूमि को सींच सकता था, इससे निश्चित होती थी । कुंए के आस पास लगे हुए खेत होते थे । इन खेतों के लिए कुंए से जितना पानी प्रयुक्त हो सकता था, उसके अनुसार मालगुजारी लगती थी । यह माल गुजारी अनुमान से या सरकारी अधिकारियों और काश्तकारों के आपसी विचार विमर्श और सहमति से निश्चित होती थी । यह एक निश्चित रकम होती

---

२६ - बुन्देलखण्ड० पृ० २८० ।

होती थी । कुंआ बन्दी की इस दर को फिर बदला नहीं जा सकता था । ऐसा काश्तकार जब पुराना पड़ जाता था तब उसे क्दीम काश्तकार कहते थे ।

३ - रेंहट व्यवस्था -

एक कुंए पर कितने रेंहट चल सकते थे और वह कितनी भूमि सींचते थे, इससे भी मालगुजारी निश्चित की जाती थी ।

४ - बैल जुताई व्यवस्था -

इस व्यवस्था में जितनी भूमि एक जोड़ी बैल से १ दिन में जोती जा सकती थी, उसके अनुसार मालगुजारी तय होती थी ।

५ - बीज गुना, बीज गनिया या बिजुरा व्यवस्था -

इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत एक खेत में कितना बीज बोया जाता था, उसको ध्यान में रखकर मालगुजारी तय होती थी ।

बीज की नाप मन, पसेरी, गौन, मनी, प्या, कैया आदि में होती थी । मन ४० सेर का होता था, पसेरी ५ सेर की, मनी २० प्या लगभग ३ मन की तथा अन्य नाप अनिश्चित थे ।

६ - चाकरी व्यवस्था -

चाकरी या नौकरी के बदले में भूमि दी जाती थी । इस व्यवस्था के अन्तर्गत बड़े बड़े भू-भाग मराठों के कालमें सरदारों को दिये जाते थे । वे अपनी भूमि का हिस्सा अपने काश्तकारी करने वाले नौकरों (चाकरों) को सेवा के बदले दे देते थे । शेष पर वे मामूली सा कर देते रहते थे । इन सरदारों को अंग्रेजी काल में लम्बरदार कहते थे ।

७ - उबारी व्यवस्था -

इस व्यवस्था के अन्तर्गत जो लोग आते थे उन्हें उबारीदार कहा जाता था । यह उच्च प्रकार के जागीरदार या शासक वर्ग वंश के लोग होते थे, जो मालगुजारी की बजाय एक निश्चित रकम कर के रूप में सालाना राज्य को दिया करते थे । इस रकम का जागीर के प्रदेशों या जोती जाने वाली भूमि से कोई आनुपातिक या किसी और प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता था । यह शासक या सरकार की स्वेच्छा से ही निर्धारित होता था । ये उबारीदार विशेष अधिकार युक्त - जागीरदार होते थे । जैसे उन्हें बन्दी नहीं बनाया जा सकता था, वे अदालतों में पेश नहीं होते थे और अपनी जागीरों की सीमाओं में रहकर चुंगी आदि वसूल कर सकते थे । उबारी जागीरें वंशानुगत नहीं होती थीं । उबारीदार के मरने पर उन्हें राज्य फिर से ले सकता था । गुरसराय के राजा और ककरवई के ठाकुर ऐसे ही जागीरदार थे ।

८ - मुआफीदार -

ये होते थे जिनका लगान माफ होता था । मन्दिरों, ब्राह्मणों आदि को या अन्य लोगों को उनकी सेवाओं के लिए मुआफी की जमीनें दी जाती थीं।[30]

उपरोक्त विवरण से अनुमान होता है कि झांसी के मराठा राज्य की मालगुजारी या उपज में राज्य का भाग प्राय: राज्याधिकारी या तो अपनी मर्जी से या काश्तकारों की सहमति से निर्धारित करते थे । ऐसे निश्चित किये हुए कर में बाद में वृद्धि की गुंजाइश के कारण कम ही होते थे और चूंकि यह एक प्रकार का राज्य और काश्तकारों में

---

३० - झांसी गजे० पृ० ११६ - ११७, १२२-१२४, बुन्देलखण्ड० पृ० २८१-८३

समझौता सा होता था, इसलिए काश्तकार कर की वृद्धि पर रोष प्रकट करते थे और उसे बढ़ने नहीं देते थे। पर राज्य की सरकार भी काश्तकारों पर मनमाना कर बढ़ाने में या उन पर अत्याचार करने में हिचकती थी क्योंकि ऐसा होने पर वे गांव छोड़कर भाग जाते थे।[३१] फिर भी मराठा अधिकारी हर काश्तकार से अधिक से अधिक वसूल करने की चेष्टा करता था। गांव का मुखिया इसमें उनका सहायक होता था।[३२]

अंग्रेजों के शासन और गंगाधरराव के शासनकाल में १८४१-४५, १८४६-५० और १८५१-५६ में पंचवर्षीय बंदोबस्त किये गये थे पर उनके कागज पत्र नष्ट हो गये हैं।[३३] इसीलिए सन् १८५६ में कैप्टन गार्डन ने नये सिरे से फिर मालगुजारी बदोबस्त की कार्यवाही शुरू की और माण्डेर, गरौठा, मोंठ परगनों का बदोबस्त पूरा हो गया और झांसी माण्डेर और गरौठा में २० साला बदोबस्त की पुष्टि भी अप्रैल १८५७ में हो गई। झांसी के जब्त राज्य के अन्य परगनों का मालगुजारी बदोबस्त का कार्य भी १८५६ में हुआ था, पर विप्लव में सारे कागजात और व्यौरे नष्ट हो गये और विप्लव के बाद सन् १८५८ तथा बाद के वर्षों में इसे फिर से शुरू किया गया।[३४]

गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत मालगुजारी की दरें कैसे निश्चित की जाती थीं, इसका केवल एक ही उदाहरण ` मार ` की भूमि के बारे में हमें मिलता है। कैप्टन गार्डन ने ` मार ` की भूमि की दरें इस प्रकार निश्चित कीं थीं। उस समय के आंकड़ों के अनुसार १ एकड़ मार भूमि में ३७ सेर गेंहू बुवाई में लगता था और

---

३१ - झांसी गजि० पृ० १२४ ।

३२ - बुन्देलखण्ड० पृ० २७६ ।

३३ - झांसी गजि० पृ० १३६ ।

३४ - बुन्देलखण्ड० पृ० २७४ ।

औसत २४७ सेर पैदा होता था । गेहू की पिछले १२ वर्षों की औसत बिक्री की दर १ रु० में २५ सेर की रही थी । इसीलिए १ एकड़ की उपज का मूल्य ६ रु० - ६ आ० - ७ पा० हुआ । इसमें से १ रु० ७ आ० ८ पा० बीज के, ६ आ० व्याज के और मजदूरी मेहनत खाने आदि के ३ रु० ३ आ० ११ पा० घटा देने पर जो ३ रु० ३ पा० बची उसका आधा मालगुजारी के रूप में सरकार का भाव होता था।[35]

यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि `मार` के अलावा अन्य कम उपजाऊ भूमि जैसे काबर, पतली, रांकर और तरी आदि के लिए उनके कम उपजाऊ पन के अनुपात से राज्य की दरें और कम निश्चित की जाती होंगी । गार्डन का उपरोक्त बंदोबस्त चूंकि पहले से चली आई दरों के औसत के आधार पर ही होगा, इसलिए अगर ये अनुमान कर लिया जाय कि मराठा राज्य की दरें गार्डन की निश्चित दर के करीब करीब होंगी तो अनुचित नहीं होगा । १८५७ के पूर्व के कागज पत्रों के उपलब्ध न होने की स्थिति में इससे अधिक इस बारे में कहना कल्पना की उड़ान मात्र होगा ।

मालगुजारी से सम्बन्धित अधिकारी मुख्य रूप से कमाविसदार या मामलतदार अथवा आमिल, तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी, गांव के मुखिया आदि होते होंगे । इनमें से कानूनगो, पटवारी, मुखिया तो पीढ़ी दर पीढ़ी अभी तक चले आरहे हैं ।

६ - सिचाई और फसलें -

झांसी राज्य में सिचाई के मुख्य साधन कुंऐ और तालाब हैं । यहां की सभी नदियां बेतवा, धसान, पहूच, सिंध आदि -

---

३५ - झांसी राज्य की भूमि अपनी मिट्टी के किस्म के कारण वैसे १६ प्रकार की मानी गई है, लेकिन कृषि के योग्य भूमि के प्रमुख वर्गीकरण क्रमश: उपज के अनुसार पांच ही हैं । ये हैं - मार, काबर, पतली, रांकर और तरी । बुन्देलखण्ड० पृ० २३६-४० ।

बरसाती नदियां हैं और बरसात खत्म होने के कुछ ही महीनों में उनके पानी की सतह बहुत कम हो जाती है। वर्षा भी बहुत अधिक नहीं होती। सन् १८६० से १८७० तक की वार्षिक वर्षा के आंकड़ों के अनुसार, तब सालमें ३०-४० इंच के बीच वर्षा होती थी[३६]। उसके पूर्व भी वर्षा का औसत यही रहा होगा और आज भी यही है। नदियों और वर्षा के पानी के अभाव में सिंचाई के मुख्य साधन कुंए और ये बंधिया और तालाब होते हैं, जिनमें वर्षाऋतु में पानी भर लिया जाता था। तब के झांसी राज्य में कोढा-भांवर, मगरवारा, बरुआसागर, कचनये, बड़जार, और बबीना के प्रसिद्ध ताल थे। झांसी नगर में भी तालाबों की कमी नहीं थी। मराठों के समय के कई तालाब आज भी काम लायक हैं। हालांकि कई मिट्टी भर जाने से पट चुके हैं। इनमें मानो का ताल, लक्ष्मीताल, आतियांताल, बंध, श्याम चौपड़ा और नगर के बीच धर्मशाला अभी भी है। मराठों के समय के बने बहुत से कुंए जिले भरमें बिखरे पड़े हैं। झांसी के प्रसिद्ध पचकुइयां के पांच कुंए आज भी हैं। तालाबों से छोटी छोटी नहरें निकालकर सिंचाई की जाती थी। कुंओं से मोट और रहट आदि से सिंचाई होती थी। जहां भूमि `मार` या `काबर` होती थी और नमीं देर तक पकड़े रहती थी वहां बंधिया से खेती का तरीका अपनाया जाता था। खेत के ढलाव की ओर एक ऊंची मेड़ बनाकर बंधिया बनाली जाती थी। बरसात में जब यह बंधिया भर जाती थी और भूमि खूब पानी सोख लेती थी तब रबी की फसल के पहले अक्टूबर में पानी को निकाल लिया जाता था और फसलें बोदी जाती थीं। ऐसी फसलों में फिर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती थी। रबी की फसलें गेंहू, चना, अलसी, जौ, मसूर, मटर, सरसों, जेठ की उड़द, मूंग आदि, जीरा, धनियां, अजवायन, आदि आदि होती थी, जबकि खरीफ में ज्वार, कपास, बाजरा, तिल्ली, कोंदो, राली, कुटकी, चावल, फिकार, मूंग, कुर्थी, कांवनी, मोठ, हल्दी

---

३६ - बुंन्देलखण्ड० पृ० २५३ ।

उड़द, अरवी, आदि बोयी जाती थी । पर पानी की कमीं सदैव ही रहती थी और वर्षा कम होने या न होने पर अकाल पड़ जाते थे । सन् १७८३, १८३३ और १८३७ के अकालों में तमाम जन-धन की हानि हुई थी । प्राय: हर ५ साल में अकाल पड़ जाया करते थे।[३७] खेती-हर मजदूरों और किसानों में प्रमुख रूप से काछी, चमार, अहीर, कुर्मी आदि होते थे । ठाकुर प्राय: जमींदार या जागीरदार होते थे और हल चलाना अपमान जनक समझते थे । फिर भी गरीब ठाकुर और बुन्देले कभी कभी विवश होकर खेती करने लग जाते थे । भिलसा, भोपाल और मालवा के उपजाऊ जिलों से अनाज के बंजारों के काफिले अक्सर ही दक्षिण से उत्तरी भारत के नगरों में जाते समय भांसी से गुजरा करते थे।[३८] वैसे प्रदेश खाद्यान्नों में आत्म निर्भर था पर कमीं पड़ने पर इन बंजारे काफिलों से खाद्यान्नों की कमीं पूरी करली जाती थी ।

१० - न्याय व्यवस्था -

कहना नहीं होगा कि भांसी के मराठा संस्थान की न्याय व्यवस्था मध्यकालीन, सामन्ती और कठोर थी । जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि इसमें अपील की सबसे बड़ी अदालत सूबेदार या राजा होता था । उदाहरण के लिए गोडसे गंगाधरराव के न्याय करने का उल्लेख करता हुआ लिखता है कि " न्याय के कामों में वह बड़े कठोर थे।[३९] रानी लक्ष्मीबाई ने जब शासन संभाला तो वे भी मुकदमें सुनने और निर्णय देने लगी थीं । गोडसे लिखता है कि " न्याय के कामों में बाई साहब बड़ी दक्ष और कठोर थीं और कभी कभी तो खुद हाथों में छड़ी लेकर अपराधियों को सजा दिया करती थीं ।" राजाओं के दीवान भी न्याय करते थे । रानी लक्ष्मीबाई के दीवान लक्ष्मणराव की " कचहरी में दीवानी, फौजदारी, -

३७ - वही ।

३८ - भांसी गजे० पृ० २७५ - ७६ ।

३९ - गोडसे० पृ० ५४ ।

मुल्की सब काम होते थे।[४०] राजा और दीवान के सिवाय नगर और परगनें आदि के अन्य अधिकारी भी मुकदमों की सुनाई करते थे। `मामलतदार` या `कमाविसदार` अथवा `आमिल`, जो एक परगनाधीश होता था, अधिकतर दीवानी के साथ ही फौजदारी के मामले भी सुना करता था। गांव गांव में पंचायतें थीं और झगड़ों को पहले उसी स्तर पर निपटा दिया जाता था। जाति पंचायतें सामाजिक विवादों को निपटाया करती थीं। झांसी के मराठा संस्थान के शासक ब्राह्मण थे इसलिए न्याय करने में हिन्दू धर्म शास्त्रों का उपयोग किया जाता था। मुसलमानों की आबादी बहुत ही थोड़ी थी और उनके फौजदारी के अलावा दूसरे मुकदमें, ऐसा अनुमान है कि वे मुसलिम न्याय शास्त्र के अनुसार ही निपटाये जाते होंगे। मुसलमानों के सामाजिक विवाद उनकी अपनी पंचायतें निपटाती थीं। दण्ड विधान कठोर था और अपराधों को रोकने के लिए तथा अपराधियों को आंतकित करने के लिए कठोर दण्ड दिये जाते थे। गंगाधरराव अपने कठोर दण्डों के लिए बहुत बदनाम थे। गोडसे लिखता है कि वे स्वयं कोड़ा लेकर शासन करते थे।....... पकड़े जाने पर चोर को धर्म शास्त्र के अनुसार ही उसके दोनों हाथ काटकर उसकी सजा दी जाती थी। गुण्डे लोग तो गंगाधर के नाम से थरथर कांपते थे। प्रजा को न्याय देने में वे पल भर का भी विलम्ब नहीं करते थे। झांसी का राज्य न्याय और विचार पूर्वक चलता था। दण्ड विधान कठोर अवश्य था, पर वह प्रभावोत्पादक होता था। संक्षेप में झांसी राजा की जो भी न्याय व्यवस्था थी वह समयानुकूल थी और अपने लक्ष्यों को पूरा करती थी। इस व्यवस्था में अधिक नहीं तो किसी भी अच्छी व्यवस्था के दो गुण अवश्य थे, एक तो यह कि न्याय सस्ता था और दूसरा यह कि शीघ्रता से उपलब्ध होता था।

---

४० - वही पृ० ६७ ।

११ - मुद्रा प्रणाली -

फांसी के मराठा संस्थान की मुद्रा प्रणाली का आधार नानाशाही रुपया था[४१]। धनराशियां रुपये आना पाइयों में गिनी जाती थीं। विनिमय के अन्य छोटे सिक्के पाई, अधेला, पैसा, छदाम और अधन्ना होता था। एक पैसे में तीन पाई होती थी। अधेला पैसे का आधा होता था और एक अधन्ना दो पैसे के बराबर होता था। फांसी में ओरछे के गजाशाही रुपये भी चलते थे[४२]। फांसी में जब गंगाधरराव के शासन संभालने के पहले और जब अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ तब अंग्रेजी रुपया भी यहां चलने लगा था। इस अंग्रेजी सरकार के रुपये और फांसी के नानाशाही रुपये के बीच विनिमय की दर १ : १·१२० थी अर्थात् एक अंग्रेजी रुपये में लगभग १·१२० नानाशाही रुपये आते थे[४३]।

सन् १८५७ के `गदर` में फांसी के सभी कागजात नष्ट हो जाने से फांसी के मराठा राज्य की शासन व्यवस्था के बारे में हमारी सूचना बहुत ही सीमित है। फिर भी उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से उसकी मोटी मोटी बातों और महत्वपूर्ण अंगों का अनुमान हो जाता है। सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि फांसी के मराठा संस्थान की शासन व्यवस्था सामन्ती और मध्ययुगीन थी और यद्यपि वह आधुनिक शासन व्यवस्था की तुलना में और यहां तक कि समकालीन अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत प्रदेशों की शासन व्यवस्था से काफी पिछड़ी और दोष-पूर्ण थी, लेकिन फिर भी स्थानीय दृष्टि से काम चलाऊ और उपयोगी भी थी। स्थानीय जाति पंचायतों को तब रीति-रिवाज के अनुसार काफी

---

४१ - बुन्देलखण्ड० पृ० २८६, रेवेन्यू डिपार्टमेण्ट ३, १८५७ नं० ३ ।

४२ - फांसी गजे० पृ० ७१ ।

४३ - एचिसन० भाग ५ के पृ० ७० में अंग्रेजी सरकार और गंगाधरराव के बीच २७ दिसम्बर १८४२ की संधि में २५५८६१ फांसी के नानाशाही रुपये कम्पनी के २२७'४·५८ रुपये के बराबर माने गये हैं, जिससे उपरोक्त विनिमय की दर निकाली गई है।

अधिकार प्राप्त थे और वे शासन की सशक्त इकाइयां थीं । दण्ड विधान कठोर था, पर निहायत सस्ता था और शीघ्र मिलता था । धातु मुद्रा चलने से मुद्रा-स्फीतिकरण का भय नहीं था और छोटे छोटे सिक्के व्यापार विनिमय में सहायक होते थे । वैसे यह ठीक है कि शासन का मुख्य केन्द्र राजा या सूबेदार होता था, जिसके उदार अथवा अत्याचारी होने का प्रभाव शासन पर पड़ता था लेकिन गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् जब झांसी का राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया गया तब से लेकर रानी - लक्ष्मीबाई की मृत्यु तक झांसी राज्य के लोगों ने राज्यवंश के प्रति जो निष्ठा और भक्ति प्रदर्शित की तथा जीवन की बाजी लगादी, उससे तो यही लगता है कि उन्हें अंग्रेजी शासन के ` वरदानों ` से तो अपने शासक के शासन के ` अभिशाप ` ही अधिक पसन्द थे । अर्थात् अंग्रेजी शासन से उन्हें झांसी के राजाओं का शासन ही अधिक प्रिय था ।

--------0---------

अध्याय - १४

मराठा शासन के अन्तर्गत फांसी की आर्थिक, सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक प्रगति

१ - फांसी के किले और नगर का वर्णन -

फांसी के मराठा राज्य और नगर की आम स्थिति की जानकारी के लिए समय समय पर फांसी आने वाले यात्रियों या अंग्रेज अधिकारियों ने जो विवरण छोड़े हैं, वे बहुत ही उपयोगी हैं। इन विवरणों से समकालीन आर्थिक दशा, व्यापार, विनिमय की वस्तुयें, लोगों के रहन - सहन और नगर व्यवस्था आदि का सहज ही अनुमान हो जाता है। फांसी के किले और नगर की स्थिति के बारे में मेजर स्लीमैन जो कि दिसम्बर १८३५ में फांसी आया था, लिखता है कि फांसी का किला एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है। इसकी बाहरी दीवारों की ऊंचाई मैदान की सतह से लगभग १०० फीट है। उसने फांसी के सबसे ऊंचे बुर्ज पर खड़े होकर इस ऊंचाई का अनुमान किया था। स्लीमैन के अनुसार जिस पहाड़ी पर किला बना हुआ था नगर उसके नीचे पूर्व की ओर फैला हुआ था। वह लिखता है कि नगर के चारों ओर पड़ोस में ऐसी काफी भूमि थी जो ४-५ तालाबों से सींची जाती थी[१]। स्लीमैन का यह वर्णन बहुत ही ठीक है और किले तथा नगर की आज भी वैसी स्थिति है। गौड्से अपने यात्रा विवरण में नगर का और भी विस्तृत और सुन्दर वर्णन करता है। वह रानी लक्ष्मीबाई के शासनकाल में फांसी आया था। गौड्से लिखता है कि " उत्तर हिन्दुस्तान में फांसी नगर बड़ा ही सुन्दर और रमणीय है। वहां का किला मुगलों ने बंधाया था। वह बड़ा ही प्राचीन है और अत्यन्त सुन्दर है। शहर के पश्चिमी भाग में एक छोटे से पहाड़ पर किला बना है। उसके चारों ओर पानी से भरी हुई खाई है। अंदर जाने का रास्ता केवल एक ओर से है। उसके अन्दर ४००० मनुष्यों के रहने का

---

१ - रैम्बिल्स एण्ड रिकलैक्शन्स आफ एन इण्डियन आफीशियल भाग १, पृ० २६४ ।

स्थान है । मुख्य महल सबसे ऊंचा है और उसमें आठ चौकियां हैं । बाकी सब छोटे बंगले हैं, जिनमें राज्य का कार्य होता है । महल के पश्चिम में सिपाही लोगों के क्वायद करने योग्य एक विस्तीर्ण मैदान है । उसमें अनेकों वृक्ष हैं । किनारे की दीवार बड़ी मोटी और मजबूत है । बीच बीच में टीले, जंग, बुर्ज बने हुए हैं । बुर्जों के नीचे बड़े बड़े तहखाने हैं । खास महल का काम पुराना और बड़ा सुन्दर है । खास महल इतना बड़ा है कि उसके सब दालानों और कमरों को देखने में पूरा एक महीना लग जाता है । महल में जगह जगह बैठकें बिछी हुई हैं । गलीचे और गद्दे लगे हुए हैं । गमलों में सुगंधित और रमणीय पुष्प खिल रहे हैं । महल के दक्षिण भाग का बंगला सतमंजिला था । उत्तर भाग में २५ सीढ़ियों के बाद सपाट जगह थी, जिस पर से होकर पानी सदा दौड़ता हुआ नीचे बने हुए हौद में गिरा करता था । उसमें खूब जल भरा हुआ था । हौद के आस पास एक बड़ा ही रमणीय फूलबाग लगाया गया था । अंगूर की बेलें थीं, आम, अमरूद आदि के छोटे बड़े पेड़ लगे हुए थे । बाग में एक छोटा सा बंगला बना हुआ था जो शंकर किले के नाम से प्रसिद्ध था । शंकर किला ऐश व आराम के समस्त उपयोगी सामानों से भरा हुआ था । इसलिए उसे क्रीड़ा भवन कहना अनुचित न होगा ।

किले के नैऋत्य कोण से लगाकर दक्षिणी बाजू की पूर्वी ओर और वायव्य कोण से लगाकर उत्तरी बाजू की पश्चिमी ओर तक शहर का कोट चला गया था । उसकी दीवारें भी ऊंची और मजबूत थीं । बीच बीच में बुर्ज बने थे । अम्बारी सहित हाथी जाने के लायक पांच मुख्य फाटक थे और छोटे छोटे तो कई थे । किले के पूर्व में परकोटे के अंदर बहुत सा मैदान छोड़ देने के बाद नगर आरम्भ होता है । उस मैदान से शहर जाने के मार्ग बड़े अच्छे हैं । शहर की बस्ती भी खूब घनी है । रास्ते सुथरे और पोस्टीपुरा और हलवाईपुरा आदि कुछ मुख्य मुख्य भाग तो ऊंची ऊंची हवेलियों से भरे हुए हैं । इससे नगर की शोभा और भी बढ़ जाती है । शहर के मध्य भाग में भिडे घराने के लोगों ने एक बड़ा भारी बाग लगाया है और

उसमें पांच छ: बावड़ियां हैं। इसके अलावा शहर में छोटे मोटे बाग़ तो कई हैं। शहर में एक सरकारी हवेली है जिसका काम तो देखते ही बनता है। अधिकतर घर एक मंजिल से ऊंचे ही हैं। विन्ध्याचल निकट होने के कारण पानी अधिक पड़ता है इसलिए छतों में पटाई के बदले खपरैलों की छवाई है। घर घर में कुंऐ हैं और पानी बहुत गहरे पर नहीं है। शहर के दक्षिण दरवाजे के बाहर एक बहुत बड़ा तालाब है, वहां महालक्ष्मी का एक बड़ा टोले का मन्दिर है। यह देवी फांसी वालों की कुल स्वामिनी है इसी-कारण इस देव स्थान के बदोबस्त के लिए बहुत भारी खर्चा बांधा गया है। ~~कन्यक~~, नंदादीप, पूजा, महानैवेद्य, शहनाई, गायक, नर्तकी और धर्मशाला. आदि की व्यवस्था बड़ी ही सुन्दर है। आषाढ़ से लेकर चैत तक मंदिर में नाव से जाना पड़ता है। बैशाख और ज्येष्ठ महीनों में ही पैदल जाने के लिये रास्ता निकल आता है। वहां तथा शहर के अन्दर भी गणपति, - विष्णु आदि के कई बड़े बड़े देवालय हैं और उनकी पूजा के लिए फांसी सरकार से खर्चा बंधा है। शहर के नैऋत्य में एक बड़ा चौपड़ा यानी पानी का हौद है जिसमें बहुत पानी है।"[2] वह आगे लिखता है कि " जैसे दक्षिण में पुणें है, वैसे हिन्दुस्तान में फांसी।"[3]

यहां स्मरण रहे कि फांसी का किला ओरछा के राजा वीरसिंहदेव ने १६१७-१८ में बनवाया था और फांसी की बस्ती बसाने का श्रेय फांसी के प्रथम सूबेदार नारोशंकर (१७४२-५७) को है। उसी ने फांसी का सुप्रसिद्ध नारायणबाग़ भी लगवाया था,[4] जो आज सरकारी पौध-शाला बन गया है। कहा जाता है कि फांसी नगर का परकोटा और लक्ष्मी

---

२ - गोड्से० पृ० ५८-६० ।

३ - वही पृ० ६० ।

४ - कमिश्नर्स आफिस, इलाहाबाद डिवीजन, डिपार्टमेण्ट नं० ३, फाइल नं० ३०१ (वाल्यूम नं० ४७)

मन्दिर तथा तालाब शिवरावभाऊ (१७९४-१८१४) ने बनवाया था[५]। यह परकोटा अभी तक अपने प्रवेश द्वारों और खिड़कियों सहित अच्छी हालत में है। परकोटे में १० दरवाजे और ४ खिड़कियां हैं। दरवाजों के नाम हैं - खण्डेराव दरवाजा, दतिया दरवाजा, उन्नाव दरवाजा, मांडेर दरवाजा, बड़ागांव दरवाजा, लक्ष्मी दरवाजा, ओरछा दरवाजा, सागर दरवाजा, सैंयर दरवाजा और झिरना दरवाजा। खण्डेराव और दतिया दरवाजे के बीच गनपत खिड़की है, दतिया और उन उन्नाव दरवाजे के बीच अलीगोल खिड़की, मांडेर और बड़ागांव दरवाजे के सुजानखां या सूजेखां की खिड़की और लक्ष्मी दरवाजे तथा सागर दरवाजे के बीच सागर खिड़की है। सैंयर और झिरना के बीच परकोटे का कुछ भाग टूटा है, जो ह्यूरोज की तोपों की मार से टूट गया था[६]। खण्डेराव दरवाजा शहर से सीपरी और रेल्वे स्टेशन जाने वाली सड़क को चौड़ा करने के लिए अभी हाल ही में स्थानीय नगरपालिका द्वारा तोड़ दिया गया है। झांसी का पुराना नगर इसी परकोटे और दरवाजे के भीतर था।

२ - झांसी की आर्थिक स्थिति -

झांसी की आर्थिक स्थिति सामान्य रूप से अच्छी थी। वैसे अधिकतर लोग खेतीबाड़ी में लगे हुए थे और सामान्यत: अगर अकाल नहीं पड़े तो वे उससे जीविकोपार्जन कर ही लेते थे। झांसी की आर्थिक स्थिति अच्छी होने का मुख्य कारण झांसी के उद्योग धन्धे और व्यापार था। सन् १७९६[१] में हण्टर नामक एक अंग्रेज झांसी आया था। वह लिखता है कि " दक्षिण से फरुर्खाबाद और दोआब के अन्य नगरों में जाने वाले व्यापारिक काफिले यहां से गुजरते हैं इसलिए यहां अत्यधिक सम्पन्नता है, जो चन्देरी के कपड़ों के व्यापार और बुन्देला जातियों के हथियारों, धनुष-

---

५ - झांसी गजे० पृ० २७१ ।

६ - वही पृ० २७३ ।

वाण और भालों के निर्माण कार्य से बार बढ़ गई है।[७] हण्टर के उपरोक्त कथन से लगता है कि झांसी में लोहे के उद्योग धन्धे काफी तरक्की पर थे और इतने अधिक हथियार बनते थे कि वे न केवल स्थानीय जरूरतें ही पूरा करते थे बल्कि बाहर भी बड़ी मात्रा में भेजे जाते थे। गोडसे भी झांसी में पीतल का अच्छा सामान बनने का उल्लेख करता है और लिखता है कि झांसी इसके लिए प्रसिद्ध था[८]। झांसी उत्तरी भारत से दक्षिणभारत जाने वाले राजपथ पर स्थित है और इसलिए दक्षिण से उत्तर या उत्तर से दक्षिण जाने वाले व्यापारिक काफिले बड़ी संख्या में यहां से गुजरते थे। गंगाधर की मृत्यु के बाद जब झांसी में अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ तब सन् १८५४ में कैप्टन आर० डी० गार्डन यहां का उपअधिक्षक (डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट) नियुक्त किया गया था। उसने अपनी एक रिपोर्ट में लिखा है कि इसका (झांसी) महत्त्व मुख्य रूप से इसकी केन्द्रीय स्थिति के कारण है।....... हर प्रकार का आवागमन बहुत है। दक्षिण, भिलसा, भोपाल और मालवा के उपजाऊ जिलों से बनजारों के हजारों बैलों पर और जहां सड़कें सुगम हैं वहां गाड़ियों से अनाज रोज उत्तर की ओर जाता है। पश्चिम से कपास में व्यापार होता है जो काल्पी लाया जाता है।....... इसके बदले में इन्दौर और पश्चिमी प्रदेशों के लिए गाड़ियां, शक्कर, किराना आदि से भरी लौटती हैं। पश्चिम से नमक बहुत आया ~~करता~~ है[९]। गार्डन के अनुसार १८५४ में झांसी से लगभग ३० लाख रुपये का केवल अनाज इन बनजारे काफिलों में गुजरता था[१०]। इन व्यापारिक काफिलों के आवागमन से झांसी राज्य को चुंगी, करों के रूप में तो भारी आय होती ही होगी, पर उसके साथ ही स्थानीय व्यापारियों और उनसे सम्बन्धित दलालों तथा फुटकर विक्रेताओं को भी काफी लाभ होता होगा जिससे जन साधारण की आर्थिक स्थिति भी अच्छी होगई होगी।

---

७ - झांसी गजे० पृ० २७५।

८ - गोडसे० पृ० ८०।

९ - झांसी गजे० पृ० २७५-७६।

१० - वही।

वस्त्र

अनाज के अलावा फांसी में वस्त्रों का भी व्यापार काफी तरक्की पर था। गोडसे सूती, रेशमी वस्त्रों और गलीचों के फांसी में प्रचुरता से मिलने का उल्लेख करता है। वह लिखता है कि "गलीचे रेशमी वस्त्र और पीतल का सामान जैसा इस शहर में मिलता है वैसा कहीं नहीं मिलता।"[११] उसे फांसी में रेशमी किनारे की धोतियां पहिनने को, दुशाले ओढ़ने को और उत्तम पगड़ियां सिर पर लगाने को मिलती थीं। उस समय १२ रु० का बहुत ही अच्छा धोती का जोड़ा आता था और २० रु० की बढ़िया पगड़ी मिलती थी। रानी ने गोडसे को जरी का कामदार हरा शाल बक्सीस में दिया था। रानी स्वयं सफेद चन्देरी की साड़ी पहिनना पसन्द करती थी और कभी कभी पायजामा, बण्डी, सिर पर कलगी या तुर्रा लगी हुई टोपी पहिनती थी। रानी की दासियां जरीदार चोलियां पहिनती थी और रानी ने एक बार जाड़े की ऋतु में गरीब लोगों को एक रुई की टोपी, रुई की बण्डी और सफेद या काली कमली बंटवाने के आदेश दिये थे।[१२] चन्देरी की मसलिन या मलमल तो बहुत ही प्रसिद्ध थी और फांसी में उसका अच्छा बाजार था। रूसेलेट नामक एक फ्रान्सिसी यात्री फरवरी १८६७ में फांसी आया था। फांसी में मिलने वाली वस्तुओं और खास तौर से चन्देरी की मसलिन का उल्लेख करते हुए वह लिखता है कि " स्थानीय वस्तुओं का और विशेष रूप से चन्देरी की मसलिन का जो नर्म सूत से बनती है, बड़ा व्यापार होता है। भारत में इसकी बड़ी कद्र की जाती है और यह ऊंची कीमत पर बिकती है। यह मसलिन (मलमल) इतनी हल्की होती है कि पूरे पहिनने का वस्त्र का सेब बराबर गोला बनाया जा सकता है। धसान के तट के नीचे सूती वस्त्र भी फांसी में खूब बिकते हैं और उन्हें बहुत पसन्द किया जाता है।"[१३] यहां

---

११ - गोडसे पृ० ६० ।

१२ - वही पृ० ६४, ६५, ७१ ।

१३ - रूसेलेट० पृ० ३२७ ।

ध्यान रहे कि स्लीमैन ' गदर ' के १० साल बाद फांसी आया था जबकि फांसी की बरबादी और अंग्रेजों के प्रतिशोधात्मक शासन के अन्तर्गत फांसी की वह पुरानी सम्पन्नता जाती रही थी, जोकि १८५७ के पहले थी। तब तो वस्तुओं का यह व्यापार और भी अधिक होता रहा होगा। फांसी में ऊनी वस्त्र उद्योग भी काफी तरक्की पर थे। फांसी के कालीन और गलीचे तो बाहर बहुत प्रसिद्ध थे। स्लीमैन इसका विशेष उल्लेख करते हुए लिखता है कि " फांसी कालीनों के लिए प्रसिद्ध है।[१४] वह फांसी के बाग-बगीचों और उनमें पैदा होने वाले फलों, तरकारियों की अधिकता का उल्लेख करता है और नारंगियों से लदे पेड़ों की तथा उनके मीठेपन की प्रशंसा करता है। उसके अनुसार फांसी का आम व्यापार भी काफी होता था और वह लिखता है कि " यहां के ये गुसाईं जो व्यापार करते हैं, बड़े धनी होते हैं।[१५]

इन गुसाईंयों के अलावा फांसीके अन्य व्यापारी भी जिनमें गहोई, वैश्य, अग्रवाल और खत्री आदि प्रमुख होते थे, काफी बड़े पैमाने पर गल्ले, तिलहन और कपड़े का व्यापार करते थे। फांसी के तेली काफी मात्रा में तेल पेरते थे और उनकी संख्या भी कम नहीं थी। वे नगर के उन्नाव दरवाजे से सागर दरवाजे के किनारे के मुहल्लों में और तिल्याऊ-बजरिया में रहते थे। जुलाहे या कुष्टा भी धोतियां, लहंगे और मोटे कपड़े काफी मात्रा में बुनते थे। वे नगर के उस भाग में रहते थे जिसे गौडसे ने कौष्टीपुरा लिखा है।[१६] इसे कुष्टयाना मुहल्ला भी कहते थे। मऊरानीपुर में भी गल्ले और वस्त्र की अच्छी मण्डी थी। रानीपुर के सूती लहंगे तब से आज तक आस पास के प्रदेशों में मशहूर हैं। मऊरानीपुर में रघुनाथहरि निवालकर के समय में छतरपुर के बहुत से व्यापारियों ने छतरपुर के राजाओं के -

---

१४ - गौडसे० पृ० ६०, रैम्बिल्स एण्ड रिकलैक्सन्स आफ एन इंडियन आफीशियल भाग १ पृ० २६४।

१५ - रैम्बिल्स एण्ड रिकलैक्सन्स आफ एन इंडियन आफीशियल भाग१ पृ०२६४-६५।

१६ - गौडसे० पृ० १०३ ।

अत्याचारों से भागकर शरण ली थी।[२७] इन व्यापारियों ने भी मऊरानीपुर की सम्पन्नता में अपना योगदान दिया होगा।

झांसी नगर में प्रमुख वस्तुओं की अलग अलग मंडियां थीं। उदाहरण के लिए गंज में गल्ला और किराने के व्यापारी बैठते थे। नकियाई में गल्ले के फुटकर दुकानदार बैठते थे जिन्हें नकया कहते थे। हलवाई पुरे में हलवाईयों की दुकानें थीं। तमरहाई में पीतल और तांबे के बर्तन और धातु का काम करने वालों की दुकानें थीं। इसी तरह बजाजा बाजार में कपड़े का व्यापार होता था और उसी से लगे तथा तीन छोटे छोटे दरवाजों से सुरक्षित चांदी, सोने, रत्नों के व्यापारी और सुनार तथा जड़िये काम करते थे।

संक्षेप में उपरोक्त विवरण से झांसी के मराठा राज्य के अन्तर्गत आर्थिक स्थिति का जो चित्र उभरता है, वह सर्वांगपूर्ण न होने पर भी अपूर्ण और असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता। सामान्य रूप से झांसी के लोग खुशहाल थे और अगर कोई सूखा या अकाल न पड़ता और अंग्रेजों के आक्रमण जैसे संकट उन पर न आते तो उन्हें जीविका यापन करना कठिन न था। वैसे दिया तले अंधेरा तो होता ही है। मजदूरों और खेतिहर किसानों की स्थिति अच्छी न थी और निम्न जातियों का आर्थिक - शोषण तो होता ही था।

३ - सामाजिक दशा -

झांसी के मराठा संस्थान की सामाजिक व्यवस्था अथवा सामाजिक स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसीकि उसके पड़ोसी राज्यों ओरछा, दतिया और छतरपुर की थी। एक विशेष फर्क जो इन राज्यों और झांसी राज्य की सामाजिक स्थिति में था, वह यह था कि झांसी राज्य में इन राज्यों की अपेक्षा मराठा ब्राह्मण अधिक संख्या में रहते थे। झांसी बुन्देलखण्ड में सबसे बड़ा मराठा उपनिवेश था। गोखले जब झांसी -

---

२७ - झांसी गज़े० पृ० ३०१ ।

आया तब उसका अनुमान था कि झांसी में महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों के ३०० घर थे। इनके सिवाय स्थानीय ब्राह्मण अलग थे। इसलिए गोडसे लिखता है कि " ब्राह्मणों के लिए तो यह नगर बड़ा ही अच्छा है। ऐसे कहा जाय कि जैसे दक्षिण में पुणे है, वैसे हिन्दुस्तान में झांसी।"[१८] झांसी के निवालकर सूबेदार करहाड़े ब्राह्मण थे और झांसी का मराठा संस्थान ही जैसे ब्राह्मणों का राज्य था। इसलिए अगर झांसी में ब्राह्मणों का बोलबाला था तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? झांसी में प्रसिद्ध महाराष्ट्रियन ब्राह्मण विद्वान रहते थे। जैसे रघुनाथहरि निवालकर के समय में नारायण शास्त्री और गंगाधरराव तथा लक्ष्मीबाई के काल में विनायक भट्ट, केशव भट्ट मांडगणे, भैयाउपासने और लालभाऊ देकरे, जो कि राज्यवंश का कुलोपाध्याय था। रानी लक्ष्मीबाई का दीवान लक्ष्मणराव देशस्थ ब्राह्मण था और गोडसे के अनुसार वह " एकदम अदार शत्रु ही था। लिखना वांचना उसे जरा भी नहीं आता था परन्तु उसकी खोपड़ी बड़ी दूर तक चलती थी।"[१९] ब्राह्मणों द्वारा राज्य के संरक्षण में तमाम अनुष्ठान और यज्ञ जैसे नवचण्डी, सप्तचण्डी, सप्तशती आदि होते ही रहते थे और महालक्ष्मी के देवालय में सहस्त्र ब्राह्मण भोजन आदि प्राय:होते रहते थे।[२०] यहां तक कि अंग्रेजों ने जब झांसी पर आक्रमण किया तो गणपति के मंदिर में १०० ब्राह्मणों को - अनुष्ठान के लिए बिठा दिया गया था। जन्मपत्री, लग्न, गोत्र, मुहूर्त आदि का समाज में मान था और इनसे ब्राह्मणों का मान बढ़ता ही था।[२१]

ब्राह्मणों से प्रभावित समाज में वर्ण व्यवस्था अनिवार्य ही है, अस्तु हिन्दुओं की अन्य सवर्ण जातियां और निम्न वर्ग तथा अस्पृश्य वर्ग की जातियां तो राज्य में थीं ही। सवर्ण जातियों में क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ, खत्री आदि प्रमुख थे और अन्य पिछड़ी जातियों में सुनार, अहीर,

---

१८ - गोडसे० पृ० ६० ।

१९ - वही पृ० ५७, ६०, ६२-६४, ६६, ६७ ।

२० - वही पृ० ६३-६५ ।

२१ - वही पृ० ५३, ५५, ५६, ६१, ७१, ८५ ।

चमार, भंगी आदि जातियां थीं । यादव या अहीर और गूजर, पंवार, धंधेरे ठाकुर आदि भी अच्छीसंख्या में थे । व्यवसाय के अनुसार तमेरे,कसेरे, सुनार, लुहार, कुम्हार आदि भी थे । इन सभी जातियों की अपनी जाति-पंचायतें होती थीं जो उनमें सामाजिक अनुशासन रखती थीं और सामाजिक विवादों का फैसला किया करती थीं । झांसी के मराठा राज्य में हिन्दू भारी बहुमत में थे और सम्भवत: इसीलिए इम्लेट ने इसे ' हिन्दू नगर ' (हिन्दू टाउन) कहा है[२२]। मुसलमान बहुत ही थोड़ी संख्या में थे । सन् १८७४ में वे आबादी के केवल ४ प्रतिशत थे[२३]। सन् १८५७ के पूर्व तो यह - प्रतिशत इससे भी कम रहा होगा ।

तब धर्म लोगों के सामाजिक जीवन का एक अनि-वार्य अंग था । ब्राह्मण राज्य होने और ब्राह्मणों का अधिक प्रभाव होने के कारण धार्मिक कर्म काण्डों की जैसाकि हम ऊपर देख चुके हैं काफी धूम-धाम थी । नगर भर में मंदिरों की भरमार थी । खण्डेराव का मंदिर, गणेश मंदिर, पचकुइयों का मंदिर, मुरलीमनोहर का मंदिर, झिरना का शिव मंदिर और लक्ष्मी का मंदिर आदि नगर के प्रसिद्ध मंदिर थे । जाति-यों के अपने अलग अलग मंदिर होते थे । जैसे गहोइयों का मंदिर, अग्रवालों का मंदिर, खत्रियों का मंदिर, तेलियों का मंदिर, नाइयों का मंदिर आदि । इन मंदिरों में राधाकृष्ण, राम सीता, शिव, गणेश आदि की मूर्तियां होती थीं । किले के भीतर भी तब का एक शिव मंदिर है । गणेश मंदिर महाराष्ट्रियनों का मंदिर था । इनके सिवाय झांसी नगर में गुसाइयों के भी कई शिव मंदिर थे । वे मठों में रहते थे जहां उनके अखाड़े और मंदिर होते थे । इन मठों के अवशेष अभी भी विद्यमान हैं और उनके नाम पर नगर के मध्य में एक गुसाईंपुरा आज भी चला आरहा है । स्लीमैन ने इन गुसाइयों के मंदिरों को विशेष रूप से लक्षित किया था और वह उनके व्यापार में लगे रहने और अच्छा धन संग्रह कर लेने का उल्लेख भी करता है[२४]।स्लीमैन

---

२२ - इम्लेट० पृ० ३२७ ।

२३ - बुन्देलखण्ड० पृ० २७६ ।

२४ - 'रैम्बिल्स एण्ड रिकलेक्शन्स आफ एन इंडियन आफीशियल भाग १ पृ० २६४-६५ ।

इसका भी उल्लेख करता है कि झांसी के राजा अपने मक्बरे नहीं बनवाते बल्कि समाधि के ऊपर मंदिर बनवा देते थे ताकि उनकी समाधि को कोई अपवित्र या दूषित न करे। वह रामचन्द्रराव की समाधि के ऊपर बने ऐसे ही मंदिर का उल्लेख करता है।[२५] ह्यूलेट ने भी झांसी के राजाओं की इन समाधियों को देखा था और वह उनका उल्लेख भी करता है।[२६] मुसलमानों में सिया और सुन्नियों के दो वर्ग थे। चांद दरवाजे और अली-गोल खिड़की में उनकी अपनी मस्जिदें थीं और ताजिये भी निकाले जाते थे। झांसी में साम्प्रदायिक वैमनस्य के उल्लेख नहीं मिलते और ब्राह्मण शासन में मुसलमानों की विभिन्न विभागों में नियुक्ति के उल्लेख मिलते हैं। जैसे दरोगा बख्शीशअली, कालेखां रिसालदार, गुलामगौसखां, खुदाबख्श, दोस्त-खां तोपची, हुसैनअलीखां रिसालदार, मोहरदीनखां रिसालदार, शेखमुहम्मद बख्शी (जमादार), फैजअली, सलेहमुहम्मद स्थानीय डाक्टर, मुहम्मद बख्श शेख (जेल जमादार) आदि।[२७] मुसलमानों को झांसी में जो प्रश्रय और समादर मिला था उसी के कारण उन्होंने रानी लक्ष्मीबाई का दिलोजान से साथ दिया था।

४ - स्त्रियों की दशा -

सामान्य रूप में स्त्रियों की स्थिति श्लाघनीय नहीं थी। उनका कार्य-क्षेत्र घर की दीवारों के भीतर समझा जाता था। और तो और स्वयं रानी लक्ष्मीबाई को अपने पति के जीवनकाल में पर्दे में रहना पड़ता था। गौडसे लिखता है कि " महल के बाहर निकलने की तो बात

---

२५ - वही पृ० २६५ । रामचन्द्रराव की यह समाधि तहसील के पास स्थित है।

२६ - ह्यूलेट० पृ० ३२६ ।

२७ - रैवेन्यू डिपार्टमेण्ट १८५७, २१ फाइल नं० ४, सरकुलर नं०४६४८-१८५८, फा० पोलि० कन्स० ३० अप्रैल १८५८ नं० १४६-४७ ।

ही न की जाय, महल के अन्दर भी बाई साहब अधिकतर ताले पहरे में रहती थीं। सशस्त्र स्त्रियां हर समय पहरा दिया करती थीं। पुरुषों की तो वहां हवा भी न पहुंचने पाती थी।[२८] बाल-विवाह और बेमेल-विवाह सामान्य बात थी। रानी लक्ष्मीबाई और गंगाधरराव की आयु में लगभग ३० वर्ष का अन्तर था। लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपन्त ने भी लक्ष्मीबाई के विवाह के बाद अपना विवाह रचा डाला था। कन्या पक्ष के निर्धन होने पर वर पक्ष से रुपया लेना भी बुरा नहीं समझा जाता था। लक्ष्मीबाई के पिता ने अपने ब्याह का खर्च गंगाधरराव से लिया था। इसी तरह लक्ष्मीबाई ने एक ~~देख~~ देशस्थ ब्राह्मण को लड़की के लिए ४०० रु० दिये थे।[२६] लड़कियों को दासियों के रूप में खरीदने और बेचने की भी प्रथा थी। गोड्से लिखता है कि लक्ष्मीबाई की दासियां बनाने के लिए दक्षिण से अच्छे अच्छे घरों की लड़कियां खरीदकर लाई जातीं थी।[३०] स्त्री शिक्षा बहुत ही कम, नहीं के तुल्य थी। धनी मानी वर्गों में मामूली पढ़ने लिखने का ज्ञान बालिकाओं को करा दिया जाता था।[३१] लेकिन अधिकांश स्त्रियां बिना पढ़ी लिखी रह जाती थीं।

पर देखने भालने में और साज श्रृंगार में झांसी की स्त्रियां किसी से कम नहीं थीं। गोड्से लिखता है कि "यहां की स्त्रियां बड़ी ही सुरेख होतीं हैं और विशेष रूप से उनके नेत्र बड़े और पुतलियां काली होती हैं।[३२] निम्न जाति की स्त्रियों में भी कभी कभी बड़ी ही असाधारण सुन्दरता के दर्शन हो जाते थे। गोड्से माधवराव पेशवा के समय में नारायण शास्त्री और एक भंगिन के अनैतिक सम्बन्धों का उल्लेख बड़े ही रोचक शब्दों

---

२८ - गोड्से० पृ० ५६ ।

२६ - वही पृ० ५६, ७१ ।

३० - वही पृ० ६७ ।

३१ - वही पृ० ६७ । जैसे रानी लक्ष्मीबाई की शिक्षा दीक्षा हुई थी और गोड्से लिखता है कि वे स्वयं पढ़ने लिखने में होशियार थीं। पर ऐसा सौभाग्य सबका नहीं था ।

३२ - वही पृ० ६० ।

में करता है ।[३३] स्त्रियों की अच्छे वस्त्रों और आभूषणों की ओर सामान्य रुचि थी । कीमती साड़ियां, जरीदार लंहगे और हरे लाल दुपट्टे उन्हें खूब भाते थे । उनके सिर से पांव तक अपने घर की आर्थिक स्थिति के अनुसार वे जेवरों से लदी रहती थीं । पैरों में तोड़े और सोने, चांदी, हीरे, मोती आदि के गहनें वे खूब पहिनती थीं ।[३४] फांसी के रासो में मदनेश उस समय के पहने जाने वाले आभूषणों के नाम इस प्रकार देते हैं - सिर पर बिंदिया और बेंदा पहना जाता था । कान में सांकर सहित कर्णफूल और फालर वाले पान, गले में ठुसी, बिचौली, गुलूबन्द, मुहरमाला, दुलरी और तीन लरी, चम्पो, सतलरी, ललरी, चन्द्रहार, बाहों में बाजूबन्द, हाथों में ककना, दौरी, बंगरिया, छला, हथफूल, कमर में करधौनी, पांव में पायजेब, गुजरी, पायल, पैजना, बिछिया, जेहर, अनौटा आदि पहने जाते थे । हाथ पांव में मेंहदी, पांव में आलता, आंखों में अंजन और मुंह में पान की लाली उनके सौन्दर्य को द्विगुणित करती थी ।[३५]

५ - सांस्कृतिक प्रगति -

मराठा शासन के अन्तर्गत फांसी की सांस्कृतिक प्रगति के कुछ बड़े ही महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि फांसी का सांस्कृतिक स्तर तुलनात्मक दृष्टि से बुन्देलखण्ड के अन्य राज्यों से थोड़ा अच्छा ही था । फांसी के निबालकर सूबेदार विद्या व साहित्य के प्रेमी थे और यद्यपि शिक्षा का प्रसार बहुत अधिक नहीं था फिर भी लोगों में साहित्यिक अभिरुचियां थीं जो आज तक चली आ रही हैं । रघुनाथहरि निबालकर ने अपने शासनकाल में एक अच्छे राज्य की पुस्तकालय की नींव डाली थी और सन् १७६२ में विलियम हण्टर को अपनी फांसी यात्रा

---

३३ - वही पृ० ६०-६१ ।

३४ - वही पृ० ६७-६८ ।

३५ - मैदनेश० पृ० ४ ।

में यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ था कि उसके पुस्तकालय में कई अंग्रेजी के ग्रन्थ थे और यहां तक कि एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का द्वितीय संस्करण तक था । हण्टर के साथी फरसन ने गिलक्राइस्ट की डिक्शनरी सूबेदार को भेंट की थी।[३६] कालान्तर में इस पुस्तकालय में और अधिक मूल्यवान ग्रन्थ जुड़ते गये और वह झांसी राज्य की एक उपलब्धि बन गया । इस पुस्तकालय की चर्चा करते हुए गोडसे लिखता है कि " झांसी की पुस्तक शाला बहुत बड़ी थी । उसकी व्यवस्था भी बड़ी ही अच्छी तरह होती थी । झांसी में जो लोग भी राज्य करते रहे, उन्होंने पुस्तकों की देखभाल बड़े उत्साह से की । चारों वेद, उनके भाष्य, सब शाखाओं के सूत्र भाष्य सहित और परिशिष्टों तक के भाष्य मौजूद थे । स्मृति, पुराण, ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद और ऐसे ही पृथ्वी पर रचे जाने वाले सब प्रकार के उत्तम ग्रन्थों का वहां संग्रह था । अगर झांसी से ४००, ५०० कोस तक भी किसी नये ग्रन्थ की खबर मिलती थी तो तुरन्त ही एक सुलेखक भेजकर उस ग्रन्थ की नकल मंगवाली जाती थी । आवश्यकता पड़ने पर काशी तक के पंडित झांसी की पुस्तकालय में आया करते थे । सब ग्रन्थों को बड़े ही सुन्दर और मजबूत ढंग से बांधकर रखा जाता था।[३७]" विद्रोह में यह पुस्तकालय नष्ट कर दिया गया था ।

झांसी की नाट्यशाला मराठा राज्य की एक अन्य उपलब्धि थी । इसमें स्थानीय और बाहर की नाटक मंडलियां नाटक खेला करती थीं । जब गोडसे झांसी में था तब वह लिखता है कि होली के अवसर पर " कोंकण की एक नाटक मंडली आई थी । शहर के लोगों ने पत्र भेजकर उन्हें झांसी ~~बुलवा~~ बुलाया । जब शहर में उनके कई खेल हुए तब बाई-साहब ने सरकार की तरफ से उनके खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया और किले में बुलाकर कई नाटक करवाये । एक बार हरिश्चन्द्र का आख्यान हुआ । उस

---

३६ - इतिहास संग्रह, फरवरी १९१० पृ० ४३ ।

३७ - गोडसे० पृ० १०२ ।

समय सदोवा नाटक वाले ने कहा - इस नाटक में डोम के घर हरिश्चन्द्र के सिर पर मटका फोड़ा जाता है। इसके लिए परवानगी मिलने पर मटके मंगा लिये जायँ। उस पर विचार करके बाई साहब ने परवानगी दे दी। परन्तु जब नाटक में मटकी फोड़ी गई तो नाटकशाला में बैठी हुई वृद्ध मंडली को तुरन्त ही खटका। यह तो अपशकुन हुआ। नाटक बहुत ही अच्छे होते थे। सन्ध्या के समय नाटक वालों को किले में आने दिया जाता था। साज सज्जा के लिए उनके सामने सरकारी खजाना खोल दिया जाता था। खरे हीरे के अलंकार और जरी के वस्त्र पहिनकर पात्र भले क्यों न खिल उठें।[३८] नाटक मंडलियों को पुरुस्कृत किया जाता था। राज्य में सभी कलाकारों का आदर और सम्मान था। गोड्से लिखता है कि "अच्छे पुराने गवैये, सितारिये और देश देश के नामी ग्रामी कारीगर" झांसी में थे। वह सरकारी गवैयों का भी उल्लेख करता है।[३६] गंगाधरराव के काल में ~~नाट्यशाला~~ नाट्यशाला की प्रमुख अभिनेत्रियां, नर्तकियां ये थीं - नौरत्नबाई, पन्नाबाई, मोतीबाई, हीराबाई, जवाहरबाई और सुखबाई।[४०] मेजर स्लीमन जब दिसम्बर १८३५ में झांसी आया था तब रघुनाथराव ने उसके मनोरंजन के लिए नृत्यांगनाओं और गवैयों को बुलाया था।[४१] रण - वाद्यों के अलावा शहनाई, सितार आदि वाद्ययंत्रों का प्रचलन था और नक्कारखाने में शहनाई बजा करती थी। संक्षेप में झांसी के लोगों में अच्छे रहन-सहन के सिवाय गायन-वादन, नाटक और पठन-पाठन में भी रुचि थी।

झांसी के चित्रकार भी अपने चित्रों के लिये और विशेषकर कागज के और दीवार के चित्रों के लिए प्रसिद्ध थे।[४२] गोड्से लिखता है कि कागज पर चित्रकारने का काम यहां बेजोड़ होता है।[४३] झांसी

---

३८ - वही पृ० ६६ ।

३६ - वही पृ० ६८-६६ ।

४० - कमिश्नर्स आफिस, इलाहाबाद डिवीजन (झांसी रिकर्ड्स), वौल्यूम नं० ४७ फाइल नं० ३०१ ।

४१ - रैम्बिल्स एण्ड रिकलेक्शन्स आफ एन इंडियन आफीशियल भाग १ पृ०२६३ ।

४२ - गोड्से० पृ० ८० ।

४३ - वही ।

निवासी अपने अतिथियों का स्वागत पान और इत्र से किया करते थे। जब स्लीमैन झांसी आया था तब रानी सखूबाई ने और रघुनाथराव ने उनका स्वागत ऐसे ही किया था[४४]। झांसी निवासियों का सहज उल्लास और उनका सांस्कृतिक जीवन उनके त्यौहारों में प्रदर्शित होता था। गोडसे विशेष रूप से होली और हल्दी कुं कुं के त्यौहार का उल्लेख करता है। वह लिखता है कि होली में रंग की धूम मच जाती थी और जगह जगह पान सुपारी से लोग एक दूसरे का स्वागत करते थे। हल्दी कुं कुं का महाराष्ट्रियन त्यौहार लक्ष्मीबाई के काल में मनाये जाने का जो विवरण गोडसे ने दिया है उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। लक्ष्मीबाई रासो में कवि मदनेश ने भुजरियों के त्यौहार और मेले का बड़ा ही हृदयग्राही - वर्णन किया है[४५]।

राजा गंगाधरराव और लक्ष्मीबाई के काल के कुछ प्रसिद्ध कवि पद्मेश, हृदेश, मग्गीदाऊजी, श्याम आदि थे। इन्हें झांसी के रत्न समझा जाता था। गायन में मुगलखां, नृत्य में दुर्गा और चित्रकारी में सुखलाल कुछ बेजोड़ और प्रसिद्ध नाम थे[४६]।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से झांसी की - तत्कालीन सांस्कृतिक स्थिति का कुछ अनुमान हो जाता है। मराठा शासन के लगभग १२५ वर्षों में झांसी की स्थानीय बुन्देलखण्डी सभ्यता और संस्कृति का समन्वय महाराष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति से हुआ था, जिसके फलस्वरूप झांसी की अपनी सभ्यता संस्कृति में जैसे मराठा सभ्यता संस्कृति की पुट सी लग गई थी और स्थानीय भाषा, रहन-सहन, गायन-वादन, चित्रकला, शैली और यहां तक कि सामाजिक संस्कारों और आचार व्यवहार में भी दोनों ही सभ्यता संस्कृतियां एक दूसरे से प्रभावित हुई थीं।

--------0--------

---

४४ - रैम्बिल्स एण्ड रिकलेक्सन्स आफ एन इंण्डियन आफीशियल भाग१,पृ०२६३।

४५ - गोडसे० पृ०७६-८०, मदनेश० पृ० ४ ।

४६ - वर्मा० पृ० ७६, १२४, १५४, ३२५, मदनेश० (रासो की भूमिका), पृ०१० ११, १६।

इस ग्रन्थ में प्रयुक्त ऐतिहासिक सामग्री

१ - समकालीन अप्रकाशित सामग्री

अंग्रेजी -

१ - फॉरेन पॉलिटिकल कन्सल्टेशन्स — मूल प्रतियां — नेशनल आरकाइव्स नई दिल्ली

२ - फॉरेन सिक्रेट कन्सल्टेशन्स — ,, — ,,

३ - बंगाल सिलेक्ट कमिटी प्रोसीडिंग्स — ,, — ,,

४ - डिस्पैच टु कोर्ट आफ डायरेक्टर्स — ,, — ,,

५ - डिस्पैच फ्राम कोर्ट आफ डायरेक्टर्स — ,, — ,,

६ - पार्लियामेंट्री पेपर्स रिलेटिव टु म्युटिनी (टाइप की हुई प्रतियां) नेशनल आरकाइव्स नई दिल्ली ।

७ - मिम्युटिनी रिकार्ड्स - रीजनल आरकाइव्स इलाहाबाद ।

८ - कमिश्नर्स आफिस इलाहाबाद डिवीज़न , फांसी रिकार्ड्स - रीजनल आरकाइव्स इलाहाबाद ।

हिन्दी -

१ - रामचन्द्रराव का बरुआसागर के सिपाहियों और जमादारों को गंगाधर की नियुक्ति की सूचना देते हुए पत्र ।

२ - राजा गंगाधरराव और लक्ष्मीबाई के विवाह का निमंत्रण पत्र ।

३ - बानपुर के राजा मर्दनसिंह को लिखा रानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र ।

(कृ० पृ० उ०)

२ - प्रकाशित प्राथमिक स्रोत

हिन्दी

१ - छत्रप्रकाश, लालकवि कृत, सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा बनारस ।

२ - महारानी के समकालीन कल्याणसिंह कुढ़राकृत ` झांसी का रासो` - सम्पादक हरिमोहनलाल श्रीवास्तव - कल्याणसिंह जाति के कायस्थ और दतिया के रहने वाले थे । उन्होंने श्री रासो की रचना सं० १६२६ या १८६६ ई० में १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के १२-१३ वर्षों बाद की थी । इसमें नत्थेखां और रानी के युद्ध का मुख्य वर्णन है, वैसे रानी के अंग्रेजों से युद्ध का भी कुछ वर्णन आ गया है ।

मराठी -

१ - इतिहास संग्रहांत प्रसिद्ध झालेली महेश्वर दरबारची बातमी पत्रें - - पारसनीस ।

२ - इतिहास संग्रह - पारसनीस द्वारा सम्पादित ६ भाग ।

३ - ऐतिहासिक पत्र व्यवहार - सर देसाई कुलकर्णी यादव माधव काळे ।

४ - काव्येतिहास संग्रह प्रसिद्ध झालेली, ऐतिहासिक पत्रें, यादी वगैरा लेख - सम्पादक सरदेसाई, काळे ।

५ - चन्द्रचूड़ दफ्तर भाग १, २ - ग्वाल्हेर येथील सेक्रेटारियट प्रेस - मध्ये टापून ।

६ - पूना अखबारात भाग १, २, ३ सेन्ट्रल रिकर्ड आफीस हैदराबाद - द्वारा सम्पादित ।

७ - ब्रह्मेन्द्र स्वामी यांचा पत्र व्यवहार जो पारसनीस कृत ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र में उपलब्ध है ।

८ - मराठ्यांचा इतिहासाचीं साधनें - ६ भाग , विश्वनाथ काशीनाथ - रजवाड़े ।

९ - शिंदेशाही इतिहासांची साधने भाग १ -फाल्के ।

१० - सिलैक्शन्स फ्राम दी पेशवा दफ्तर - सम्पादक सर देसाई ।

११ - सिलैक्शन्स फ्राम दी पेशवा दफ्तर न्यू सीरीज भाग १, ३ - सम्पादक पी० एम० जोशी ।

१२ - सिलैक्शन्स फ्राम दी सतारा राजाज़ एण्ड पेशवा डायरीज़ ६ भाग, गणेश चीमाजी वाड ।

१३ - संस्थान देवास थोरली पाती, पवार घराण्याचा इतिहासांची साधनें - सम्पादक मा० वि० गुजर ।

१४ - हिंगणे दफ्तर भाग १, २ - सम्पादक जी० एच० खरे ।

१५ - होलकराची कैफियत - संशोधन व टीपा यशवंत नरसिंह केलकर ।

१६ - हिस्टोरिकल पेपर्स रिलेटिंग टु महादाजी सिंधिया - सम्पादक सर देसाई, आलीजाह प्रैस ग्वालियर - १६३७ ।

१७ - हिस्टारिकल पेपर्स आंफ दी सिंधियाज़ आंफ ग्वालियर भाग १, २ सतारा हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी द्वारा प्रकाशित १६३४, १६४० ।

फारसी -

१ - अकबरनामा भाग ३ (बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद) अबुलफ़ज़ल ।

२ - जहांगीरनामा - ब्रजरत्नदास कृत हिन्दी अनुवाद - काशी नागरी प्रचारिणी सभा बनारस ।

३ - तारीखे मुज़फ्फरी - मुहम्मदअली खां अंसारी (रघुवीर लायब्रेरी सीतामऊ)

४ - परशियन रिकर्ड्स आफ मराठा हिस्ट्री - सम्पादक पी० एम० जोशी ।

५ - मासिर-उल-उमरा भाग १ - ब्रजरत्नदास कृत हिन्दी अनुवाद, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस ।

६ - मिरआते आंफ़ताब नामा - शाहनवाज़खां (रघुवीर लायब्रेरी सीतामऊ)

अंग्रेजी -

१ - ट्रीटीज, एंगेजमेन्टस एण्ड सनद्स भाग ५, ७ - सी० यू० एचिसन, १६०६ ।

२ - सिलैक्शन्स फ्राम दी लैटर्स, डिस्पैचिज़ एण्ड अदर स्टेट पेपर्स भाग ४, ~~सम्पादक~~ फारेस्ट द्वारा सम्पादित - १६१२ ।

६ - ए स्टडी इन मराठा डिप्लोमेसी - एस० पी० वर्मा ।

७ - ए हिस्ट्री आफ दी सिपाय वार इन इण्डिया भाग ३ - जांन विलियम के - १८७६ ।

८ - ऐंशेंट ज्याग्राफी - कनिंघम ।

९ - कैलेण्डर आंफ परशियन करसपौंडेंस - ९ भाग ।

१० - झांसी हिस्ट्री और हिस्ट्री आंफ झांसी - जे० एफ० होलकोम्ब (सर देसाई कलेक्शन्स, डेक्कन कालेज पूना) १९०२ ।

११ - ड्यूरिंग दी रिबेलियन आंफ एटीन फिफ्टी सेविन एण्ड फिफ्टी एट - थामस लो - १८६० ।

१२ - दी हिस्ट्री आंफ इंडिया एज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग ६ - ७, इलियट डाउसन ।

१३ - दी म्युटिनी इन इंडिया - भाग २, ५, ६ - बांल ।

१४ - दी रानी आंफ झांसी - डी० वी० ताहमन्कर - १९६१ ।

१५ - दी अर्ली रूलर्स आंफ खजुराहो - शिशिर कुमार मित्रा ।

१६ - दी रिबेलियस रानी - सर जांन स्मिथ - १९६६

१७ - दी सिपाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आंफ एटीन फिफ्टी सेविन - आर० सी० मज़ूमदार ।

१८ - दी मारक्विस आंफ डलहौजी एण्ड दी फाइनल डेवेलपमेंट आंफ कम्पनीज़ रूल - विलियम विल्सन हण्टर ।

१९ - दी रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया, एटीन फिफ्टी सेविन - फिफ्टी नाइन - डब्ल्यू० मेलसन ।

२० - दी एम्पायर इन इंडिया - बेल - १८६४ ।

२१ - न्यू हिस्ट्री आंफ दी मराठाज़ भाग २, ३ - गोविन्द सखाराम सर देसाई ।

२२ - नुस्खा-ए-दिलकश (अंग्रेजी) अनुवादक सर यदुनाथ सरकार - सम्पादक खोबरेकर, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित ।

झाँसी का किला।

रानी महल

झोखनबाग का मेमोरियल वेल

गंगाधर राव की समाधि

पिंकने का समाधि स्तम्भ
स्तंभ का अभिलेख
IN MEMORY OF
MAJOR F.W. PINKNEY C.B.
COMMISSIONER OF JHANSI
DIED 30th JULY 1862.